1310

कला पुस्तक माला का द्वितीय पुष्प

आत्म निर्माण

अथवा

विश्वबंधुत्व और बुद्धिवाद

लेखक

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

भारती साहित्य मन्दिर, देहली

(मूल्य तीन रुपया)

SPS
001 CH 28 A
12230

सोल एजेंट्स—
एस० चांद ऐण्ड कम्पनी
चांदनी चौक, देहली ।

acc: no: 12230

Rs 3-0-0

प्रथम वार
सर्वाधिकार सुरक्षित
ता० १५ मार्च सन् १९३६ ई०

1936

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

मुद्रक—
इम्पीरियल फाइन आर्ट प्रेस,
दरीबा कलां,
देहली ।

उपहार

श्रीयुत ~~[illegible] मुजफ्फराबाद~~ ....

कश्मीर. ....

....
सुरेन्दर
विद्या

Rationalism

बुद्धिवाद

के

प्रेमियों

को

समर्पित

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री,

M. O. Ph., H. M. D.

काव्य-साहित्य-तीर्थ-आचार्य,

प्राच्य विद्या वारिधि, आयुर्वेदाचार्य,

भूतपूर्व प्रोफ़ेसर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।

प्रस्तावना

वर्तमान् युग वैज्ञानिक युग है। आधुनिक विज्ञान के द्वारा किये हुए आविष्कारों ने न केवल प्रान्तों की, वरन् देशों, महाद्वीपों और महासागरों की सीमाओं तक को तोड़ डाला है। आज संसार के समस्त देशों के एक मनुष्यजाति के नाम पर अधिक से अधिक समीप होने की आवश्यकता है। इस विश्वबन्धुत्व (Cosmopolitanism) के मार्ग में बाधक—समाज, धर्म, जाति और राष्ट्र तक को भूल जाने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। देशभक्ति भी—जहां तक हमको अन्य देशों के निवासियों से घृणा करने का पाठ सिखाती है—इस विश्वबन्धुत्व के मार्ग में बाधक है। अतः बराबर सैनिकवाद के मार्ग पर अग्रसर होने वाले समस्त देशों को भी इस बात की आवश्यकता प्रतीत हो रही है कि किसी प्रकार संसार से सैनिकवाद का नामनिशान मिट जावे, संसार की समस्त मनुष्यजाति का एक विशाल विश्वराज्य बनाया जावे और विश्वराज्य के नागरिक समस्त भूमण्डल के समस्त प्राणि हों।

इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए सन् १६१६ में जेनेवा में राष्ट्रसंघ (Leauge of Nations) की स्थापना की गई थी; किन्तु जैसा कि समाचारपत्र के साधारण पाठक भी जानते हैं, वर्तमान् राष्ट्रसंघ अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में बिल्कुल ही असफल प्रमाणित हुआ।

रष्ट्रसंघ भले ही असफल प्रमाणित हो, किन्तु विश्वशान्ति के देवदूत निराश होने वाले नहीं थे। उन्होंने भावी विश्वराज्य के स्थापित करने की तैयारी आरंभ कर दी और उसके लिये योग्य नागरिक बनाने के कार्य में जुट गये। भारतमाता के अत्युज्वल लाल देशभक्त लाला हरदयाल जी भी विश्वशान्ति के उन्हीं देवदूतों में से हैं। आपने अपने इंगलिश ग्रन्थ Hints for Self Culture में न केवल विश्वराज्य की भावी योजना का ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, वरन् उन्होंने संसार भर के नवयुवकों को उस भावी विश्वराज्य के नागरिक अभी से बनने का निमन्त्रण दिया है। हमारे प्रस्तुत ग्रन्थ आत्म निर्माण की उक्त लाला जी के उसी ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध के आधार पर रचना की गई है।

इस ग्रन्थ में प्रत्येक बात पर बुद्धिवाद (Rationalism) की दृष्टि से विचार किया गया है। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय भावी विश्वराज्य के नागरिकों का आत्मिक निर्माण है। इस उद्देश्य के लिये इस ग्रन्थ को निम्नलिखित तीन खंडों में विभक्त किया गया है—

बुद्धिनिर्माण, शरीरनिर्माण, और ललितरुचिनिर्माण।

बुद्धिनिर्माण में विश्वराज्य के उन भावी नागरिकों को अनेक प्रकार की विद्याओं के अध्ययन करने की विधि को बतलाते हुए, अपने ज्ञान के बुद्धिवाद में उपयोग और उसके द्वारा विश्व नागरिक बनने की विधि को बतलाया गया है। इस खण्ड का वर्णन इतनी उत्तमता से किया गया है कि उस वर्णन के कारण

इस ग्रन्थ का नामकरण विश्वकोष (Encyclopeadia) बड़ी सुगमता से किया जा सकता है।

इसके प्रथम खण्ड में गणित, तर्कशास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायनविज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, आकाशजविज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, त्रसजीवविज्ञान, (प्राणिविज्ञान); विज्ञान के इतिहास, विज्ञान के आरम्भिक सिद्धान्त, इतिहास, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, समाजविज्ञान, भाषाओं, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अथवा विश्वभाषा, और तुलनात्मक धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन बड़े सुगम ढंग पर करके उनका अपने विश्वनागरिक जीवन में उपयोग करने की विधि दी हुई है।

शरीरनिर्माण में उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त करने की विधि और ललित रुचि निर्माण में भिन्न २ ललित कलाओं—वास्तुकला (Architecture), आलेख्यकला (Sculpture), चित्रकला, संगीत कला, वक्तृत्वकला और कवित्वकला के सिद्धान्तों का वर्णन करके उनका बुद्धिवादी ढंग पर अपने विश्वनागरिक जीवन में उपयोग करने की विधि दी गई है।

इस प्रकार बुद्धि, शरीर तथा ललितरुचि के निर्माण में प्रधान सहायक होने के कारण इस ग्रन्थ का नाम ही 'आत्म निर्माण' रखा गया है।

इस बात को बहुत कम हिन्दी पाठक जानते होंगे कि इस प्रकार के ग्रन्थों के आशय को हिन्दी में उपस्थित करना अथवा उनका हिन्दी में अनुवाद करना अंग्रेजी और हिन्दी के बड़े से बड़े

विद्वान् के लिये भी सुगम नहीं है। हिन्दी में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का अभाव,इस मार्ग में पग २ पर नई २ बाधाएं उपस्थित कर देता है। वैज्ञानिक परिभाषाओं का अनुवाद तो एक ओर, अभो हिन्दी में विज्ञानों के भिन्न २ सब नामों का भी अनुवाद नहीं हुआ। हिन्दी में Biology और Zoology दोनों के ही लिये प्राणिविज्ञान शब्द है। Zoology के लिये 'पशुविज्ञान' शब्द भी उपयुक्त नहीं जंचता। हमने इस प्रकार के शब्दों के लिये प्राच्य भारत के विभिन्न दर्शनों के शब्दों का अत्यन्त सावधानी से पर्यालोचन किया। विचार करने पर हमको जैन दर्शन में से अपने मतलब के कई शब्द मिले। जैन दर्शन में सांसारिक पदार्थों के मुख्य दो भेद किये गये हैं—जीव और पुद्गल। जैनियों के इस पुद्गल शब्द की परिभाषा अंगरेजी के 'मैटर' (Matter) शब्द से एक दम मिलती है। सांख्य दर्शन का 'प्रकृति' शब्द इंगलिश के मैटर शब्द से बहुत दूर जा पड़ता है। अतएव हमने इस ग्रन्थ में स्थान २ पर मैटर के लिये 'पुद्गल' शब्द का और 'मैटीरिल' शब्द के लिये 'पौद्गलिक' शब्द का प्रयोग किया है। जैन दर्शन में जीवों के फिर दो भेद हैं—स्थावर और त्रस। जो जीव पैदा होते हों, बढ़ते हों और चल फिर न सकते हों उनको स्थावर जीव कहते हैं। वृक्ष आदि को जैनियों ने इस प्रकार स्थावर जीव माना है और शेष जीवों को त्रसजीव माना है। अतएव हमने Zoology शब्द का अनुवाद त्रसजीवविज्ञान किया है। पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार ही जैन दर्शन में भी कीटाणुओं का सिद्धान्त

प्रथक् है। उनको जैन दर्शन में सूक्ष्मजीव कहते हैं। अतएव इन जीवों के विज्ञान Bacteriology का अनुवाद हमने सूक्ष्मजीव-विज्ञान अथवा कीटाणुविज्ञान किया है।

विज्ञ पाठकों को यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि इस ग्रन्थ में लाला हरदयाल के विचारों का ही वर्णन किया गया है।

यद्यपि इनमें ईश्वर तथा जीव आदि के सम्बन्ध के अनेक विचारों से पाठकों का मत भेद हो सकता है; किन्तु हमारा इन विचारों को जनता के सन्मुख उपस्थित करने का आशय यह है कि वह प्रत्येक बात में रूढ़िपंथ का अनुगमन किये बिना स्वतंत्र ढंग पर बुद्धिवाद की दृष्टि में विचार करना सीखें। हमारा पाठकों से अनुरोध है कि वह इस ग्रन्थ के प्रत्येक विषय पर रुढ़िवाद अथवा ला० हरदयाल किसी की भी चिन्ता किये बिना स्वतंत्ररूप से विचार करें और भावी विश्वराज्य के सुयोग्य नागरिक बनने का अधिक से अधिक संख्या में उद्योग करें।

नं० ८११ धर्मपुरा देहली।
ता० १५ मार्च १९३७ ई०

चन्द्रशेखर शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ

प्रथम खण्ड—बुद्धिनिर्माण ३

ज्ञान के लाभ ४

ज्ञान प्राप्ति का उपाय ५

ज्ञान प्राप्ति में बाधाएं ८

ज्ञान के विषय में धर्म प्रवर्तकों की उदासीनता ११

१. विज्ञान १३

विज्ञान की व्यवहारिकता १४

विज्ञान के अध्ययन की विधि १५

विज्ञान के लाभ १६

गणित १७

तर्क शास्त्र १८

भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान १९

ज्योतिर्विज्ञान २२

आकाशज विज्ञान ३४

भूगर्भविज्ञान ३६

वनस्पति विज्ञान ३८

त्रसजीव विज्ञान (प्राणि विज्ञान) ४१

जीवों का वर्णन ४२

जीव के सम्बन्ध में वैज्ञानिक सिद्धान्त ४७
सृष्टिक्रम के सम्बन्ध में अन्धविश्वास ५१
प्राणि विज्ञान से दया का शिक्षा ५३
विज्ञान का इतिहास ५४
आरंभिक सिद्धान्त ५६
आकाश और काल ५७
कार्यकारण सम्बन्ध ५९
परिवर्तन वाद ६०
पञ्च महावर्ग ६१
कुछ भूलें ६४
२. इतिहास ८१
इतिहास के लाभ ८१
अध्ययन की ठीक विधि ९५
इतिहास का सार्वभौम दृष्टिकोण ९६
सार्वभौम इतिहास का स्वरूप ९७
राष्ट्रीय इतिहास इतिहास नहीं है ९८
नये सम्वत् की आवश्यकता १०३
भूतकालीन राजनीति ही इतिहास नहीं है १०४
इतिहास का सार १०७
इतिहास की कुछ शिक्षाएं ११२
इतिहास के कुछ सिद्धान्त १२१

भाग्य और ईश्वर इतिहास का निर्माण नहीं करते १२१
जीवात्मा भी इतिहास का निर्माता नहीं है १२३
इतिहास–निर्माण में परिस्थिति का स्थान १२६
इतिहास–निर्माण में व्यक्तित्व का स्थान १३४
इतिहास-निर्माण में आर्थिक दशा का स्थान १३८
इतिहास–निर्माण में राजनीतक संस्थाओं का स्थान १३४
परिस्थिति और व्यक्तित्व की संयुक्त शक्ति १४६
सार्वजनिक नियम की अव्यवहारिकता १४८
कोम्टे के सिद्धान्त का खडन १५०
विकासवाद का खंडन १५२
कल्पित युगवाद का खंडन १५४
आशावाद का खंडन १५६
निराशावाद का खडन १६०
यथार्थ सिद्धान्त १६२
अन्वीक्षण १६४
मिश्र और बैबीलोनिया १६४
असीरिया १६५
प्राचीन ईरान १६६
इबरानी लोग १६७
प्राचीन मेक्सिको १६९
चीन १७१
भारतवर्ष १७४

यूनानी लोग १७६
रोमन लोग १७७
पूर्वीय रोमन साम्राज्य १७९
मध्यकालीन यूरोप १८०
इस्लामी सभ्यता १८३
वर्तमान युग १८५
परिणाम १९०
३. मनोविज्ञान १९४
४. अर्थशास्त्र २०१
५. दर्शनशास्त्र २०७
६. समाजविज्ञान २२४
७. भाषाएं २२८
सहायक विश्व भाषा की आवश्यकता २३४
एस्पेरैंटो भाषा २३४
विश्व भाषा की विशेषता २३८
एस्पैरैंटों भाषा की विशेषता २३९
प्राचीन भाषाएं २४१
अनुवादक लोग २४५
८. तुलनात्मक धर्म २४९
प्राचीन धर्मों के उत्तम तत्व २५०
सामाजिक नियम मनुष्य के बनाये हुए हैं २५१

बाह्य धर्म क्रिया व्यर्थ है २५३
स्वर्ग और नरक ढकोसले हैं २५४
धर्म प्रवर्तकों का नैतिक अनुकरण २५८
ईश्वर नाम का खंडन २५८
सृष्टि रचना के भिन्न २ सिद्धान्तों का खंडन २६०
ईश्वर के अस्तित्व का खंडन २६२
विभिन्न विज्ञानों की साक्षी २६६
ईश्वर के खंडन में अन्य युक्तियां २८०
ईश्वरवाद से होने वाली हानियां २८६

द्वितीय खण्ड-शरीर निर्माण २९९

स्वस्थ्यरक्षा की विभिन्न प्रणालियां ३०५
शुद्ध वायु ३०६
जल ३०७
धूप ३०८
भोजन ३०९
  उग्र अपथ्य ३१३
  सामान अपथ्य ३१४
  पथ्य ३२०
व्यायाम ३२६
खेल-कूद ३२८

शक्ति को सुरक्षित रखना ३२९

आशावाद और परोपकार ३३०

तृतीय खण्ड-ललितरुचि निर्माण ३३३

१. कला का सिद्धान्त और कार्य ३३४

२. वास्तुकला ३५८

३. आलेख्यकला ३६१

यूनानी आलेख्य कला ३६३

जापानी आलेख्य कला ३६४

गान्धार की आलेख्य कला ३६५

आधुनिक आलेख्य कला ३६६

४. चित्रकला ३६८

चीन की चित्रकला ३६९

इटली की चित्रकला ३७०

आधुनिक चित्रकला ३७२

५. संगीत ३७४

६. नृत्य तथा वक्तृत्व कला ३७८

७. कवित्वकला ३८१

कविता के प्रशंसात्मक लक्षण ३८२

कविता के निन्दात्मक लक्षण ३८४

कविता का यथार्थ लक्षण ३८५

कविता के अंग---- ३८६

    छन्द ३८६

    कल्पना ३८६

    भाव ३८७

    सौन्दर्य ३८८

कविता के लाभ ३८८

कविता के अध्ययन करने का ढंग ३९५

अच्छी और बुरी कविता की परीक्षा ३९६

कविता के त्याज्य विषय ३९७

    १. निराशावाद ३९७

    २. अंध विश्वास ३९८

    ३. निर्दयता और घृणा ४००

    ४. आनन्दवाद और इन्द्रियप्रियता ४०५

    ५. चापलूसी ४०६

कविता पढ़ने की सर्वोत्तम प्रणाली ४०८

कविता की पुस्तक को पसंद करने कीविधि ४१२

पढ़ने योग कविताएं ४१३

आत्म निर्माण

अथवा

विश्वबंधुत्व और बुद्धिवाद

प्रथम खंड

बुद्धि निर्माण

अध्याय प्रथम विज्ञान
द्वितीय इतिहास
तृतीय मनोविज्ञान
चतुर्थ अर्थशास्त्र
पंचम दर्शन शास्त्र
षष्ठ समाजविज्ञान
सप्तम भषाएं
अष्टम तुलनात्मक धर्म

बुद्धि निर्माण

मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि को विकसित करता हुआ सदा ही ज्ञान प्राप्त करता रहे। वह जितना ही अधिक ज्ञान प्राप्त करेगा उतना ही मानव कर्तव्य का अधिक पालन करेगा। ज्ञान उस गहरे कुवे के समान है, जिसके सोते का जल पूरे वर्ष भर कभी कम नहीं होता और मनुष्य की बुद्धि उस छोटी डोलची के समान है, जिसे उसमें डालकर ज्ञानरूपी जल निकाला जाता है। वास्तव में बुद्धिरूपी डोलची में उतना ही ज्ञानरूपी जल आवेगा, जितना वह डोलची थाम सकेगी। बुद्धि का शारीरिक अंग मस्तिष्क अथवा भेजा है। मनुष्य के अंदर विकास के दो अत्यन्त मूल्यवान् विषय हैं—एक भेजा अथवा मस्तिष्क, दूसरी थोड़ी "सामाजिक मनोवृत्ति"। यह आश्चर्यजनक मस्तिष्क ही जिसकी प्रत्येक सिकुड़न का विकास कई २ लाख वर्षों में हुआ

है, मनुष्य को अन्य प्राणियों से विशेषतायुक्त प्रगट करता है। अनेक प्राणियों की ज्ञानेन्द्रियां अत्यंत शक्तिशाली होती हैं। गिद्ध, चींटी और कुत्ते की ज्ञानेन्द्रियां मनुष्य से अधिक तेज होती हैं। किंतु मनुष्य की अपेक्षा अधिक विकसित मस्तिष्क तथा उच्च कोटि की बुद्धि किसी भी अन्य प्राणि में नहीं होती। यदि इस मस्तिष्क का विकास शक्ति भर न किया जावे तो मनुष्य और पशु में कोई अंतर न रहे।

ज्ञान के लाभ

ज्ञान तथा मानसिक स्व--संस्कृति से मनुष्य को अनेक महत्त्वपूर्ण लाभ होते हैं। इससे मनुष्य की धर्म तथा राजनीति में अन्धविश्वास और भेड़िया धसानपने की प्रवृत्ति नहीं रहती। वह अपने कर्तव्य को जान कर उसके अनुसार आचरण करने लगेगा। वह धर्म और राजनीति में विद्वान् और स्वतंत्र हो जावेगा। वह स्वार्थी पुरोहितों, कोरे कार्यक्रम बनाने वाले पूँजीवाद के राजनीतिज्ञों तथा साम्यवादियों के वश में अनजाने ही मूर्ख न बनेगा। क्या इस उच्च उद्देश्य के लिये परिश्रम करना अधिक योग्य नहीं है? आज कल के अधिकांश स्त्री पुरुष स्वतंत्र और बुद्धिमान् नहीं होते; वह उड़ते हुए पतंग के समान होते हैं और उस पतंग की डोरी पुरोहितों और राजनीतिज्ञों के हाथ में होती है। वह विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, तथा अन्य विषयों का ज्ञान न होने के कारण मुंडते तथा मूर्ख बनाये जाते हैं। मनुष्य जाति की आधी त्रुटियां अज्ञानवश और शेष आधी अहंकार के

कारण होती हैं। आचरण के ही समान ज्ञान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वास्तव में यह दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। जैसा कि लेसिंग (Lessing) का कहना है : "ज्ञान का उद्देश्य सत्य का अन्वेषण करना है, और सत्य ही आत्मा की आवश्यकता है।" फारसी कवि सादी भी निम्न शब्दों में सभी को अत्यंत उत्साह के साथ ज्ञान प्राप्त करते रहने की ही प्रेरणा करता है, "तुझको मोमबत्ती के समान ज्ञान के अन्वेषण में पिघल जाना चाहिये। यदि तुझे संसार भर में भी यात्रा करनी पड़े तो तेरा यही कर्तव्य है।"

ज्ञान प्राप्ति का उपाय

ज्ञान के लिये कभी समाप्त न होने वाले युद्ध में, आप प्रतिदिन नियमानुसार लगे रहो। अपने समय का कुछ भाग अध्ययन अथवा प्रयोग के लिये दैनिक दिया करो। शरीर को प्रतिदिन कई २ बार भोजन दिया जाता है; बुद्धि को भी भूखी मत रखो। अपने पास एक डायरी अवश्य रखा करो, इसमें नई २ पुस्तकों के नाम नोट करते जाओ। पुस्तक विक्रेताओं से नये और पुराने सूचीपत्र लेकर उनको पढ़ना चाहिये। दूकानों में सदा ही सस्ती और पुरानी पुस्तकें खोजते रहो। चाहे जितना भी छोटा क्यों न हो, अपना एक पुस्तकालय अवश्य बनाओ। अपने घर को सजाने वाली पुस्तकों से अपने को गौरवान्वित समझो। मोल ली हुई अपनी प्रत्येक पुस्तक से आपकी मानसिक रचना में कुछ न कुछ विकास अवश्य होगा। सार्वजनिक पुस्तकालयों और अपने मित्रों

से पुस्तकें लेकर पढ़ा करो; किंतु उनको ठीक समय पर वापिस करने में कभी भूल मत किया करो। जो कुछ पढ़ो उसका संक्षेप बनाकर उसके नोट रखते जाओ; अन्यथा आपका अध्ययन एक ढलवां छत पर पड़ी हुई वर्षा के समान ही हो जावेगा। अध्ययन किये हुए विषय की कई २ बार आवृत्ति करके अपनी स्मृति को सदा ताज़ा बनाते रहो; मैकाले के समान आपका समस्त ज्ञान आपको सदा उपस्थित रहना चाहिये। अपने ज्ञान की गहराई का उसी प्रकार हिसाब रखो—जिस प्रकार आपको अपने बैंक के रुपये का सदा पता रहता है अथवा, जिस प्रकार गृहिणी को घर के भण्डार की सामग्री का पता रहता है। जिस प्रकार राजनीतिज्ञ लोग पहिले से ही आर्थिक कार्यक्रम बनाते हैं, अथवा सेनापति युद्ध में लड़ने का कार्यक्रम बनाता है उसी प्रकार कई वर्ष पूर्व ही अपने अध्ययन का कार्यक्रम बना डालो। अपनी आय के एक भाग को पुस्तकों और समाचार पत्रों को मोल लेने के लिये पृथक् रखते जाओ; उसका नाम 'पुस्तक खाता' अथवा 'पुस्तक निधि' रखो, और उससे दूसरा कोई भी काम न लो। इस प्रकार आप सुगमता पूर्वक पुस्तकों में द्रव्य व्यय कर सकोगे। वैज्ञानिक और साहित्यिक संस्थाओं तथा अध्ययन क्षेत्रों से सम्बन्ध बनाये रखो; उनके थोड़े २ चन्दों में कँजूसी मत करो। छोटे २ ऐसे संघ बनाना ज्ञान प्राप्ति का एक अच्छा उपाय है, जिनमें प्रत्येक सदस्य एक नई पुस्तक पढ़कर उसके ऊपर इस प्रकार का एक लेख उपस्थित किया करे, जिसमें मूल पुस्तक के बहुत से अवतरण दिये हुए हों। इस

प्रकार का सह-अध्ययन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि दुर्भाग्य-वश आपके पास फ़ालतू समय बहुत कम रहता है। ज्ञान के पिपासु के लिये जीवन बहुत छोटा—अत्यंत छोटा है। यदि आप मार्कण्डेय ऋषि अथवा हनुमानजी के समान अमर होते और आपका यौवन सदा बना रहता तो आप निश्चय से सौ वर्ष ज्योतिर्विज्ञान के अध्ययन में, सौ वर्ष प्राणि विज्ञान में और सौ २ वर्ष इतिहास आदि में सुगमता से लगा सकते थे। यहां तक कि आप अपने को वास्तव में ही विद्वान् कह सकते। किंतु खेद है कि हमारा जीवनकाल कुछ वर्षों और महीनों में ही परिमित है, शताब्दियों और लाखों वर्ष का नहीं है। जिस समय हमको अपनी अल्पज्ञता की यथार्थता का बोध होता है तो हम वृद्ध हो जाते हैं। अतएव विद्याभ्यास में शीघ्रता करनी चाहिये। प्रसिद्ध ऐतिहासिक जे० आर० ग्रीन ने लिखा था, "मैं जानता हूं कि लोग मेरे विषय में क्या कहा करेंगे, वह कहेंगे, कि 'वह पढ़ता पढ़ता ही मर गया।' " आपकी शोभा इसमें है कि लोग आपके विषय में भी यही कहें। यदि आप जन्म भर अध्ययन करते रहेंगे तो यह बहुत अधिक सम्भव है कि आपका अध्ययन इस छोटे से जीवन के समाप्त होने से भी चलता ही रहेगा। ओडीसियस (Odysseus) के समान निश्चय करलो कि

> "डूबते हुये तारे के समान ज्ञान का यहां तक अनुसरण करना है,
> कि वह मानवी विचारों की बड़ी से बड़ी कल्पना से भी दूर हो।"

संभवतः अधिक ज्ञान उस बड़ी से बड़ी कल्पना से भी

दूर है; और फिर वह बराबर अधिकाधिक दूर ही होता चला जाता है।

ज्ञान प्राप्ति में बाधाएं

मानसिक आत्मोन्नति में दो बड़ी बाधाएं हैं। आपको प्रथम उनके ऊपर विजय प्राप्त करनी चाहिये।

(१) बहुत से स्त्री पुरुषों की मनोवृत्ति इतनी व्यवसायिक होती है कि वह ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहते जिससे पैसे की आय न हो। उनका विश्वास है कि जिस अध्ययन और मस्तिष्क के कार्य के बदले में रुपया न मिले उसमें परिश्रम करना मूर्खता है। वह रुपये के लिये ही कठिन परिश्रम करके शेष समय को खेल कूद और आमोद प्रमोद में व्यतीत किया करते हैं। उनके जीवन का यही नियम जान पड़ता है। बुद्धि का मूल्य उनकी दृष्टि में भौतिक उन्नति करने में ही है। वह व्यक्तिगत मानसिक उन्नति को मूर्खतापूर्ण कार्य समझते हैं। यही कष्टकर भौतिक मनोवृत्ति समाज के सभी वर्गों में गहरी जड़ जमाये हुए है। धनी और निर्धन, सब में यही रोग है। एक वृद्धा मजदूरनी ने मुझसे अपने पुत्र की कभी २ सस्ती पुस्तकें खरीदने की प्रकृति के विषय में शिकायत करते हुए कहा था, "वह पुस्तकों में रुपया बरबाद करता रहता है। भला उनसे उसका क्या लाभ होना है? वह एक बढ़ई है, अध्यापक नहीं।" हमको नित्य ही ऐसे अनेक व्यक्ति मिला करते हैं, जिनका जीवन उनके व्यापार (चाहे वह कुछ भी क्यों न हो) और तुच्छ आमोद-प्रमोद की

चक्की में इसी प्रकार पिस कर व्यर्थ में व्यतीत होता रहता है। भले ही वह अपने व्यवसाय, उद्योग, वकालत, ईश्वरीयज्ञान, चिकित्सा अथवा कला में सफल और प्रसिद्ध हों; किन्तु जब वह अपने पीछे केवल मक्खन और रोटी ही छोड़ जाते हैं, तो पता लगता है कि वह केवल शतरंज की चालों और पहाड़ियों पर चढ़ने का ही ज्ञान रखते थे।

इस प्रकार के एकपक्षीय अत्यंत दुनियादार मनुष्यों से मैं यही कहूंगा, "छाया को पकड़ने और असली तत्त्व के छूटने से पूर्व ही चेत जाओ। आप अपने मस्तिष्क को रुपये में परिणत कर सकते हो, किंतु इस अवस्था में आप प्रकृति के इस दुर्लभ उपहार का दुर्व्यवहार और दुरुपयोग करते हो। बुद्धि से विशेष रूप से उन्नति और सामाजिक सेवा के साधन के रूप में ही काम लेना चाहिये। वह आपके नगर वासियों के विरुद्ध षड़यंत्र करने का औजार न बने। यदि तुम सभी प्रकार के मस्तिष्क के कार्य को केवल रुपया पैदा करने का साधन ही समझते हो, तो तुम पतित और दयनीय वेश्या के समान हो। इस प्रकार की नीचता हमारे पूंजीवादी संसार में इतनी अधिक प्रचलित है कि तुम उसको उचित समझते हो। तुम उससे न तो रुकते हो, न आश्चर्यचकित होते हो। प्रकृति ने आपको मस्तिष्क जानने, सोचने, समझने, विचार करने, अनुसंधान करने, आविष्कार करने और अत्यन्त आनन्द लेने के लिये दिया है। यह आनन्द उन सब को आता है, जो प्रकृति के बड़े भारी नियम को पूरा करते हैं। ज्ञान के

अन्वेषण से जो सुख और परमानन्द उसके अन्वेषकों को होता है, उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। फ्रांसीसी साहित्य में 'जीवन के आनन्द' का वर्णन किया गया है, किंतु उन की सुन्दर भाषा में 'ज्ञान के आनन्द' का एक शब्द और बढ़ाकर उनके साहित्य को एक नया शब्द देना चाहिये। यदि आप सार्वतोमुखी मानसिक उन्नति के कर्तव्य से जी चुराते हो तो आप अपने को उस अकथनीय आनन्द से वंचित करते हो, जिसको संसार की बड़ी से बड़ी सम्पत्ति से भी मोल नहीं लिया जा सकता। अतएव रुपयों के बड़े २ थैलों के बोझ के नीचे दबे हुए बौद्धिक बौने बने रहने में संतुष्ट मत रहो। अपने मस्तिष्क के अधिक से अधिक विकास के लिये पूर्ण यत्न करते जाओ, और प्रकृति भी तुम्हें यही करने की आज्ञा देती है। स्वयं ही अपने सब से बड़े शत्रु मत बनो। अपने आप को खराब मत करो।

(२) अनेक मिथ्या सिद्धान्तों और पुरातन विश्वासों ने लाखों स्त्री पुरुषों को बौद्धिक उन्नति का कार्य करने से मार्गभ्रष्ट कर दिया है। यहां तक कि उन को अपनी अज्ञानता और मूर्खता पर अभिमान कराया है। यद्यपि देखने में यह बात विचित्र और अविश्वसनीय जान पड़ती है; किंतु वास्तव में यह पूर्णतया सत्य है।

ज्ञान के विषय में धर्म प्रवर्तकों की उदासीनता

कुछ धार्मिक नेता शिक्षा दिया करते हैं कि मनुष्य केवल शरीर और आत्मा से ही बना होता है; किन्तु बुद्धि के विषय में वह बराबर मौन ही रहते हैं। उनके अनुयायी पृथ्वी पर शरीर

को भोजन देने तथा मृत्यु के पश्चात् आत्मा को विनाश से बचाने का उद्योग करते हैं; किन्तु मस्तिष्क के दावे की वह भी उपेक्षा ही करते हैं। शरीर के लिये भोजन और आत्मा के लिये गुण; मनुष्य के हित के लिये यह बातें लोक और परलोक दोनों में ही अनिवार्य समझी जाती हैं। ज्ञान और शिक्षा के विषय में तो कुछ भी नहीं कहा गया। ईसामसीह ने भूखों को भोजन देने, रोगियों की सुश्रूषा करने, और पापियों को शुद्ध करने के विषय में बहुत कुछ कहा है; किन्तु उसने मूर्खों को शिक्षा देने और वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार करने के विषय में कभी उपदेश नहीं दिया। ईसामसीह स्वयं भी एक अधिक शिक्षित मनुष्य नहीं था। अतएव बौद्धिक कार्य उसके कार्यक्षेत्र से बाहिर थे। गौतम बुद्ध ने नैतिकता, ध्यान और साधुसमाधि पर ही विशेष बल दिया है। किन्तु उसने भी इतिहास, विज्ञान, कला अथवा साहित्य के महत्त्व पर कोई ज़ोर नहीं दिया। सेंट ऐंब्रोजे ने तो वैज्ञानिक अध्ययन की निन्दा करते हुये कहा है, "पृथ्वी की प्रकृति और परिस्थिति पर वादविवाद करने से हमको हमारे भावी जीवन की आशा में सहायता नहीं मिलती।" सेंट बेसिल ने भी अत्यंत स्पष्टता और मूर्ख़ता से कहा है, "पृथ्वी गोल बेलन जैसी अथवा चक्करदार है, इससे हमें कोई मतलब नहीं।" टामस कारलाइल ने यह कह कर कि वह केवल दो मनुष्यों का ही सम्मान करता है—हाथ से श्रम करने वाले और धर्मोपदेशक का, तीसरे का नहीं—ईसाइयों की अन्ध परम्परा का ही अनुसरण

किया है। वह वैज्ञानिक, विद्वान्, और कलाकार सभी को भूल गया। यूनान के * साइनिक लोग (Cynics) शिक्षा तथा बुद्धि सम्बन्धी कार्यों की सदा निन्दा किया करते थे और कहा करते थे कि केवल गुण ही प्राप्त करने चाहियें। इस प्रकार के अपूर्ण आदर्श से बहुत से उत्साही स्त्री पुरुष बुद्धि सम्बन्धी कार्यों को अनावश्यक और व्यर्थ समझ कर छोड़ बैठे। आपको अपने मस्तिष्क को जीवन के ऐसे अनुचित सिद्धान्तों का दास नहीं बनने देना चाहिये। इन सिद्धान्तों से अच्छे से अच्छे स्त्री पुरुष गुणी और पवित्र पशु बन जाते हैं। अज्ञानता पाशविकता है; और ज्ञान आश्चर्यजनक रूप से मनुष्य की विशेष शक्ति है।

ओछेपन, धन की तृष्णा और अन्ध विश्वास से छुटकारा पाकर आपको परिश्रम तथा उत्साह पूर्वक मानसिक आत्मोन्नति में लग जाना चाहिये। यह क्षेत्र बड़ा विस्तीर्ण है। इसमें आप अपने आपको उष्ण देशों के मेवों के बगीचे में घूमने वाले एक लड़के के समान अनुभव करोगे, जहां अनेक प्रकार के स्वादिष्ट फल आपके नेत्रों को ललचावेंगे और आपको बौद्धिक स्वाद देंगे; जहां आप आम, लीची, अमरूद और पथैया जैसे फलों के बौद्धिक स्वर्ग में विहार करेंगे। ज्ञान के फलों का मिठास अनन्त और अपरिमेय होता है। अब हमको उन विभिन्न विषयों पर थोड़ा विचार करना है, जिनका आपको अपने साधनों और अवसरों के अनुसार अध्ययन करना चाहिये।

---

*एक यूनानी दार्शनिक सम्प्रदाय, जो धनवैभव, कला और विज्ञान से घृणा करता था।

अध्याय प्रथम

विज्ञान

प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन शिक्षा का आवश्यक भाग है। आपको वैज्ञानिक अध्ययन में हर्बर्ट स्पेंसर अथवा चार्ल्स डारविन के समान केवल एक विषय का ही विद्वान् नहीं बन जाना चाहिये। हर्बर्ट स्पेंसर का विचार था कि केवल प्राकृतिक विज्ञान ही अध्ययन योग्य विषय है, और डारविन तो विज्ञान के प्रति अपनी अत्यधिक भक्ति के कारण कला का आनन्द लेने की योग्यता से भी हाथ धो बैठा था। किन्तु विज्ञान के लिये आपको उसके समय का योग्य भाग, और उससे कुछ ही अधिक देना चाहिये। वर्तमान काल में साहित्य, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र के पक्ष में विज्ञान की पूर्णतया उपेक्षा की जाती है।

विज्ञान की व्यवहारिकता

आप सोच सकते हैं कि विज्ञान रूक्ष और क्लिष्ट विषय है। विज्ञान के कुछ ग्रन्थों में तो पारिभाषिक शब्दों और भयानक फार्मूलों के ऊबड़ खाबड़ भाव होते हैं। किन्तु आपको प्राकृतिक विज्ञान की सभी शाखाओं के सभी विवरणों का पूर्ण अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है, वह कार्य प्रत्येक विषय के विशेषज्ञों का है। वास्तव में तो आप अपने जन्म लेने के दिन से ही एक सामान्य प्रकार के वैज्ञानिक हो। आप को इस बात पर उसी प्रकार आश्चर्य होगा, जिस प्रकार मिस्टर जौरडेन को यह सुनकर आश्चर्य हुआ था कि वह चालीस वर्ष से बराबर गद्य में ही बातचीत करता रहा है। किन्तु आप जानते हो कि विज्ञान का अर्थ है प्रकृति की अद्भुत वस्तुओं को ध्यान पूर्वक देखना, कुछ निश्चित नियमों के आधीन प्रयोग करना, वर्गीकरण और निर्णय करना, परिणाम निकालना, कल्पना करना, नियमों को बनाना, स्वयं सिद्ध नियमों का पता लगाना, अन्वेषण, आविष्कार, और ज्ञान का जीवन के व्यवहारिक उद्देश्य में उपयोग करना आदि। बाल्यावस्था में आप पक्षियों और कीड़ों मकौड़ों के स्वभाव को ध्यान पूर्वक देखा करते थे और उनके विषय में कुछ अनुमान किया करते थे; उस समय आप विज्ञान प्रेमी के समान आचरण करते थे। विज्ञान आपसे यह चाहता है कि आप केवल अपने नेत्रों और कानों को खुला रखो इससे ही आपका सचेत और सुशिक्षित मस्तिष्क ध्यानपूर्वक देखी हुई घटनाओं के परिणाम और अभिप्राय को समझ लेगा।

विज्ञान के अध्ययन की विधि

विज्ञान प्रकृति की सभी अद्भुत वस्तुओं का अध्ययन करता है, (प्रकृति में मनुष्य भी आजाता है।) आपके अन्दर की उत्सुकता आपको चारों ओर की वस्तुओं और घटनाओं के विषय में कुछ जानने को प्रवृत्त करती है। आप सूर्य और तारों, वनस्पतियों और प्राणियों को देखते हो जिससे आपकी उत्सुकता, आपका आश्चर्य और आपका कौतुक बढ़ जाता है। आप इस बाह्य जगत् के कारण और इसकी विधि को जानने की इच्छा करते हो। अतएव आप वास्तव में वैज्ञानिक होने से नहीं बच सकते। जैसा कि टी० एच० हक्सले ने कहा है, "शिक्षित और सुसंगठित सामान्य बुद्धि का नाम ही विज्ञान है।" वैज्ञानिक अध्ययन और शोध के अवसर न मिलने से अथवा उसका उपयोग न होने से आपको इस स्वाभाविक उत्सुकता को नहीं मारना चाहिये। जब आप प्रकृति की अद्भुत वस्तुओं के आश्चर्यजनक और रहस्यपूर्ण रूप पर आश्चर्य करना बन्द कर दोगे तो आपकी बुद्धि बिना दबे भी बिल्कुल कुण्ठित और मृतक हो जावेगी। अपनी देखी हुई कौतुकपूर्ण प्राकृतिक अद्भुत वस्तुओं को देखकर उनके विषय में नोट कर लेना प्रकृति की नियमित डायरी रखने का अच्छा उपाय है। तब आपकी डायरी में सूर्यास्त का सुन्दर दृश्य, पूर्ण इन्द्रधनुष, जंगली फूलों की क्यारी, पक्षियों का युद्ध, उल्लू का शब्द, चींटियों के पर्वत जैसे ढेर, उड़ने वाली मछलियां, उत्तरी ध्रुव का प्रकाश, तथा प्रकृति के अन्य अनेक

दृश्य तथा शब्द एकत्रित हो जावेंगे। इस प्रकार आपका शीघ्रता तथा बुद्धिमत्ता पूर्वक अन्वीक्षण करने का अभ्यास बढ़ जावेगा। यह डायरी आपको एकान्त के समय में एक उत्तम मित्र का काम देकर आपकी स्मृति को भी बढ़ावेगी।

विज्ञान के लाभ

विज्ञान आपके अन्धविश्वास को दूर कर देगा। विज्ञान का अपने भक्तों के लिये यही सबसे बड़ा उपहार है। आरंभिक मनुष्य अन्धविश्वास के वायुमण्डल में ही उत्पन्न हुआ था और वह उसी के हिंडौले में पला था। क्योंकि उसको सभी प्राकृतिक अद्भुत वस्तुओं को स्वयं उसी के समान व्यक्तियों के रूप में मानने को विवश किया गया था, जिनको वह देवता, देवियां, दैत्य, अप्सराएं और न जाने क्या २ कहा करता था। सभ्यता की उस बाल्यावस्था में मनुष्य का शत्रु यह अन्धविश्वास सब कहीं था। किन्तु अन्धविश्वास को नष्ट करके और अनैतिकता के प्रभाव के सभी रूपों से उद्धार करके केवल विज्ञान ही आपकी बुद्धि को ठीक कर सकता है। अन्धविश्वास का अर्थ है असत् के अस्तित्व में विश्वास करना; इसके सहस्रों रूप होते हैं और यह सहस्रों प्रकार के बन्धनों में मनुष्यजाति को बांधे हुए है। जातियों के इतिहास में इसने बड़े क्रूरतापूर्ण कार्य और अत्याचार किये हैं। वैसे तो सभी प्रकार के मिथ्या विश्वास भयानक होते हैं, किन्तु अन्धविश्वास विशेष रूप से भयंकर, दृढ़, और महामारी पूर्ण असत्य है। उसके वास्तविक रूप को खोल कर केवल विज्ञान

ही दूर कर सकता है। जैसा कि प्राचीन काल में रोम के बड़े भारी कवि—दर्शनिक ल्यूक्रैटियस (Lucretius) ने कहा था, “अन्धविश्वास भी समय पर कुचला जाकर परों में रौंदा जाता है…इस भय और बुद्धि के अन्धकार को सूर्य की किरणों तथा दिन के चमकीले प्रकाश से दूर न करके दृष्टि और प्रकृति के नियम से दूर करना चाहिये।”

अब आपको उन सब लाभों के विषय में बतलाया जावेगा, जो आप प्रत्येक विज्ञान के अध्ययन से प्राप्त करोगे।

गणित

गणित को मानसिक उन्नति के लिये अवश्य पढ़ना चाहिये। सभी विज्ञानों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण भी इसका पढ़ना आवश्यक है। आप यह विश्वास कर सकते हैं कि गणित एक शुष्क विषय है, किंतु शुष्क वास्तव में आप हो, गणित नहीं। स्कूल या कालेजों को छोड़ कर आपको गणित को भूल कर अन्दर ही अन्दर नहीं दबा देना चाहिये। आपको जीवन भर इसका व्यसन करना चाहिये, तब आप डेस्कार्टीज से सहमत होंगे, जिसने लिखा है, “अपने निश्चित परिणामों और फार्मूलों के कारण मुझे गणित में बड़ा आनन्द आता था।” गणित से आपको स्पष्टता पूर्वक विचार करने और योग्य हेतु देने का अभ्यास पड़ जावेगा। यह आपके मस्तिष्क में से सिलबिल्लेपन और आलस्य को दूर कर देगा। यह आपको विचारों की एकान्तता तथा उनसे नये परिणाम निकालने का अभ्यासी

बना देगा। यह आपको सामान्य रूप से यह बतला देगा कि ज्योतिर्विज्ञान और भौतिक विज्ञान (Physics) के आश्चर्यजनक परिणामों का आविष्कार किस प्रकार किया गया है। यदि आप ग्रहण के विषय में कुछ न जानें तो आप सौर जगत् के विषय में कुछ नहीं जान सकते। आपको गिनती करना ठीक २ सीख कर जीवन में उसका सुन्दर उपयोग करना चाहिये। रेखागणित तथा तत्सम्बन्धी उच्च विषयों का अधिक अध्ययन करने की प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता नहीं है; यह विषय केवल विशेषज्ञों और प्रोफेसरों के लिये ही होते हैं। किन्तु आपको आरंभिक गणित से कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। चाहे यह सत्य हो अथवा नहीं कि यह समस्त विश्व गणित के कुछ फार्मूलों की सहायता से ही समझा जा सकता है (मुझे आशा है कि यह बात ठीक नहीं है); किन्तु आपकी व्यक्तिगत शिक्षा के लिये गणित का पर्याप्त मात्रा में आना आवश्यक है।

तर्क शास्त्र (Logic)

तर्क अथवा न्याय भी एक नियमित विज्ञान है। यह विचारों के नियम, ठीक २ सोचने की पद्धतियों, और विचारों के आवश्यक रूपों को बतलाता है। इसको ठीक २ सोचने और तर्क करने की विद्या भी कह सकते हैं। इस प्रकार यह भी गणित का ही सम्बन्धी है। यह अनेक प्रकार के आभासों (Fallacies) और अशुद्धियों से बचाता है। न्याय और गणित दोनों के ही

विषय में अनुमान के कुछ साधारण रूप होते हैं, जिनके द्वारा मनुष्य की बुद्धि ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञान का उपयोग अपने चारों ओर की वस्तुओं पर करती है। आपको न्याय की एक पाठ्य पुस्तक-:- को पढ़ लेना चाहिये, जो आपको विशेष से सामान्य तर्क करने की प्रणाली (Inductive Logic), अनुमान (Deductive Logic) और गणित सम्बन्धी न्याय के नियम बतलावेगी। किन्तु इस विषय पर अधिक समय नहीं लगाना चाहिये।

भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान

भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान आपको ठीक २ नाप तोल के महत्त्व को बतलावेंगे, साथ ही यह आपके सन्मुख प्रकृति के ताने बाने को भी खोल कर रख देंगे। इनसे आपको पता लगेगा कि शक्ति (Energy) ही ('परमात्मा' नहीं) अन्तिम तत्त्व अथवा वास्तविकता है, जो अपने परमाणुओं (Atoms), विद्युदंशों (Electrons) प्रोटोनों (Protons) सहित पुद्गल (Matter) का रूप धारण कर लेती है। प्रकृति एक बड़ा भारी यंत्र है, जो पुद्गल को शक्ति और शक्ति को पुद्गल का रूप देती रहती है। सारे का सारा विश्व एक समान और एक ही जाति का है। उसमें पृथ्वी और आकाश, चन्द्र सम्बन्धी अथवा अन्य ग्रह सम्बन्धी आदि कोई भेद नहीं हैं। इन दोनों

-:-भारतीय दर्शनों में चार प्रकार के न्याय हैं—गौतम का प्राचीन न्याय, बौद्ध न्याय, जैन न्याय और नव्य न्याय। ला० हरदयाल का उपरोक्त वर्णन पश्चिमीय न्याय का बाह्य रूप है।

विज्ञानों ने ही हम को वर्तमान कालीन उत्तम यंत्रों का उपहार, वाष्प, विद्युत, बेतार का तार, तथा अनेक प्रकार के आविष्कार दिये हैं, जिनसे मनुष्य जाति के इतिहास में एक नवीन युग का उदय हुआ है। यह आविष्कार मनुष्य जाति को कम कार्य, कठिन परिश्रम और थकाने वाले श्रम से बचावेंगे। यदि हम लगातार खोजते चले जावें तो अभी इन विज्ञानों से हम को और भी बहुत कुछ मिलेगा। भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान हम को हमारे बड़े से बड़े स्वप्न से भी अधिक धनी बना देंगे, परिश्रम हम को मुक्ति दिला देगा और सभी साधनों से सम्पन्न कर देगा। शिक्षित स्त्री अथवा पुरुष को इन विज्ञानों की उन्नति का अनुसरण पूर्ण उत्साह के साथ करना चाहिये।

भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान आपकी बुद्धि को स्वाभाविक नियमों के मूल आधार, कारण, परिणाम, अद्भुत वस्तुओं की शृंखला में नियमबद्धता और आवश्यक फार्मूलों आदि को समझने योग्य बना देंगे। तब आप अनेक धार्मिक ग्रन्थों से सम्बन्ध रखने वाले 'चमत्कारों' में विश्वास करना छोड़ देंगे। आपको अनुभव हो जावेगा कि कोई पवित्र मनुष्य, चाहे वह ईसाई, मुसलमान, अथवा बौद्ध कोई भी क्यों न हो, शून्य से मछलियां अथवा रोटियां नहीं ला सकता, अथवा एक शव (लाश) के मीठे २ पकवान नहीं बना सकता। वह पानी पर नहीं चल सकता, हवा में नहीं उड़ सकता, चांद को काट कर उसके टुकड़े नहीं कर सकता, नदी को नहीं पी सकता, तूफ़ान और मेंह नहीं

ला सकता, अपने को अलक्ष्य नहीं कर सकता, लकड़ी के लट्ठों को लम्बा नहीं कर सकता, बनजर स्थान को उपजाऊ नहीं बना सकता, जन्म लेते ही नहीं बोल सकता, दीवारों के अन्दर से नहीं चल सकता, बिना ताली के अपनी अंगुलियों से ही तालों को नहीं खोल सकता, अपने कपड़े को सूर्य की किरणों पर नहीं टांग सकता, स्त्री के वंध्यात्व को अपने शब्दों से ही दूर नहीं कर सकता, और न वह मृतकों को ही जीवित कर सकता है। पहिले इस प्रकार प्रकृति के भौतिक---रसायन विज्ञानों के नियमों को तोड़ने की शक्ति को रखना और इस प्रकार के चमत्कारों की शक्ति होना पवित्रता का विशेष चिन्ह समझा जाता था। यदि कोई प्रचारक अथवा उसका कोई शिष्य आज कल इस प्रकार का दावा करे तो आप उसको निरा झूठ बोलने वाला मूर्ख समझ कर उसकी उपेक्षा करोगे। इस प्रकार के व्यक्ति का आप धर्माधिकारी के रूप में कभी सम्मान न करोगे, वरन् आप उसको किसी सर्कस में बाजीगरी अथवा अन्य प्रकार की नौकरी करने के लिये ही कहोगे। भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान ने इस पुरातन विश्वास को सदा के लिये नष्ट कर दिया कि कोई महात्मा प्रकृति के साथ भी कुछ मूर्खता पूर्ण चालाकी कर सकता है। भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान हमको यह बतलाते हैं कि पुरोहित और धार्मिक गुरु चाहे जितने पवित्र होने पर भी प्राकृतिक वस्तुओं के साधारण कार्य को अचानक अपनी इच्छा से ही कभी परिवर्तित नहीं कर सकते।

ज्योतिर्विज्ञान

ज्योतिर्विज्ञान आपको रहस्य तथा तेज के उस राज्य में पहुँचाता है, जिसकी शोभा पूरे वर्ष भर अथाह बनी रहती है और जो मानवी बुद्धि के लिये प्रायः अगम्य रहा है। आपको विज्ञान के ऊपर अनेक प्रसिद्ध और अर्द्धवैज्ञानिक ग्रन्थ पढ़ने चाहियें। आपको सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा ग्रहों और तारों को देखने का उद्योग भी करना चाहिये। नक्षत्रमण्डलों में नये २ तारे देख कर तथा ध्रुव तारे को वास्तव में दो तारों के रूप में पाकर आपको आश्चर्य से थरथरी चढ़ आवेगी। दूर दर्शक यंत्र वाली किसी वैज्ञानिक समिति के सदस्य अवश्य बन जाओ। यदि किसी प्रयोगशाला में जनता के लाभ के लिये प्रदर्शन होता हो तो आप उससे भी पूरा लाभ उठा सकते हो। यदि आप एक दूरदर्शक यंत्र को स्वयं मोल ले सको तो इस कार्य को शौकिया करो और अपने उत्तम ढंग पर ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी शोध के कार्य में सहायता पहुंचाओ। किसी २ समय गर्मियों में निर्मल रात्रि के समय पृथ्वी पर लेट कर आकाश को काल्पनिक रूप से प्रकाशित करने वाले तारों को देखा करो। इस अनन्त गहन ज्योतिर्मण्डल के प्रताप को अपने आत्मा में प्रवेश करने दो, आकाश को बार २ ध्यानपूर्वक देखते जाओ; और तब तक कोई अन्य कार्य न करो, जब तक आप महाकवि शेले के साथ आपके मुख से आनन्द में यह उद्गार न निकलने लगें—

"ऐ प्रकृति की आत्मा ! यहां

12230

लोकों के इस अनतशून्य में,
जिसकी असीमता पर
आकाश में सबसे ऊपर उड़ने वाली कल्पना भी रुक जाती है,
तेरा उपयुक्त मन्दिर यहाँ है !
ऐ प्रकृति की आत्मा ! तू !
इस रूप में अविनाशी है,
तेरा उपयुक्त मन्दिर यहां है !"

जब कभी ग्रहण का अवसर आया करे, उसे देखने का उद्योग अवश्य किया करो। ग्रहों की गति के विषय में जो कुछ समाचार पत्रों में निकला करे उसको भी समझने का यत्न किया करो। एक आकाशीय गोल (Celestial Globe) को मोल लेकर उसका इतनी गंभीरता से अध्ययन करो कि विभिन्न नक्षत्र समूह आपका पृथ्वी के देशों के समान याद हों जावें। इस प्रकार आप यह अनुभव करने लगोगे कि जो संसार आपके लिये अभी तक अत्यंत दूर और अनिश्चित था, आपका उसी से अब घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया है। गोल के ऊपर इस प्रकार अभ्यास करने की यह विधि अत्यंत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। यात्रा अधिक से अधिक किया करो, जिससे आप उन तारों तथा ज्योतिर्मण्डलों को भी देख सको जो आपकी ओर की पृथ्वी पर से दिखलाई नहीं देते। अपने नेत्रों को उत्तर में उत्तरी ध्रुव के प्रकाश भरोरा वोरिलिस से तथा भूमध्यरेखा पर आकाश के विस्तार से प्रसन्न करने का उद्योग करो ! ज्योतिर्विज्ञान के विशेष २ अंकों

को सदा स्मरण रखो, जिससे आपकी बुद्धि सभी तारों, और विश्व की नीहारिकाओं (Nebulae) के विषय में स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर सके। इस विषय में सौर जगत् के विविध प्रकार की दूरियों तथा अन्य अंकों; निकटतम तारे की दूरी; विशेष तारों की दूरी; निकटतम तथा दूरतम नीहारिकाओं की दूरी तथा चमकीले तारों की चमक के परिमाण आदि को विशेष रूप से स्मरण रखना चाहिये। इस प्रकार के विषयों में ज्योतिर्विज्ञान के अंकों को अपने लिये भूगोल की घटनाओं के समान आनन्द प्रद बना डालो। उस समय आप शून्य आकाश के अन्दर अकेले ही निर्भय यात्रा कर सकेंगे। वहां आपको वह काल्पनिक 'प्रेम' नहीं मिलेगा जो महाकवि दांते के शब्दों में "सूर्य तथा अन्य तारों को भी विचलित कर सकता है;" किंतु वहां आपको कुछ उससे भी अधिक आश्चर्यजनक वस्तु मिलेगी। वहां आप व्यवस्था और विकास के उन तेजमय दो देवदूतों के 'सन्मुख प्रत्यक्ष खड़े होंगे, जो नित्य प्रकृति की पवित्रता की रक्षा किया करते हैं।

ज्योतिर्विज्ञान के नियमित अध्ययन से आपको अनेक प्रकार के अकथनीय लाभ होंगे। आप निश्चय से ही पञ्चांग नहीं बना सकेंगे अथवा होने वाले ग्रहण के विषय में पहिले से ही भविष्यवाणी नहीं कर सकेंगे, क्योंकि वह विषय केवल विशेषज्ञों तथा प्रोफेसरों के लिये छोड़ दिया गया है। किंतु इससे आपका मन और आत्मा उठ कर अनन्तता और रहस्य के आकाशीय प्रदेश में जा पहुंचेगा। दृष्टि से बचने वाली इन किरणों के लिये

मनुष्य की चाह उतनी ही स्थाई हुआ करती है जितनी चाह उसकी पार्थिवजगत् की निश्चित और समझ में आने योग्य घटनाओं के लिये हुआ करती है। मनुष्य केवल सोचने के लिये ही उत्पन्न नहीं हुआ, वह स्वप्न देखने के लिये भी उत्पन्न हुआ है। मन ही मन में आकाश पर घोड़े दौड़ाने से भी मन और बुद्धि पुष्ट होकर तेज़ हो जाते हैं। मानसिक और आत्मिक विकृति की वास्तविक चिकित्सा ज्योतिर्विज्ञान है। आप आकाश में ध्यान-पूर्वक देखते समय उसको नाप नहीं सकते, किन्तु इस प्रकार के व्यायाम से मन बलिष्ठ हो जाता है और फिर उसको विश्राम लेने के लिये विवश होना पड़ता है। आप चन्द्रमा, शुक्र, मंगल, वृहस्पति, यम (प्ल्यूटो) मृगव्याध (Sirius) अथवा रोहिणी नक्षत्र में उड़ कर जाने की इच्छा करते हो; किन्तु आज आप इस कार्य को नहीं कर सकते। किन्तु आपको विश्वास है कि कभी न कभी ऐसा समय अवश्य आवेगा जब मनुष्य आकाश में उड़ा करेंगे और अपनी छुट्टियों के समय को स्वाति, भरणी अथवा कृतिका नक्षत्रों में व्यतीत किया करेंगे। आप इस मूर्खता पूर्ण विचार पर हसेंगे, किन्तु प्रतीक्षा कीजिये। क्योंकि सबसे अन्त में हंसने वाला ही सबसे अच्छी तरह हंसता है। यह कार्य होने हैं और अवश्य होने हैं, जैसा कि विक्टर ह्यूगो और वाल्ट व्हिटमैन ने अपनी कविताओं में कहा है।

तारों और नीहारिकाओं के विषय में आपको खोजना चाहिये कि वह "कितने बड़े हैं ? कितने प्राचीन हैं ? संख्या में

कितने हैं" ? यदि आप प्रचलित विज्ञान की बातों को नियम पूर्वक जानते हो तो आप नीहारिकाओं की शीघ्रता से मिटने वाली चमक को देखकर आश्चर्य चकित रह जाओगे और तब स्वयं ही कह उठोगे, "हैं ! इसके बाद क्या होगा ?" इस विश्व पर भी वह सब विशेषण लागू हो सकते हैं जो ईश्वरीय ज्ञान वाले ईश्वर के विषय में लगाया करते हैं। ईश्वर के समान ही यह विश्व भी निःसीम, अविचार्य, अवक्तव्य अलक्ष्य, स्वयंभू, अनादि और अनन्त है।

इस प्रकार ज्योतिर्विज्ञान आत्मा को ठीक करके उसमें शक्ति भर देता है और आपको विज्ञान की शुद्ध से शुद्ध कविता देता है। इस प्रकार यह आपकी कल्पना शक्ति को विकसित करता है और आपके भावपूर्ण जीवन को अधिक भावपूर्ण बनाता है । ज्योतिर्विज्ञान इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से कार्य करता है। यह आपके सन्मुख जगदुत्पत्ति के वास्तविक दृश्य को उपस्थित करता है। जगदुत्पत्ति के विषय में कुछ योग्य और वैज्ञानिक विचारों से परिचित होना एक सभ्य स्त्री अथवा पुरुष के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मिथ्या जगदुत्पत्ति ही मिथ्या धर्मों का आधार हुआ करती है, मिथ्या धर्म भी आपके लिये पालतू सर्प के ही समान भयंकर है। उत्पत्ति, विकास, और विश्व के प्रसार के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को समझना आपका कर्तव्य है। संसार के सभी धर्म—चाहे वह अफरीका के जंगली से जंगली अथवा अधिक से अधिक वैज्ञानिक ही क्यों न हो—जगदुत्पत्ति के

विषय में कुछ न कुछ अवश्य बतलाते हैं। उनके विचित्र अन्ध-विश्वास विश्व की उत्पत्ति और प्रसार के विषय में उनके सिद्धान्तों पर ही अवलम्बित होते हैं। वास्तव में बुराई की जड़ इसी में है। यदि आप सत्य और जीवन पर पहुँचाने वाले तथा पाप और मृत्यु से बचाने वाले धर्म को चुनना चाहते हो तो पहिले उसकी जगदुत्पत्ति के विषय में ठीक २ ज्ञान प्राप्त कर लो। यदि उस धर्म का जगदुत्पत्ति का सिद्धान्त ग़लत है तो निश्चय से ही वह धर्म भी ग़लत है और उसमें जाने से आपका जीवन बर्बाद हो जावेगा।

ज्योतिर्विज्ञान इस विषय में आपके अन्धविश्वास को दूर कर देगा। वह आप के मन में से मूर्ख पुरोहितों तथा प्राचीन दार्शनिकों के भरे हुए सभी अशुद्ध विचारों को निकाल देगा। इससे आपको विश्व की रचना और उसके लोकों का बहुत कुछ ज्ञान हो जावेगा। तब आप के लिये ईसाई सिद्धान्त के 'स्वर्ग, पाप शोधन स्थान' तथा नर्क; हिन्दुओं के 'स्वर्ग' और 'नरक' मुसलमानों के 'जन्नत' और 'दोज़ख़' महायान सम्प्रदाय के शीत और उष्ण नरक तथा पश्चिमीय स्वर्ग; यूनानियों के मृत्युलोक (Hades), आदि में विश्वास करना कठिन हो जावेगा। आज कल के बड़े २ दूरदर्शक यंत्र विश्व के प्रत्येक भाग में झांक कर देख सकते हैं। उनमें आप इस निःसीम विश्व को एक नाट्यमंच के समान स्पष्टता से देख सकते हो। वैज्ञानिक जिसको देख नहीं सकते उसका भी चित्र ले सकते हैं। अतएव उसके अन्वेषक

नेत्रों और ग्राहक प्लेटों से कुछ भी नहीं बच सकता।

इस समय लाखों स्त्री पुरुष यही विचार करते हैं कि स्वर्ग और नरक आकाश में ही किसी ऐसे स्थान पर हैं कि वह हमारे लिये रहस्य ही बने हुए हैं। ज्योतिर्विज्ञान इन अंधविश्वासों को क्षण मात्र में ही दूर भगा देता है। ज्योतिर्विज्ञान ग्रहण, पुच्छलतारों, अग्निगोलकों, उल्काओं तथा तारा टूटने आदि के विषय में भी उन अंधविश्वासों को दूर करता है, जो अशिक्षितों में फैले हुए हैं। ग्रहण और पुच्छलतारों से तो अनेक देशों में भय छा जाता है। हेली के पुच्छलतारे से तो ग्यारहवीं शताब्दी में सारा यूरोप ही थरथरा उठा था। बैयेक्स के *दीवार के पर्दे (Bayeux Tapestry) पर उस समय जनता में फैले हुए आकस्मिक आंतक को चित्रित किया गया है। वर्जिल (Virgil) ने सूर्य में ईश्वरीय दूतों के समान शक्ति का अस्तित्व बतलाते हुए लिखा है, "सूर्य को धोखेबाज़ कहने का साहस कौन कर सकता है? वह प्रायः इस बात के संकेत कर दिया करता है कि गुप्त उन्नति होने वाली है, और राजविद्रोह तथा गुप्त युद्ध होने वाले हैं। उसने सीज़र की मृत्यु के अवसर पर रोम के प्रति दया प्रदर्शित की थी।" शेक्सपीयर "पुच्छलतारों के द्वारा समय और

---

* यह दीवार का पर्दा बैयेक्स के गिर्जे के लिये विजयी विलियम की रानी द्वारा बनवाया गया था। यह २३० फुट लम्बा और २० इंच चौड़ा है। इसमें नार्मन लोगों की विजय के ७२ दृश्यों को चित्रित किया गया है।

राज्यों में परिवर्तन किये जाने" का वर्णन करता, है। ईटौन (Aytoun) ने 'फ्लौडेन के पश्चात् एडिनबरा' नामक अपनी कविता में अरोरा बोरीलिस का सम्बन्ध फ्लौडेन में स्काट लोगों की पराजय से बतलाया है। उसने लिखा है—

"उत्तरी स्ट्रीमर रात भर
कांपते हुये आकाश में चक्कर लगाते रहे।
यह भयकंर प्रकाश
राजाओं अथवा वीरों की मृत्यु के अतिरिक्त कभी संकेत नहीं करते।"

एक चीनी गीत में ईसा पूर्व ७७५ के एक सूर्य ग्रहण का इस प्रकार वर्णन किया गया है, "सूर्य पर ग्रहण लग गया, यह लक्षण अत्यन्त अशुभ था। इसके पश्चात् जनता पर वास्तव में ही कष्ट पड़ेगें। सूर्य और चन्द्रमा अपने ठीक मार्ग पर न चल कर आने वाले अनिष्ट को सूचित करते हैं।" कुछ देशों में अभी तक वर और कन्या की जन्मपत्री मिला कर विवाह किये जाते हैं। अनेक 'ज्योतिषी' भविष्य बतलाने के बहाने से यूरोप के अर्द्ध शिक्षितों को भी ठग लेते हैं। ज्योतिर्विज्ञान के अध्ययन से यूरोप और अमरीका की सभायें इस प्रकार की मूर्खताओं से छूट जावेंगी। एक समय मैं इटली के सैलसोमैगिओर (Salsomaggiore) नामक स्थान के समीप एक पहाड़ी पर कुछ मित्रों के साथ कुछ दिन रहा। समय बड़ा सुन्दर था और हम लोग नक्षत्रों के मानचित्र से तारों को देख रहे थे। कुछ दिनों के पश्चात मुझको यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि एक मध्यवयस्का सुन्दर युवती

ने मुझसे अपने लिये जन्मपत्री बनाने को कहा। उसने पर्वत पर हमारे दल को देखकर हमारा पता ढूंढ निकाला था। मुझे उसको यही बतलाना पड़ा कि मैं फलित विद्या (Astrology) नहीं जानता।

आकाशीय गोलक प्राचीन काल में बड़े भारी अंधविश्वास, पुरोहितों की ऐयारियों और षड़यन्त्रों का कारण रहे हैं। आज आप पूर्ण ग्रास सूर्य ग्रहण का भी आश्चर्य जनक कार्य के रूप में आनन्द ले सकते हैं। किंतु प्राचीन काल में यह बड़ी भयंकर दुर्घटना समझी जाती थी, जो केवल मंत्र, तंत्र और उपासना से ही टल सकती थी। आकाश ने बहुत समय से हमारे मस्तिष्कों को भय और कष्ट से पीड़ित करके अपना दास बना रखा है। किंतु अब हम स्वतन्त्र हैं और ज्योतिर्विज्ञान वेत्ता हमको स्वतन्त्र करने वाले हैं। अब हम सूर्य और तारों के सामने उनके दास और प्रार्थी के रूप में दण्डवत नहीं करते। आकाश का नीला रंग अब मनुष्य की आत्मा के लिये भयानक स्वप्न नहीं है। अब मनुष्य साहस पूर्वक समस्त विश्व का मुकाबला कर लेता है। वह आकाश के दूर तम प्रदेशों के लोकों की अग्निमय विशाल भट्टियों से उसी प्रकार व्यवहार करता है, जिस प्रकार फलों की दूकान पर फलों वाले से किया जाता है। ज्योतिर्विज्ञान का अध्ययन कर डालो और अपने मस्तिष्क, हृदय तथा आत्मा को कायरतापूर्ण भय और उस नीच दासता से छुड़ाओ, जिसमें पड़कर मिथ्या जगदुत्पति को मानने वाले अभी तक निर्बल बने हुए हैं। इस

Sri Pratap Singh Library

स्वतन्त्रता को आज आप बहुत अल्प मूल्य में ही मोल ले सकते हैं।

ज्योतिर्विज्ञान आप को यह भी बतलावेगा कि विश्व नित्य और किसी का उत्पन्न किया हुआ नहीं है। शक्ति का पुद्गल (Matter) तथा पुद्गल का शक्ति रूप में परिवर्तित होना भी नित्य ही है। मदूंक, यहोवा, एलोहीम, ब्रह्मा, अल्लाह, शङ्गती, टिएन, अहुर मज्द, अथवा दिम्मेरा किसी ने भी विश्व को नहीं बनाया। डेमोक्रीटस (Democritus), अरस्तू, एपीक्यूरस (Epicurus) और भारतीय विद्वानों का यही विचार था, किन्तु वर्तमान् ज्योतिर्विज्ञान उसकी वास्तविकता को खोलकर सामने रख देता है। अतीत काल के विषय में विचार करने से आपका मस्तिष्क भी उसी में खो जावेगा, जिसको राबर्ट ब्रिजेज़ (Robert Bridges) ने "सब वस्तुओं के उद्गम स्थान का अन्धकार" कहा है।

इस प्रकार आपको सृष्टिरचना के उन सभी कथानकों से बचना चाहिये, जिनका वर्णन वेदों, कुरान, पुराणों, बाईबिल, ज़िन्द अवस्ता अथवा अन्य प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में किया गया है। उन अमूल्य ग्रन्थों के निर्माता वास्तव में बड़े भारी विद्वान् थे। किन्तु वह वर्तमान् गणित, भौतिकविज्ञान और रसायन विज्ञान को नहीं जानते थे। जगदुत्पत्ति के विषय में तो हमारे अध्यापक ही जीवित विज्ञान हैं, प्राचीन धर्माचार्य नहीं।

आपको प्लैटो (Plato) आगस्टाइन (Augustine),

और जे० जीन (J. Jean) के इस विचित्र और भद्दे सिद्धान्त पर भी अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये कि 'समय का आरंभ' होता है। नित्यता का विचार भूत काल और भविष्य काल में समय की परिभाषा में ही नहीं आ सकता। 'समय का आरंभ' यह शब्द 'ठण्डी आग' अथवा 'उष्ण बरफ़' के समान निरर्थक हैं। अल-फ़रेबी ने समय की कैसी अच्छी परिभाषा की है कि यह 'वस्तुओं को एक साथ पकड़ने वाली गति' है। यदि सृष्टि रचना का सिद्धान्त ईश्वरवादियों की मूर्खतापूर्ण कल्पना का असम्भव आविष्कार है तो सृष्टिकर्ता भी केवल पूर्णतया कल्पित और बिना अस्तित्व वाला है। ज्योतिर्विज्ञान आपको बतला देगा कि विश्व इतना ही है। हम इस प्रकार के किसी ऐसे अदृश्य 'आत्मा' के विषय में नहीं सोच सकते, जो इस विश्व के बाहिर खड़ा होकर इसकी रचना कर दे। दूर दर्शक यंत्र विश्व के प्रत्येक भाग को हम को दिखला देता है, किन्तु उसमें हमको उसका बनाने वाला 'सृष्टा' अथवा हस्तक्षेप करने वाला आत्मा कहीं दिखलाई नहीं देता। इस प्रकार आपको इस महान् सत्य की शिक्षा मिलेगी कि प्रकृति स्वयंभू अर्थात् गति शील और स्वतंत्र है।

यह अपने अंदर से स्वयं ही गति करती है; और स्वयं ही बदलती है; इसको कोई भी परमात्मा अथवा देवी नहीं बदल सकती। ज्योतिर्विज्ञान के नियमों में कोई देवी, देवता परिवर्तन नहीं कर सकता। एक वार एक ईसाई धार्मिक महिला से पूछा

गया कि 'क्या परमात्मा अगले सूर्य ग्रहण अथवा चन्द्र ग्रहण के समय को भी बदल सकता है।' उसने तुरंत ही उत्तर दिया कि "क्यों नहीं ! परमात्मा सर्वशक्तिमान है।" ज्योतिर्विज्ञान से इस प्रकार की कल्पनाओं से स्वयं ही सदा के लिये छुटकारा हो जाता है। इस प्रकार के उत्तर इस शताब्दी में मूर्खतापूर्ण और लज्जाजनक समझे जाते हैं।

ज्योतिर्विज्ञान हम को यह भी बतलाता है कि यह विश्व अविनाशी और सदा रहने वाला है। इसमें सदा ही परिवर्तन होते रहते हैं, किन्तु इस का पूर्णतया लोप कभी नहीं हो सकता। इस प्रकार 'न्याय के दिन, 'प्रलय' अथवा 'प्रलयाग्नि' की कल्पना निरी मूर्खतापूर्ण ही सिद्ध होती है। धार्मिक ग्रन्थों में पाई जाने वाली 'संसार की प्रलय' की कहानियों का आप निश्चय पूर्वक निषेध कर सकते हैं। मध्यकालीन लेखकों ने संसार की प्रलय को अवश्यंभावी माना है। आपको वर्तमानकालीन इस भविष्यवाणी से घबराने की आवश्यकता नहीं है कि पृथ्वी क्रमशः ठंडी हो रही है और इसके पूर्णतया ठंडी हो जाने पर इसके सब प्राणि भी ठण्ड से मर कर बरफ में जम जावेंगे; क्यों कि वह समय आने से बहुत पूर्व ही हम दूसरा जन्म धारण करके किसी दूसरे सौर मण्डल के किसी अन्य लोक में पहुंच जावेंगे। हमको इस विश्वास पर सदा कार्य करते रहना चाहिये कि मनुष्य जाति का कभी नाश न होगा; क्यों कि संसार परिवर्तन-शील अवश्य है, किंतु उसकी किसी वस्तु का नाश नहीं होता।

इस प्रकार ज्योतिर्विज्ञान आपको वैज्ञानिक जगदुत्पत्ति के यह आवश्यक साधारण सिद्धान्त समझा देगा।

तारों के विकास, तिर्यक् शून्यकाश की प्रकृति, तथा आकाश और काल के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में भी आपको आधुनिक वैज्ञानिक विशेषज्ञों की सम्मति पर ही चलना चाहिये। यदि आप निम्नलिखित मूल सिद्धातों पर दृढ़ता से विश्वास करेंगे तो जगदुत्पत्ति के विषय में अन्धविश्वासों से आप सर्वथा मुक्त हो जावेंगे। उक्त तीनों मूल सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

(१) प्रकृति स्वतन्त्र और स्वयंभू है,

(२) विश्व आदि और अन्त रहित है,

(३) न कोई सृष्टि कर्ता और न सृष्टि ही है,

ल्यूक्रेटियस ने इस सिद्धांत एक अमर कविता इस प्रकार कही है—

"दैवी शक्ति के द्वारा असत् से कभी कोई वस्तु उत्पन्न नहीं की जाती।"

आकाशज वस्तु विज्ञान

आकाश से पृथ्वी की ओर को आते हुए आपको आकाशज वस्तु विज्ञान (Meteorology) के तत्त्वों का अध्ययन करते हुए वर्षा, विजली की कड़क और बिजली जैसे साधारण अद्भुत पदार्थों के कारणों को समझने का यत्न भी करना चाहिये। इस विषय में भी प्राचीन काल में अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों से काम लिया जाता रहा है। लगभग सभी देशों में वर्षा तथा बज्र के देवताओं की पूजा की जाती रही है। हमको यह लज्जा-

पूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि कुछ शिक्षित पुरोहित अब भी वर्षा के लिये परमात्मा से इस प्रकार प्रार्थना किया करते हैं, जैसे वर्षा करना परमात्मा अथवा अन्य किसी देवता के हाथ का काम है। सातवीं शताब्दी का सेंट चैड (St. Chad) नामक एक अंगरेज़ ईसाई साधु आकाशज—वस्तु विज्ञान को न जानने के कारण एक मूर्ख बच्चे के समान आचरण करता था। इस सम्बन्ध में आदरणीय बेडा (Beda) ने लिखा है, "यदि कभी उसके अध्ययन करते अथवा कुछ और कार्य करते समय तेज़ हवा चलने लगती तो वह तुरन्त ही परमात्मा से दया करने की प्रार्थना किया करता था; यदी हवा और तेज़ हो जाती थी तो वह अपनी पुस्तक को वन्द करके पृथ्वी पर साष्टाङ्ग लेट कर उससे भी अधिक आधीनता से प्रार्थना किया करता था। किन्तु यदि वह वायु अथवा वर्षा का प्रबल तूफ़ान सिद्धान्त होता अथवा पृथ्वी और वायु बिजली की कड़क और चमक से भर जातीं तो वह गिर्जाघर में जाकर वहां तब तक प्रार्थना करता रहता था जब तक कि मौसिम शान्त न हो जाता। अपने अनुयाईयों द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर उसने उत्तर दिया, 'पृथ्वी के मनुष्यों को भयभीत करने और उनके मन में न्याय के भावी दिन को बिठला देने के लिये परमात्मा आंधी चलाता और आकाश से बिजली और वज्र को गिराता है।...जिस से हम योग्य भय और प्रेम से उसके स्वर्गीय उपदेश के अनुसार आचरण करते रहें'।" आकाशज वस्तु विज्ञान चैड को वतला देता कि वायुमण्डल के यह सब आश्चर्यजनक

कार्य उपयुक्त कारणों से होते हैं; और वर्षा की दशा में विनय और प्रार्थना के स्थान में छाता और वर्षा रक्षक वस्त्र ही अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। ऐरिस्टोफेन्स (Aristophanes) 'बादल' नामक अपने ग्रन्थ में लिखता है कि सुकरात (Socrates) ने स्ट्रेप्सिएड्स् (Strepsiades) को बतलाया था कि 'बादल स्वाभाविक आकाशीय वायुचक्र से उत्पन्न होते हैं' न कि अन्ध विश्वासी यूनानियों के विश्वास के अनुसार ज़िउस (Zeus) द्वारा। आजकल आप ऋतु को वैज्ञानिक ढंग पर वश में करने का आन्दोलन कर सकते हैं; किन्तु आप परमात्मा, किसी देवता देवी अथवा उषा से प्रार्थना कभी नहीं करेंगे। इस समय ज़िउस इन्द्र, उइराकोचा, और थार मर चुके हैं। अब तो हम आंधी और तूफ़ान से रक्षा पाने के लिये विज्ञान से ही प्रार्थना करते हैं।

भूगर्भविज्ञान

आकाश से वायुमण्डल में होते हुए आप अन्त में पृथ्वी पर आकर खड़े हो जाते हैं। अब आपको भूगर्भविज्ञान (Geology) का उसकी शाखाओं सहित अध्ययन करना चाहिये। खनिज विज्ञान (mineralogy) और प्रस्तरावशेष विज्ञान (Palaeontology) भूगर्भ विज्ञान की शाखाएं हैं। इस विज्ञान के विषय में कुछ ग्रन्थ पढ़ कर कुछ खनिज पदार्थों और प्रस्तरावशेषों को मोल लो अथवा एकत्रित करो। भूगर्भ विज्ञान सम्बन्धी प्रदर्शनालय (म्यूज़ियम) में जाकर वहां प्रस्तरावशेषों और खनिज पदार्थों को देखो। वहां आपको उनके सुन्दर नमूने और बड़े २ विचित्र नाम मिलेंगे। यात्रा करते समय

उस प्रदेश के भूगर्भ विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ न कुछ जानने का यत्न करो। केवल पर्वतों की सुन्दर दृश्यावली को देख कर ही सन्तोष मत करो; उन सुन्दर पदार्थों में थोड़े बहुत विज्ञान को अवश्य मिला दो। विज्ञान की सभी शाखाओं के समान भूगर्भ विज्ञान भी अनेक अन्धविश्वासों को दूर करता है। इससे आपको शिक्षा मिलेगी कि ज्वालामुखी और भूकम्प किसी देवता के क्रोध से नहीं होते; और चीनियों का 'फेंगशुई' नामक देवता इस विषय में विल्कुल निर्दोष है। इस अन्धविश्वास के कारण ही चीन में असंख्य जादू टोने तथा झाड़फूंक वाले उत्पन्न हो गये हैं, जिनके कारण वहां अनेक सार्वजनिक कार्य रुक जाया करते हैं।

भूगर्भविज्ञान से भी करोड़ों वर्षों के युगों का हिसाब लगाते २ बुद्धि का अच्छा व्यायाम हो जाया करता है। आपको यह भी कल्पना करनी चाहिये कि हमारी पृथ्वी के गोले पर ऐसे२ भारी और आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं, जिन पर विश्वास भी नहीं किया जा सकता।

"वृक्षस्थल पर गहनोदधि है, पृथ्वी! परिवर्तन क्या देखा।
नगरों की भारी सड़कों पर, फिर एक बार जलनिधि देखा॥
पर्वत का नाम निशान मिटा, रूपों में परिवर्तन देखा।
कुहरे के जैसे पिघल २, बादल जैसे जाते देखा॥ (टेनीसन)

भूगर्भ विज्ञान हमारे मन को यह विचार करने योग्य बना देता है कि इस पृथ्वी पर बराबर बिना रुके हुए धीरे २

परिवर्तन हो रहा है। इस परिवर्तन से प्रत्येक पुरानी वस्तु सब कहीं प्रतिक्षण नष्ट हो रही और नई वस्तु बन रही है। इस प्रकार आप पृथ्वी की कहानी को वहां तक समझ जाते हैं, जब इसके ऊपर पहिली पहल जीवधारी प्रगट हुए।

वनस्पति विज्ञान

इसके पश्चात् आपको प्राणि विज्ञान (Biology) का अध्ययन उसकी शाखाओं सहित करना चाहिये। इसकी तीन शाखाएं हैं—

कीटाणु विज्ञान (Bacteriology), वनस्पति विज्ञान (Botony) और त्रसजीव विज्ञान अथवा प्राणि विज्ञान (Zoology)। शिक्षा, उपयोगिता तथा सौंदर्यसम्बन्धी कार्यों के लिये वनस्पति विज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इससे आपको वर्गीकरण के अर्थ और ढंग का ज्ञान होगा। आप अनेक प्रकार के भेदों, उत्पादक कारणों, स्वाभाविक क्रमों आदि के सम्बन्ध में विचार करेंगे और इस बात पर आश्चर्य प्रगट करेंगे कि इतने सुन्दर फूलों को इतने भद्दे नाम क्यों दिये गये। कीटाणु विज्ञान (Bacteriology) और वनस्पति विज्ञान के ग्रन्थों में वर्णन किये हुए कुछ आश्चर्यों के विषय में पढ़ कर तो आप एक दम चौंक उठेंगे। इस विषय में निम्नलिखित वनस्पति अत्यंत आश्चर्यजनक हैं—

मीलिमीटर के हज़ारवें भाग व्यास वाला कॉकस(Coccus);

बैसिलाई (Bacilli) की कुल बीस मिनट की पूरी पीढ़ी; संक्रामक विष वाली अदृश्य विषबेल वीरसेज (Viruses), जिसका फोटो बैंजनी* रंग की लहरों की प्रकाश लम्बाई से भी कम लम्बी लहरों के (Ultra-Violet) प्रकाश से लिया जाता है।

मेंह के ओलों में पाये जाने वाले सूक्ष्म कण; कैलीफोर्निया के विशालकाय लालवृक्ष (Redwood); आस्ट्रेलिया का ऐमिग्डैलीना (Amygdalina); दक्षिणी सागर का मैक्रोसिस्टिस (Macrocystis); न्यूज़ीलैण्ड के चीड़ के वृक्ष; लंका के टेलीपाट (Talipot) नामक वृक्ष और बड़े२ ऊंचे बांस; मांस खाने वाले निर्दय

---

* मनुष्य को जो कुछ दिखलाई देता है वह रङ्ग के रूप में सामने आता है। सूर्य की धूप में मनुष्य के देखने योग्य सभी रङ्ग हैं; जैसा कि किसी तिकोने काँच में धूप को, अथवा इन्द्रधनुष को देखने से पता चलता है। इन्द्र धनुष में एक कोने पर सब से हल्का रङ्ग--बैंजनी होता है और दूसरे कोने पर सबसे गहरा रंग—लाल होता है। भौतिक विज्ञान का सिद्धान्त है कि प्रत्येक रङ्ग की लहरों की कुछ निश्चित लम्बाई होती है। बैंजनी रङ्ग की लहरों की लम्बाई सबसे कम ४३७·४४ गज़ होती है; और लाल रङ्ग की लहरों की लम्बाई सबसे अधिक ८३०·३० गज़ तक होती है। हमारे नेत्र इससे कम अथवा अधिक लम्बाई की लहरों को नहीं देख सकते, यद्यपि विज्ञान ने उत्पन्न उनको भी कर लिया है। बैंजनी रङ्ग से भी कम लम्बाई को Ultra-Violet और लाल रङ्ग से भी अधिक लम्बाई की लहरों को Infra-red कहते हैं।

ऐपोसाइनस ऐन्ड्रासोमीफोलियम (Apocynum andrasoemifolium); छुई मुई (Mimosa Pudica); बंगाल का टेलीग्राफ़ वृक्ष (Desmodium gyrans); चमदार खुम्बी राइजोमोरफा सबट्रेनिया (Rhizomorpha subterranea) और ऐगैरीकस गारडेनरी (Agaricus gardneri); मोहेंजोदारो * का मसाला लगा कर सुखाया हुआ गेहूं; छायादार बरगद का वृक्ष; अफ्रीका का बाओबाब (Baobab) नाम का दीर्घजीवी वृक्ष; आश्चर्यजनक रूप से दूसरे के ऊपर चढ़ कर जीने वाला रैफ्लेशिया आरनोल्डी (Rafflesia Arnoldi); विक्टोरिया रीजीया (Victoria Regia) नामक विशाल जल कमल; डाइमारफैंड्रा ओलीफेरा (Dimorphandra Oleifera) की फलियां तथा अन्य भी अनेक वनस्पति संसार के विभिन्न भागों में पाए जाते हैं।

इस विज्ञान से आपको सूक्ष्मदर्शक यंत्र के आश्चर्यों को जानने का अवसर मिलेगा। आपके नेत्रों को उन अनेक आश्चर्यों को देखने की सुविधा मिलेगी जो साधारण पुरुषों को ज्ञात नहीं हैं। यदि हो सके तो एक सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) मोल को ले लो, अथवा अपने किसी मित्र से मांग लो। इस यंत्र का व्यसन करने में बड़ा भारी आनन्द आता है। आप किसी भी

---

*सिंध का प्राचीन स्थान है यहां से हज़ारों वर्ष पुराना गेहूं खुदाई में निकला है।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र वाले क्लब में सम्मिलित होकर वहां अन्य इस प्रकार का शौक रखने वालों के साथ काम कर सकते हैं। दुर्लभ जंगली फूलों, फर्न (Ferns) वृक्षों तथा वनस्पति संसार की अन्य आश्चर्यजनक वस्तुओं का संग्रह करते जाओ। अपने घर पर ही पौदों के सम्बन्ध में छोटे २ प्रयोग करो। स्थानीय वनस्पति सम्बन्धी बगीचों को देखकर उनसे यथासंभव ज्ञान प्राप्त करो। बिना इस विज्ञान को समझे हुए आप बड़े २ कवियों की प्रयोग की हुई अनेक उपमाओं को नहीं समझ सकते। यदि आप प्रत्येक फूल और पौदे का नाम, और कुछ उसका इतिहास जान सको तो आपको देहातों में घूमने में और भी अधिक आनन्द आवेगा। उस समय चरागाहें और झाड़ियां आपके पुराने मित्रों से भरी होंगी और आप उनको निरा हरियाली का ढेर ही न समझेंगे। अब आप बिना वास्तविक आवश्यकता के फूलों को न तोड़ोगे और पौदों को न उखाड़ोगे। इस बात को स्मरण रखो कि फूल घर के गुलदस्ते की अपेक्षा बाग में ही अधिक सुन्दर जान पड़ते हैं और वहां अधिक समय तक रहते हैं। उस समय आपको विलियम ब्लेक के समान एक रोगी गुलाब के फूल के साथ भी समवेदना होगी अथवा आप वर्डस्वर्थ के साथ यही कह उठेंगे:—

"मेरा विश्वास है कि प्रत्येक फूल वायु से श्वास लेते समय उसके आनन्द का पूरा उपभोग करता है।"

प्राणि विज्ञान

वनस्पति विज्ञान के पश्चात् आपको त्रसजीव विज्ञान अथवा

प्राणि विज्ञान का अध्ययन करना चाहिये। इसमें प्राणि संसार के शरीरावयव विज्ञान (Morphology) शरीरतत्त्व विज्ञान (Physiology) तथा प्राणि संसार की अन्य बातों का वर्णन पाया जाता है। यह उचित है कि पूर्ण मनुष्य विज्ञान (जिसके निकट भविष्य में ही बन जाने की आशा है) के विषय में मनुष्य शरीर के प्राणि विज्ञान सम्बन्धी सभी विषयों तथा समस्याओं का अध्ययन कर लिया जावे। इस को केवल प्राणिविज्ञान का अंतिम विषय समझकर ही न पढ़ना चाहिये।

जीवों का वर्णन

मनुष्य का जीवों में विशेष स्थान है, वह अन्य समान प्राणियों में केवल प्रथम ही नहीं है। उसके अतिरिक्त प्राणिविज्ञान निम्न कोटि के सभी प्राणियों—आरंभिक प्रोटोज़ोआ (Protozoa) से मनुष्य जैसे लंगूरों तक तथा बीच के अन्य भेदों तक का पूर्ण अध्ययन करना चाहिये। आपको मानवी मनोविज्ञान के साथ ही शरीरविज्ञान के उन कार्यों का भी अध्ययन करना चाहिये, जो मनुष्य शरीर के समान अन्य प्राणियों में भी मिलते हैं। उनका सम्बन्ध वास्तव में प्राणिविज्ञान से नहीं है। यहां तक कि जब मनुष्य केवल श्वास लेता, भोजन को पचाता, अथवा स्त्री के साथ सन्तानोत्पत्ति का कार्य करता है तो वह यह कार्य वह केवल प्राणि होने के नाते ही न करके अपना व्यक्तित्व होने के कारण करता है। यह विचार बिल्कुल ग़लत है कि केवल अध्ययन के लिये मनुष्य के प्राणिविज्ञान को

उसके मनोविज्ञान से प्रथक् किया जा सकता है। औसत मनुष्य का व्यक्तित्व एक और अविभाज्य होता है; यहां तक कि मनुष्य में श्वास लेने और पचाने की क्रिया का भी प्राणिविज्ञान और मनोविज्ञान दोनों से ही सम्बन्ध है। मनुष्य के व्यक्तित्व के इस महत्त्वपूर्ण एकता के सिद्धान्त को समझो और उसकी सराहना करो। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के बीच में सीमा की रेखा को मिटाने की ग़लती न करो। मनुष्य को प्रथक् प्राणि समझना आवश्यक है। उसका विकास अवश्य ही आरंभिक प्राणियों में से हुआ है, किन्तु अब वह विशेष प्रकार से और आश्चर्यजनक रूप से विकसित प्राणि हो गया है। अपने प्राणि विज्ञान यहां तक कि शरीर निर्माण विज्ञान और शरीर तत्त्व विज्ञान तक का वर्णन मनुष्य जैसे लंगूर तक पढ़कर समाप्त कर डालो। सामान्य प्राणियों के पश्चात् मनुष्य को जो कि स्तनपोषित प्राणियों में सर्वोच्च है—कभी भी सामान्य प्राणियों से अगली श्रेणि का विकसित प्राणि न समझो। क्योंकि उनके बीच में अन्य भी कई श्रेणियां हैं। मनुष्य के निर्माण के विज्ञान में मानवी विकास को एक नवीन युग के उपक्रम का रूप देना चाहिये, न कि उस मकान की सब से ऊँची मंज़िल, जिस के नीचे की मंज़िल में गाय, भैंस आदि जंगली प्राणि रहते हैं।

इस प्रकार मनुष्य को प्राणिविज्ञान के पंगु बनाने वाले पंजों से साहस पूर्वक छुड़ा कर हमको इस विज्ञान और इसके आपकी व्यक्तिगत शिक्षा में स्थान के विषय में विचार करना

चाहिये। प्रायः बच्चे जन्तुओं के प्रेमी होते हैं। इस आरंभिक रुचि को ही बढ़ाकर प्राणिविज्ञान के अध्ययन में ले जाना चाहिये। वर्गीकरण के अर्थ और क्रम को आपके मस्तिष्क पर प्राणिविज्ञान वनस्पति-विज्ञान से भी अधिक स्पष्टता से अंकित कर देगा। इस आवश्यक शिक्षा को इससे अधिक अन्य कोई भी विज्ञान नहीं दे सकता। आपको महत्त्वपूर्ण भेदों, प्रकारों, मूल कारणों, वंशों, उपवंशों, जातियों और वर्गों का इस प्रकार सावधानतापूर्वक अध्ययन करना चाहिये कि आप प्रत्येक विभाग के पृथक् करके विशेष गुणों को सावधानता पूर्वक जान सको। जातियों (Phylum) परों में जोड़ वाले प्राणियों (Arthropoda) और उसके भेदों, मकड़ी वर्ग (Arachnida) और कीड़े मकौड़ों तथा उनके अनेक भेदों, तितली वर्ग, मक्षिका वर्ग, विषमक्षिका वर्ग और टिड्डा वर्ग आदि जाति के कीड़ों के वर्णन को विशेष रूप से ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये। कीड़े मकौड़े गर्मियों में भले ही कष्टकर होते हों, किन्तु शरद् ऋतु की लम्बी सन्ध्या के समय उन मृतक नमूनों को सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखने पर मस्तिष्क को बड़ी उपयोगी शिक्षा मिलती है। प्राणिविज्ञान के द्वारा प्राणियों के असंख्य भेदों और वर्गों को जानकर आपको बड़ा भारी आश्चर्य होगा। इसके अतिरिक्त इस से आपका स्वभाव जन्म भर के लिये प्रत्येक वस्तु को ध्यान पूर्वक देखने का बन जावेगा। आप प्राणिविज्ञान की अद्भुत घटनाओं को देख तथा जानकर अत्यंत प्रसन्न होंगे। स्वयं ही बार बार उत्पन्न होने

वाली स्टार मछलियों, जल छिपकलियों (Newts) समुद्री पिचकारियों (Sea squirts); सांप और केंचवों के स्वतंत्र घूमने वाले जीवाणुओं(Cells), ऊपर मोटे छिलके वाले प्राणि सिस्टोसोमा (Cystosoma) की बड़ी २ आंखों, चमकदार नाकटील्यूका (Noctiluca) 'और औलस्टोमैटोमार्फा (Aulastomato morpha); चलने, चढ़ने और उड़ने वाली मछलियों; अन्धे दीमक प्राणि(Termites) और उनकी गगन चुम्बी अट्टालिकाओं(बमियों); चींटियों और मधुमक्खियों की अत्यंत अधिक विकसित सभ्यता; कैडिस कीड़े (Caddis-worm) का पानी का सीमेंट; अपने आपको स्वयं ही लम्बा करने वाले नेमरटाइन कीड़े (Nemertine worms);पक्षियोंकी स्वयंवर प्रथा; आस्ट्रिया वाली बत्तक जैसी चोंच वाले अंडा देने वाले स्तनपोषित प्राणि; अफ्रीकावासी अम्बर (Umbre) और जुलाहे पक्षियों (Weaver birds) के आश्चर्यजनक घोंसले; ईल (Eeils) नामक जल कीट का दूसरे स्थान पर जाना; सुन्दर रोटीफेरा (Rotifera); ओबेलिया (Obelia) के उपनिवेश; भारतीय दर्जी पक्षि के जालीदार घोंसले; अफ़रीका के जिरेफ (Giraffe) नाम के ऊंट जैसे पशु, जिसकी अगली टांग पिछली से लम्बी होती हैं; नीचे गंधक वाली विशालकाय व्हेल; लीवर फ्लूयूक (Liver flukes) के वंश; कभी पिंजरे में बंद न होने वाले ओकापी (Okapi); कीवी (Kiwi) के सात छटांक तोल के अंडे; जापान की नाचने वाली चुहिया (Waltzing mice); अंडों को खाने वाले सर्प और सांपों को खानेवाले विशाल काय

काले नाग; आस्ट्रेलिया के बेडौल मोलोशॉरीडस (Moloch-horridus) और मैडागास्टर के ऐ-ऐ (Aye. Aye); मस्से-वाला-भद्दा सुवर (Wart hog) और डिप्लोडोकस (Diplodocus), टाइरैनोसारस (Tyrannosaurus), इग्वानोडोन (Iguanodon) और आरकिओप्टैरिक्स जैसे लुप्त प्राणियों के पूस्तरावशेष आपको आश्चर्य में डाल देंगे।

प्राणिविज्ञान आपको मनुष्य के शरीर निर्माण विज्ञान और शरीर तत्त्व विज्ञान को अध्ययन करने के लिये तयार कर देगा। इनका अध्ययन आपके स्वास्थ्य और शारीरिक योग्यता के लिये अत्यंत आवश्यक है। इससे आपकी रुग्णावस्था दूर होगी और आप गुप्तेन्द्रियों के सम्बन्ध में स्वाभाविक तथा बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग पर बातचीत करना सीख जावेंगे। आप घोंघों, पट्ठों, अंगों, इन्द्रियों, वंशपरम्परा, भेद परिवर्तन, स्वांग, नकल करने वाले प्राणियों (Mimicry), दो प्राणियों के एक दूसरे पर निर्वाह करने, सेल की मींगी के अंदर के क्रोमोसोमों (Chromosomes), और क्रोमोसोम के अंदर रहने वाले जेनीज (Genes) आदि के सम्बन्ध में बहुत कुछ सीख जावेंगे। इसके पश्चात् आप जीवन के आरंभ, विकास, मूल कारण वाद (Teleology) और जीव जैसी मूल समस्याओं के विषय में अध्ययन करेंगे। प्राणिविज्ञान आपको निम्नतम कीड़ों से लगा कर उच्चतम बुद्धिवालों के पास ले जावेगा।

जीव के सम्बन्ध में वैज्ञानिक सिद्धान्त

प्राणिविज्ञान आपको जीवन के आरंभ के उस वैज्ञानिक-सिद्धान्त को भी बतलावेगा, जो किसी दैवी शक्ति के द्वारा सृष्टि-रचना के सिद्धान्त का खंडन करता है। मनुष्य और अन्य प्राणि सभी का विकास प्रोटोज़ोआ (Protozoa) नामक प्राणि से हुआ है। प्रोटोज़ोआ या तो नित्य है अथवा उसका विकास भी पृथ्वी के प्राचीनतम ऐतिहासिक काल में जड़ पुद्गल (In-organic Matter) से ही हुआ है। अर्हेनियस (Arrhenius) का विचार है कि पृथ्वी पर सूक्ष्म प्राणिकण (Spores) प्रकाश के दबाव द्वारा किसी अन्य ग्रह से आये होंगे, अथवा 'केल्विन (Kelvin) के अनुसार वह उल्काअंशों (Meteorites) द्वारा लाए गये होंगे। किन्तु इस व्याख्या से समस्या बिलकुल ही नहीं सुलझती। फिर जीवन का आरंभ किस प्रकार हुआ ? प्रश्न यह है कि "क्या जीवित द्रव्य अथवा जीव शक्ति (Energy) और जड़ पुद्गल के समान स्वयं एक स्वतंत्र पदार्थ है अथवा यह जड़-पुद्गल से बना हुआ है ?" इस बात को स्वीकार करने में सिद्धान्त-सम्बन्धी कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती कि जीव और जड़ पुद्गल में केवल तारतम्य का ही भेद नहीं है, जाति का भी भेद है। दर्शन शास्त्र को एक या दो ऐसे मूल तत्त्वों को स्वीकार करना ही पड़ेगा, जिनका फिर कोई भेद प्रभेद अथवा विश्लेषण नहीं किया जा सकता। उसको किसी न किसी अंतिम परिणाम पर जाकर रुकना ही पड़ेगा। इस प्रकार आप इस [illegible] को हेतु सहित मान सकते

हो कि जीवात्मा जड़पुद्गल से नहीं विकसित हुआ, वरन् इसका विश्व में स्वतन्त्र रूप से सदा से अस्तित्व था और इसने इस पृथ्वी तथा अन्य लोकों में भी अपने आपको अपने विकास के नियमों के अनुसार बढ़ाया है। जहां तक हम जानते हैं सभी जीव किसी पहले जीव से ही उत्पन्न होते हैं। इसको मानना पूर्णतया आवश्यक नहीं है कि यह लोक सम्मत नियम भूतकाल में किसी समय कार्य रूप में परिणत नहीं हो रहा था। रेडी, (Redi) स्पैलैनज़ानी, (Spallanzani) और पेस्च्योर (Pasteur) के आविष्कारों के द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि जीव अपने आप ही उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि आपको यह विदित है कि जीव अपने आप ही जड़पुद्गल से उत्पन्न नहीं हो सकता तो आपको अपने मस्तिष्क पर ऐसी अनिवार्य कठिनता का बोझा डालने की आवश्यकता नहीं है। दर्शन शास्त्र (Philosophy) के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि सब वस्तुएं केवल शक्ति--पुद्गल (Matter-Energy) के एक पदार्थ से ही निकले। इस प्रकार का कल्पित एकत्ववाद पूर्णतया अवैज्ञानिक है। अतएव यदि आपका यह विश्वास है कि जीवित और अजीवित पदार्थ दोनों मिलकर एक नहीं हो सकते तो आप यह मान लेने के लिये स्वतन्त्र हैं कि जीव का भी स्वतन्त्र अस्तित्व है और वह भी शक्ति और पुद्गल (Matter) के ही समान नित्य है। तब जीव के आरंभ की समस्या के विषय में चिंता करने की आपको आवश्यकता न होगी। मुख्य बात यह है कि आपको किसी दैवी शक्ति द्वारा सृष्टि रचना किये जाने पर

विश्वास नहीं करना चाहिये।

इस जटिल प्रश्न का एक और पहलू भी है। टी० एच० हक्सले ने लिखा है:—यदि मुझे भौगौलिक कालों से भी पूर्व के उस समय को देखने दिया जावे—जब पृथ्वी में ऐसे २ प्राकृतिक तथा रसायनिक परिवर्तन हो रहे थे जिनको पृथ्वी उसी प्रकार दोबारा नहीं देख सकती जिस प्रकार मनुष्य अपनी बाल्यावस्था को फिर नहीं देख सकता--तो मैं आशा करता हूं कि मैं जड़पुद्गल से जीवन मूल(Protoplasm) का विकास होता हुआ देख सकूंगा आचार्य जगदीश चन्द्र बोस ने अपने आविष्कारों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि जड़ और जीव दोनों प्रकार के पदार्थों में बहुत कुछ समानता होती है; यहां तक कि धातुओं को भी थकावट होती है और उनको विष दिया जा सकता है। उनका कहना है 'जीव के भिन्न भिन्न प्रकार के रूप भी वास्तव में जड़ प्रकृति में पाये जाने वाले रूपों के ही अनुकरण हैं।' सन् १८२८ ई० में वुहलर (Wohler) के प्रथम बार यूरिया (Urea) बनाने के पश्चात् रसायनिक प्रयोगशालाओं में अनेक जीवित मिश्रण (Organic Compounds) बनाये जा चुके हैं। जीवित जीवन मूल (Protoplasm) की रसायनिक रचना भी निश्चित कर ली गई है, उसमें थोड़े से प्रसिद्ध तत्त्व ही हैं। "बैक्टेरियाफेजेज" (Bacteriophages) नाम के सूक्ष्मदर्शक यंत्र से भी ग्रहण न किये जाने वाले सूक्ष्म पदार्थ को (यदि वास्तव में उसका अस्तित्व है तो) जीवित और जड़ प्रकृति के बीच का पदार्थ कहा जा सकता है। यह बात अत्यंत संभव जान

पड़ती है कि तपमान तथा जलवायु के अनुकूल होते ही अदृश्य जीव अथवा सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखे जाने योग्य प्राणि (Micro-Organism) जैसे सबसे हल्के प्रकार के जीवधारी १३० करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर एक दम प्रगट हुए होंगे। यह निश्चय है कि रसायनिक पुद्गल (Chemical Matter) का इस प्रकार जीवित सेलों रूप होने की प्रणाली हमारे लिये सदा रहस्य ही बनी रहेगी। किन्तु विज्ञान और दर्शनशास्त्र को प्रकृति का विश्लेषण करके उसको सरलतम बनाने का उद्योग करते ही रहना चाहिये। मनुष्य के मस्तिष्क की प्रकृति एकत्ववाद से प्रेम करने की है। अतएव यदि संभव हो तो वह अन्तिम एक पदार्थ ही प्रमाणित करने की चेष्टा करेगा। एक से अधिक पदार्थ मानने की कल्पना असंतोष-पूर्ण और अस्थाई जान पड़ती है। एक समय वैज्ञानिक लोग केवल दो पदार्थ माना करते थे—शक्ति (Energy) और पुद्गल (Matter)। पुद्गल के अंदर भी न०वे से अधिक अविभाज्य तत्त्वों का समावेश किया जाता था। किन्तु आज हम जानते हैं कि शक्ति पुद्गल और पुद्गल शक्ति का रूप धारण कर सकता है। एक ग्रेम (Gramme) पुद्गल ९×१०^{२०} अर्ग (Ergs) शक्ति को उत्पन्न करता है। यह वास्तव में बड़ी आश्चर्यजनक सफलता है कि शक्ति और पुद्गल जैसे भिन्न प्रकृति वाले दो पदार्थ एक ही सिद्ध कर दिये गये। अतएव ऐसी दशा में यह विश्वास किस प्रकार किया जा सकता है कि कुछ दशाओं में जड़ पुद्गल से जीवित

सेल नहीं बन सकते। किन्तु दार्शनिक लोग इस प्रकार अभिमान के साथ प्रचार किये हुए इस सिद्धान्त को किसी प्रकार नहीं मान सकते। यदि घटनाओं में परिवर्तन किये विना ही प्रकृति की एकत्वपरक व्याख्या की जा सके, तो इसकी विज्ञान और दर्शन-शास्त्र की अद्भुत विजय के रूप में अत्यन्त सराहना की जाती। किन्तु अभी इस प्रकार की विजय का समय नहीं आया है। अभी आप तब तक एक सृष्टिकर्ता में विश्वास न करते हुए बिना अंध-विश्वास में गिरने की संभावना के उपरोक्त दोनों सिद्धान्तों में से एक को स्वीकार कर सकते हैं। आप ईश्वरवाद में भी इस सिद्धांत के लिये सहारा ले सकते हैं।

सृष्टिक्रम के विषय में अन्धविश्वास

अन्धविश्वास जैसे शत्रु का मुकाबला करके उसको अवश्य ही नष्ट कर देना चाहिये। मिश्र देश के निवासी और हिंदू लोग पशुओं की चीरफाड़ करके उनका अध्ययन करने के बजाय उनमें से अनेक की पूजा किया करते थे। प्राणिविज्ञान आपको संसार भर के लगभग सभी धर्मों के पुरोहितों के फैलाये हुए मिथ्या सिद्धांतों से सफलता पूर्वक युद्ध करने में सहायता देगा। इस प्रकार बाईबिल तथा मिल्टन (Milton) द्वारा वर्णन किये हुए स्त्री, पुरुष और पशुओं की सृष्टि की कहानी को भी प्राचीन दन्तकथा मात्र ही समझना चाहिये। धीरे धीरे विकास होने का सिद्धान्त सृष्टिरचना के सिद्धान्त को स्वयं ही नष्ट कर देगा। परियों, प्रेतों, भूतों, जिन्नों, देवों, आधे घोड़े और आधे मनुष्य रूप

किन्नरों, घोड़े जैसे शरीर और सिंह जैसी पूंछ के एक सींग वाले प्राणियों, गन्धर्वों, अनेक सिरों वाले सर्पों, सिंह जैसे शरीर और स्त्री जैसे मुख वाले प्राणियों, दरियाई परियों, असुरों, राक्षसों, नाकिनियों, डाकिनियों, आधे मनुष्य और आधे बकरी रूप वनदेवताओं, हूरों, स्वर्गीय दूतों, ध्यानी बुद्धों, अप्सराओं, और सिद्धों के अस्तित्व को कल्पित सिद्ध किया जा सकता है। किसी भी प्राणिविज्ञान् के विद्वान् को न तो उनका पता ही चला है और न वह किसी वर्ग में ही आते हैं। उनके अस्थि-विज्ञान और शरीर विज्ञान के विषय में भी किसी को कुछ ज्ञात नहीं है। सभी देशों में कुछ रोगों का कारण कुछ अशुद्ध आत्माओं को माना गया है। अतएव वह उन रोगों में घर की सफाई न करके झाड़ फूंक आदि किया करते हैं। यदि इस साधारण सत्य को सब स्त्री पुरुष जान लें कि प्राणिविज्ञान में बतलाये हुए प्राणियों के अतिरिक्त अन्य कोई जीवधारी नहीं हो सकते तो संसार का कितना ही अन्धविश्वास नष्ट हो जावे। इस पृथ्वी पर पशु और मनुष्य के जीवन का क्रम बैक्टेरिया (Bacteria) और प्रोटोज़ोआ (Protozoa) से लेकर मनुष्य जैसे लंगूर (Anthropoid ape) और मनुष्यों तक है। प्राणिविज्ञान आपके हृदय में से कुमारी माताओं, पुनर्जीवित होने वाले मुर्दों, और मनुष्यों के पशु रूप धारण करने की शक्ति आदि के सिद्धान्तों को असत्य सिद्ध कर देगा। प्राणिविज्ञान के विद्यार्थी को इस बात का विश्वास हो जावेगा कि मनुष्य डिम्ब और शुक्राणुओं के संयोग के बिना अपने

आप कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता। मृतक शरीर में किसी प्रकार भी दोबारा प्राणसंचार नहीं किया जा सकता। अतएव इस प्रकार की कल्पित घटनाओं के लिये आपको ऐतिहासिक साक्षी को ढूंडने में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिये। उनको चाहे जैसे धोखा देने वाले प्राचीन पुरुष क्यों न कहें आप उनकी बात को असत्य और असंभव समझ कर उनको अपने यहां से हटा दो। प्राणिविज्ञान के विद्वान् के रूप में आप संभव और असम्भव को अच्छी तरह जान लो।

प्राणिविज्ञान से दया की शिक्षा

प्राणिविज्ञान आपको प्राणियों पर दया करने की शिक्षा भी देगा। अध्ययन से सदा ही रुचि और समवेदना उत्पन्न होती है। प्राणिविज्ञान वेत्ता के लिये भेड़ केवल अपने मांस और ऊन रूप ही नहीं है, झींगा मछली केवल कोमल ही नहीं है और मकड़ी केवल जाला बुनने वाला भद्दा प्राणि ही नहीं है। उसने तो सभी कीड़ों, पक्षियों और चौपायों को युद्ध करने, योजना बनाने, कष्ट भोगने, भोजन पाने, साथी को खोजने और मृत्यु से डरने वाले ऐसे प्राणियों के रूप में देखना ही सीखा है, जो बिना अपनी स्वीकृति के ही उत्पन्न होगये और जो अपने छोटे जीवन को अपने समझ से भी ऊँचे असीम विश्व में पूर्ण करने के लिये विवश किये गये। प्राणि विज्ञान पृथ्वी के असंख्य जीवों की सुन्दरता और विचित्रता को बतलाता है और उनके अत्यधिक लाभ को प्रगट करता हुआ

उनके ऊपर दया करने की शिक्षा देता है। प्राणिविज्ञान का अध्ययन करने से आप अधिक उदास और बुद्धिमान् बन जाओगे। यह आपको सभी प्राणियों के आवश्यक ऐक्य का अनुभव कराने में भी सहायता देगा, जिससे आप यह अनुभव करने लगोगे कि उनके प्रति आपका भी कुछ कर्तव्य है। उस समय आप राबर्ट बर्न्स (Robert Burns) की वर्णन की हुई चूहे की प्रसन्नता और सावधानता के विषय में अनुभव कर सकोगे। उस समय आप 'हमारे इन मूक मित्रों' के प्रति सहानुभूति के उस कोमल भाव से ओतप्रोत हो जाओगे, जो चीनी कवि हनयू की निम्नलिखित कविता से प्रगट होता है।

"विश्व में दया धर्म ही सार'

प्रात समय में उड़ें मक्षिका, मच्छर रात्रि मझार ॥
करें तंग तो एक पर्दे से, रोको उन्हें संभार ॥१॥
लघु जीवन के दिन व्यतीत, करता वह यथा पहार।
पतझड़ के कुछ ही श्वासों में, होती अस्त बहार ॥२॥

विज्ञान का इतिहास

ऐहम्स (Ahmes) से लगाकर ईंस्टीन (Einstein) तक मनुष्य जाति ने जिस प्रकार वैज्ञानिक ज्ञान के अटूट भंडार को प्राप्त किया है, उसको समझने के लिये आप को विज्ञान के इतिहास को भी अवश्य अध्ययन करना चाहिये। बड़े २ वैज्ञानिकों के जीवन चरित्रों को आपको अवश्य पढ़ना चाहिये; उनके विकट परिश्रम और नवीन शोध के कार्यों से आपको

पता चलेगा कि विज्ञान बड़े प्रतापी बलिदान का फल है। इससे आप सोने और चांदी से भी अधिक सत्य और तथ्य से प्रेम करना सीख जाओगे। आपकी बुद्धि में ऐसी शुद्धता, और आत्मा में कभी नष्ट न होने वाला ऐसा सत्य प्रगट हो जावेगा कि जो बड़ी से बड़ी आचरण तथा धार्मिक शिक्षा से भी आपको प्राप्त न होता। एक वैज्ञानिक के लिये तथ्य पवित्र सिद्धान्त और प्रयोग धार्मिक विधि है। वह किसी उच्च राजनीतिक अथवा धार्मिक आन्दोलन में सहायता देने के लिये भी लुभाने वाले सिद्धान्तों और मनमोहक कल्पनाओं को न तो स्वीकार ही कर सकता है और न दूसरों को बतला ही सकता है। वह 'धार्मिक धोखादेही' करने योग्य नहीं होता। विज्ञान के इतिहास का अध्ययन आपके आत्मा में सत्य के लिये इस सफल प्रेम को भर देगा और इस प्रकार जिसको आप असत्य समझते हो उस पर विश्वास करने की इच्छा को उत्पन्न न होने देगा। आपको अरस्तू (Aristotle), हिप्पारकस (Hipparchus) आर्किमीड्स (Archimedes), एरैटोस्थीन्स् (Eratosthenes), ऐरिस्टार्चस (Aristarchus), हिप्पोक्रेट्स् (Hippocrates), कापरनीकस (Copernicus), केप्लर (Kepler), न्यूटन (Newton), क्यूवियर (Cuvier), लैमार्क (Lamark), डार्विन (Darwin), पैस्च्योर (Pasteur), आर्यभट्ट और अल हैथम जैसे उन विद्वान् वैज्ञानिकों के जीवन की विस्तृत घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, जिन्होंने शान्ति से अपना समस्त जीवन विज्ञान के लिये

अर्पण कर दिया और प्रकृति के भेदों के आविष्कार के लिये मार्ग साफ किया ।

"..........., सर्व मुकुट मणि जाति ।
देखेगी जो ज्ञान का, सुन्दर मुख विभ्रात ॥
जिसकी आज्ञा में रहे, पृथ्वी और आकाश ।
स्वयं प्रकृति जिसके लिये, खुलाग्रन्थ है हाथ ॥

आरंभिक सिद्धान्त

भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और प्राणिविज्ञान के अध्ययन से समग्र विश्व के सम्बन्ध में कुछ सामान्य विचार उत्पन्न होते हैं । अब इन मूल दार्शनिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में संक्षेप से विचार किया जाता है । विश्व अथवा प्रकृति का अन्तर्भाव शक्ति के अन्तिम विश्लेषण में हो जाता है । जिसको पुद्गल (Matter) कहा जाता है, वह केवल शक्ति का ही एक रूप है । जैसा कि सर जे० जीन्स ने उसके विषय में कहा है, "विश्व के समस्त जीवधारियों को भिन्न २ प्रकार के वेषों में शक्ति का ही स्वरूप कहा जा सकता है ।" अपने मूल रूप में प्रकृति शक्ति की सजाति तथा तद्रूप ही है । सभी अद्भुत पदार्थ शक्ति के ही रूप हैं । वास्तव में वह सब उसी जाति के हैं । ए० एडिंग्टन ने "पुद्गल (Matter) " अथवा कभी २ 'शक्ति' कहे जाने वाले तत्त्व को "पौद्गलिक शक्ति स्वरूप" नाम दिया है । यदि आप कविता कर सकते हैं तो आप इस नित्य तथा सदा रहने वाली शक्ति को पुरुष के समान समझ कर स्विनबर्न (Swinburne) में शब्दों के

निम्न शब्द कहती हुई कल्पना कर सकते हैं:—

"आरंभ मैं हूं, यह वर्ष सभी निकलें हैं मेरे अन्दर से ।
जल, स्थल कोमल शस्य वृक्ष बहुरंग फलों से भी पहिले ॥
केवल मैं ही मैं थी जग में, आत्मा भी मेरे अन्दर था ।
आरंभिक प्राणि मेरे बल पर साधन पर उड़ता तिरता था ॥
रक्षक भक्षक शक्तियां सभी निकलीं थीं मेरे अन्दर से ।
नर नारी पशु और पक्षि सभी निकले थे मेरे ही उर से ॥
ईश्वर से भी मैं पहिले थी, मुझसे ऊपर मुझसे बढ़ कर ।
कुछ नहीं कभी इस जग में था, जो मुझ से जावे कभी बिछड़ ॥
हूं तीर निशाना भी मैं हू, जो छुटता या छोड़ा जाता ।
चुम्बन मैं हूँ मुख भी मैं हूँ, चुम्बन में श्वास मेरा आता ॥
मैं खोज हूँ मुझको खोजते हैं, मैं ही अन्वेषण करती हूँ ।
क्या कहूँ आत्मा भी मैं हूँ यह शरीर हूँ दम भरती हूँ ॥

सभी अद्भुत पदार्थ तीन विशेषताओं को प्रगट करते हैं:-

आकाश और काल

(१) वह आकाश (Space) और समय (Time) में ही होते हैं। विश्व की विभिन्न वस्तुएं एक दूसरे से परिमाण, आकार, अन्तर और गति की दिशा का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य रखती हैं। पौद्गलिक रचनाओं के संख्यावाचक यह संबंध ही 'आकाश' (Space) कहे जाते हैं।

प्रकृति के अद्भुत पदार्थों का भी एक दूसरे से एक भिन्न ही प्रकार से सम्बन्ध है। उनका उसके साथ ही साथ अस्तित्व है,

अथवा वह एक दूसरे से कुछ पहिले अथवा कुछ पीछे होते हैं। समसामयिकता अथवा अनुक्रम के इन सम्बन्धों को 'काल (Time)' कहा जाता है। परिवर्तन अथवा गति ही समय का नाप (मान) है।

जैसा कि मिंकोस्की (Minkowski) और ईंस्टीन (Einstien) ने निश्चित रूप से प्रमाणित किया है कि आकाश और काल का अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है अर्थात् वह स्वयंस्थित नहीं है, वह एक दूसरे से भी स्वतंत्र नहीं हैं। उनमें स्थान तथा समय का अस्थायी सम्बन्ध अवश्य रहता है। भौतिक संसार के आकाश और काल से परिमित यह तत्व ही 'घटनाएं' हैं। बर्ट्रैंड रसेल (Bertrand Russell) के सिद्धान्तानुसार विश्व "आकाश-काल के कुछ नियमित परिमाण को अपनाये हुए है।" आकाश-काल 'घटनाओं' के परिमाण, विस्तार, लम्बाई और चौड़ाई के चार सिद्धांतों की निरवच्छिन्नता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन चारों का नाप ही आकाश--काल में किसी वस्तु के स्थान को निश्चित करता है। आकाश, काल, और पुद्गल का एक दूसरे से पृथक् न करके एक द्रव्य के समान वर्णन किया जाना चाहिये। (यदि हो सके तो आपको सम्बन्ध के सम्पूर्ण सिद्धांत को समझने का यत्न करना चाहिये। किन्तु यदि आप उसको न समझ सकें तो भी आपको मैं कोई दोष नहीं दूँगा। क्योंकि उसको मैं स्वयं भी पूर्ण रूप से नहीं समझ सका हूँ। मेरी शिक्षा प्राचीन 'यूक्लिड' के रेखागणित के आधार पर हुई थी।)

कार्यंकारण सम्बन्ध

(२) सभी पदार्थ सकारणता के नियम में बंधे हुए होते हैं। इसकी व्याख्या अनेक प्रकार से की जा सकती है। यह विश्व वस्तुओं और घटनाओं का आकस्मिक संग्रह नहीं है। कारण और परिणाम की सुनहरी शृंखला उन सबको परस्पर बांधे हुए है। प्रत्येक परिवर्तन और प्रत्येक घटना का एक कारण होना चाहिये। यह संबंध ही विशृंखलित को संसार रूप में परिणत करता है और ज्ञान होने में सहायता देता है। कार्य कारण के विचार और सिद्धान्त के बिना विज्ञान का अस्तित्व ही नहीं हो सकता था; जीवन और कार्य तो उस अवस्था में एक दम ही असम्भव हो जाते। सकारणता ही ऐरेडने (Araidne) का वह धागा है, जो मनुष्य को प्रकृति के इस शक्तिशाली गोरखधंदे में मार्गप्रदर्शन का काम देता है। कुछ परमाणु (Atoms) ऐसे भी हैं, जिनमें परिवर्तन नहीं हुआ करता। इनके कार्य कारण सम्बन्ध का अभी तक पता नहीं चला। किन्तु इस प्रकार के परमाणुओं का अस्तित्व निश्चित है। विश्व में कुछ भी स्वयंस्थित और अकारण नहीं है। कारणवाद में सभी वस्तुएं और प्राणि बंधे हुए हैं। यह विश्व भी अपने समस्त एक रूप में अन्योन्याश्रित है। योग्य कारण उस पूर्ववर्ती को कहते हैं, जिसका उस प्रक्रिया का प्रदर्शन करके उक्त परिणाम पर पहुँचना दिखलाया जा सके। कारण का विचार नियमित परिमाण में दो घटनाओं के संयोग मात्र से ही नहीं

निकाला गया है। चीनी दार्शनिक च्वांग-त्ज़ कारणवाद की इस प्रकार व्याख्या करता है:—

"पेनुम्ब्रा ने उम्ब्रा से कहा, 'एक क्षण में तुम गति करती और दूसरे ही क्षण में तुम स्थिर हो जाती हो। एक क्षण में तुम बैठ जाती हो और दूसरे ही क्षण में तुम उठ खड़ी होती हो। उद्देश्य में यह अस्थिरता क्यों है?' उम्ब्रा ने उत्तर दिया—'मैं किसी ऐसी शक्ति पर निर्भर हूँ जो मुझे प्रेरणा करती रहती है। वह शक्ति भी किसी अन्य उस शक्ति पर निर्भर है जो उसे प्रेरणा करती है। मेरी आधीनता सपेरे की बंहगी अथवा पक्षियों के पंखों के समान है (जो स्वयं अपने आप गति नहीं करते।)

परिवर्तन वाद

(३) प्रकृति परिवर्तनशील है। उस का प्रवाह सदा होता रहता है। यह समस्त विश्व प्रतिक्षण बदल रहा है। हमारे पलक मारते २ भी यह वही नहीं रहता। प्लैटो ने लिखा है— "हेराक्लीटोज़ (Herakleitos) ने किसी स्थान पर कहा है कि सभी वस्तुएं निकल जाती हैं और परिवर्तन प्रतीक्षा करता रहता है। वस्तुओं की नदी के प्रवाह से तुलना करता हुआ वह कहता है कि "एक ही धार में आप दो बार नहीं रुक सकते।" अरस्तू भी यही शिक्षा देता है "कि सभी वस्तुएं गतिशील हैं, स्थिर कुछ भी नहीं है।" अपरिवर्तनीय कुछ भी नहीं है। प्रकृति गतिशील है। स्थिर नहीं। जैसा कि गोएथे (Goethe) का कहना है, "प्रकृति में सदा ही परिवर्तन होता रहता है; वह एक क्षण के

लिये भी स्थिर नहीं होती। आराम करने के विषय में उसको कुछ भी पता नहीं है।"

प्रकृति और विश्व के विषय में इन सामान्य विचारों को पूर्णतया समझकर हृदयंगम कर लेना चाहिये। आपका व्यक्तिगत धर्म भी उन्हीं के आधार पर होना चाहिये; अन्यथा आप अन्धविश्वास के अनन्त गर्त में सिर के बल जा गिरेंगे। आपको आकाश–काल, यूक्लिड–सम्बन्धी और यूक्लिड भिन्न आकाश, भौतिक तथा अनुभवगम्य आकाश और आकाश–काल, घटनाओं और व्यवधान, पृथ्वी की पैमाइश की विद्या, कारण संबंधी मार्गों तथा द्रव्यों आदि के नवीन से नवीन सिद्धान्तों को वर्तमान वैज्ञानिकों के ग्रन्थों से पढ़ना चाहिये। किन्तु आपके जीवन के साधारण दर्शन शास्त्र के लिये आकाश–काल, कारणवाद, और प्रवाह के मूल सिद्धान्तों का अध्ययन ही पर्याप्त होगा। इनका अध्ययन करना अत्यन्त अनिवार्य है। उनके बिना आप विज्ञान के उच्च मार्ग से भटक कर निसहाय होकर भूल की दलदल में फंस जाओगे।

पंच महावर्ग

सभी स्वाभाविक पदार्थ शक्ति के विश्व में उत्पन्न होते हैं। किन्तु उनको निम्नलिखित पांच महावर्ग अथवा क्रमों में विभक्त किया जा सकता है—भौतिक, रसायनिक, वनस्पति सम्बन्धी, प्राणि सम्बन्धी और मानवी। प्रकृति की मौलिक एकता कोरे एकत्त्ववाद को ही बतलाती है। वह एकता में भी भेद बतलाती

है। प्रत्येक वर्ग में अपने से सभी पूर्ववर्ती वर्ग के द्रव्य भी हैं। कुछ विश्व नियम सभी वर्गों पर लागू होते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी नियम हैं, जिनका सम्बन्ध केवल एक २ वर्ग से ही है। प्रत्येक वर्ग के पदार्थ अगले वर्ग में भी मिले होते हैं। अतएव प्रायः दोनों वर्गों में एक सीमान्तरेखा डालनी पड़ती है। प्रत्येक वर्ग के पदार्थों में कुछ अपनी २ विशेषताएं हैं।

(१) **भौतिक पदार्थ**---अथवा अपने भिन्न २ रूपों में शक्ति (Energy) के सब पदार्थ और पुद्गल (Matter—यह भी शक्ति का ही एक रूप है)। इस वर्ग का विशेष पदार्थ गति है। इस वर्ग का अध्ययन भौतिक विज्ञान (Physics) द्वारा किया जाता है।

(२) **रसायनिक पदार्थ**---पौद्गलिक पदार्थों, उनकी रचना, रूपपरिवर्तन और मिश्रण का वर्णन रसायनविज्ञान (Chemistry) करता है। इन पदार्थों में पारस्परिक रसायनिक सम्बन्ध भी होता है; विशुद्ध भौतिक पदार्थों से इनका यही भेद है।

(३) **वनस्पति सम्बन्धी पदार्थ**--जीवन का अपने सरल से सरल रूप में आरंभ यहां से होता है। यहीं से जीवित सेल और उनके श्वास लेने वाले पदार्थ, पालन पोषण, वृद्धि, पुनरुत्पत्ति और मृत्यु का आरंभ होता है। पौदे साधारण जड़पुद्गल (Inorganic Matter) के जीवित जीवोज (Protaplasm) बना देते हैं। पौदों में जीव तो है, किन्तु चेतनता अथवा ज्ञान नहीं होता।

(४) **प्राणि सम्बन्धी पदार्थ**--इन पदार्थों का वर्णन प्राणि विज्ञान (Zoology) में किया गया है। प्राणियों का भोजन वनस्पति होते हैं। क्योंकि वह साधारण जड़ पदार्थों से जीवित नहीं रह सकते। उनमें (पौदों के समान) केवल जीवन ही नहीं होता, वरन् चेतना भी होती है; क्योंकि उनमें नाड़ीसंस्थान होता है। ज्ञान उनमें भी नहीं होता, और न उनमें ज्ञान के सहचारी तर्क और भाव होते हैं। इस वर्ग के लिये शरीर विज्ञान (Physiology) मुख्य विज्ञान है। चौथे और पांचवें वर्ग की सीमांतरेखा ज्ञान के विकास को प्रगट करती है।

(५) **मानवी पदार्थ**--मानवी पदार्थों का अध्ययन शरीर निर्माण विज्ञान (Anatomy), शरीर तत्त्व विज्ञान (Physiology), मनो विज्ञान (Psychology), इतिहास, राजनीति, आचारशास्त्र, अर्थशास्त्र और समाज विज्ञान (Sociology) आदि से किया जाता है। इस वर्ग के लिये विशेष विज्ञान मनो विज्ञान है। मनुष्य में केवल जीवन और चेतना ही नहीं होती, वरन् अपने सहचारी तर्क और मनोभावों सहित ज्ञान भी होता है।

कुछ लेखक वनस्पति तथा प्राणि सम्बन्धी समूहों के विभाग न करके उनको प्राणि विज्ञान (Biology) सम्बन्धी एक वर्ग में ही रखते हैं। कुछ लोग केवल मानवी पदार्थों को ही चौथे वर्ग में सम्मिलित करते हैं, किन्तु मेरा विश्वास है कि सभी मानवी पदार्थ प्राणि-मनोवैज्ञानिक (Bio-psychological)

हैं। उचित यह है कि इन पांचों वर्गों को प्रथक् २ ही रखा जावे। क्योंकि प्रत्येक वर्ग का सम्बन्ध कुछ ऐसे विशेष नियमों से है जो दूसरे वर्गों में नहीं पाये जाते।

कुछ भूलें

अब आपको कुछ भारी भूलों के सम्बन्ध में सावधान कर देना चाहिये। यह भूलें अधकचरे ज्ञान अथवा विचारों के सम्मिश्रण से हो जाया करती हैं।

(१) आपको इस विचार को सदा के लिये तिलांजलि दे देनी चाहिये कि विश्व में केवल दो ही प्रकार के पदार्थ हैं--एक जड़ अथवा अजीव, दूसरे चेतन अथवा सजीव। प्रकृति एक और अविभाज्य है। उसमें दो संसार नहीं हैं, जिसमें एक को जड़ और दूसरे को चेतन कहा जा सके। अनेक व्यक्ति जो चेतन संसार के विषय में बड़ी लम्बी चौड़ी बातें बघारा करते हैं, वास्तव में आत्मा के विषय में कुछ भी नही जानते। संभवत:उस को वह वाष्प अथवा धुएं जैसा कोई पदार्थ मानते हैं। अथवा वह यह विश्वास करते हैं कि कोई ऐसा लोक भी है, जिसमें आकाश-काल, सकारणता, और प्रवाह का अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार के विचार उपनिषदों, प्लैटो के लेखों, रहस्यपूर्ण धर्मों, प्राचीन जर्मन दार्शनिक ग्रन्थों, रुडल्फ स्टीनर (Rudolf Steiner) तथा अन्य लेखकों के ग्रन्थों में मिलते हैं। उनका सिद्धान्त है कि 'आत्मिक' जगत् में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता; क्योंकि वह आकाश, काल और पुद्गल (Matter) से भी परे है। यह अपरिवर्तनीय,

अकारण, मृत्यु रहित, कष्ट रहित और भेद रहित है। आत्मा के विषय में उनका धुंधला विचार यही जान पड़ता है। किन्तु इस प्रकार के आत्मिक संसार का अस्तित्व नितान्त असंभव है। सूमा चीन (Ssuma-Chien) के बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों को स्मरण रखो, "अधिकांश शिक्षित व्यक्ति आत्मिक जगत् के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते।" जब कभी आप "अपरिवर्तनीय," "अविनाशी", "स्वयं सिद्ध" अथवा "आत्मिक" शब्दों को ज़ोरशोर से सुनो तो समझ लो कि वक्ता मूर्खता की बातें बक रहा है; जैसा कि डब्ल्यू० आर० इंज (W. R. Inge) का कहना है, "हमारी नागरिकता स्वर्ग में अर्थात् ऐसे लोक में है जहां आकाश और काल नहीं होते। क्या आप किसी ऐसी वस्तु की कल्पना कर सकते हैं, जो बिना काल और अवकाश की हो? जिस प्रकार मछली जल में रहती है उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्राणि काल और आकाश में ही है। समय बीतता है और हम समय के साथ बीतते जाते हैं। इसी का दूसरा नाम प्रवाह है। अपरिवर्तनीय कोई वस्तु न है, न हो सकती है। "अपरिवर्तनीय" और "आत्मिकता" कोरे शब्द मात्र ही हैं; उनका विश्व की घटना अथवा अस्तित्व के साथ सम्बन्ध नहीं है। 'आत्मा' के अस्तित्व के निषेध पर बल देते समय "पुद्गल" और "आत्मा" के विषय वाले अलंकारों के पचड़े में मत पड़ो; साथ ही दर्शन-शास्त्र में "पुद्गल" और "पौद्गलिक" शब्दों का उपयोग करने में असावधानी मत करो। बर्ट्रेंड रसेल ने बतलाया है कि "वर्तमान

भौतिक विज्ञान में पुद्गल का विचार शक्ति के विचार में घुलमिल गया।......घटनाओं के सम्बन्ध में कुछ कारण सम्बन्धी नियमों का वर्णन करने के लिये सुविधा जनक शीघ्रलिपि के अतिरिक्त पुद्गल और कुछ भी नहीं हैं।........संबंध-वाचकता यही चाहती है कि पुद्गल के सम्बन्ध में उस प्राचीन विचार को छोड़ दिया जावे, जो आत्मविद्या (Metaphysics) में "पदार्थ" को मिलाने से दूषित हो गया है ।........पुद्गल की एक इकाई घटनाओं की परम्परा अथवा घटनाचक्र की परम्परा को कहते हैं ।" वर्तमान भौतिक विज्ञान में प्रयोग किये हुए नये विचारों की दृष्टि से दार्शनिक वादविवादों में "आत्मिक" और "पौद्गलिक" शब्दों से काम न लेना ही सब से अच्छा है। आपको केवल प्राकृतिक पदार्थों के विषय में ही कहना चाहिये। "पौद्गलिक" तथा "आत्मिक" संसार के विषय में निरर्थक वादविवाद में मत पड़ो। आपको प्राकृतिक पदार्थों में रुचि रखनी चाहिये, न कि केवल भाववाचक शब्दों में। पेस्च्योर के उस प्रसिद्ध वाक्य को स्मरण रखो, जिसको दर्शनशास्त्र के सभी विद्यार्थियों को सदा स्मरण रखना चाहिये, "जब कभी मैं अपनी प्रयोग शाला में होता हूं तो मैं पुद्गलवाद और आत्मवाद के लिये द्वार बंद करके कार्य आरंभ करता हूँ । मैं केवल घटनाओं पर ही सूक्ष्म दृष्टि देता हूं । मैं केवल उन वैज्ञानिक दशाओं को ही खोजता हूं, जिनमें जीवन स्वयं प्रगट होता है "।

अतएव पेस्टयोर के प्रमाण पर ही आपको घोषणा कर देनी चाहिये कि आप न तो पुद्गलवादी ही हो और न आत्मवादी। इन दोनों ही प्रकार के सिद्धान्तों से सदा के लिये बिदाई ले लो। "यह दोनों आपके घर के लिये प्लेग की बीमारी हैं।" "स्वयंसिद्ध", "आत्मा", "वास्तविकता" और "पौद्गलिकता" का वर्णन करने वाला स्वप्नलोक का अध्यात्मशास्त्र वास्तव में बहाना करने वाला बनावटी सिद्धान्त और शब्दों का कानों को प्रिय लगने वाला ऐसा महल है, जिसका कोई बुद्धिमत्तापूर्ण अर्थ नहीं है।

मेफिस्टोफेलेस (Mephistopheles) ने गोएथे के 'फ़ास्ट' (Faust) नामक ग्रन्थ में कहा है:—

"प्राथमिक और सबसे बड़े कर्तव्य, अध्यात्म शास्त्र को
अध्ययन करने के पश्चात् उसके उपयोग और सौंदर्य का अध्ययन करो!
देखो, आपको वह वस्तु बहुत अधिक मिल जाती है
जो मानवी मस्तिष्क के अनुकूल नहीं पड़ती!
काम देने के लिये आपको एक प्रतापी शब्द ही मिलेगा,
जो तुम्हारे मस्तिष्क में समा सकता है और नहीं भी समा सकता।
यह उत्तम वादविवाद जिन शब्दों से होता है,
वह प्रणाली उन शब्दों के अत्यन्त उपयुक्त है;
शब्दों से उत्तम विश्वास ही कराया जाता है,
कोई भी शब्द अपने भाव को नहीं छिपा सकता।"

इस प्रकार का अध्यात्मशास्त्र जंगल के सुंदर २ उन विषैले

फलों के समान है, जिनको कभी बच्चे जंगल में खा लिया करते हैं। इससे सावधान रहो।

(२) भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान से प्राप्त किये हुए नियमों और विचारों को आपको वनस्पति, प्राणि तथा मानवी वर्गों पर लागू नहीं करना चाहिये। कुछ ऐसे नियम भी हैं, जो पांचों ही वर्गों पर लागू होते हैं, (उदाहरणार्थ, शक्ति का संचय), किन्तु दूसरे नियम केवल किसी विशेष वर्ग पर ही लागू होते हैं। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान रसायनिक सम्बन्ध के रहस्य अथवा पौदों और प्राणियों में पुनरुत्पत्ति की प्रणाली का वर्णन नहीं कर सकता, रसायनिक नियम भी सब कहीं, यहां तक कि यदि कोई प्राणि अथवा मनुष्य अचानक आपत्ति में आगया अथवा भयभीत हो गया हो तो पाचन की सामान्य प्रणाली तक पर लागू नहीं होंगे। मनोविज्ञान मनुष्यों के मानसिक पदार्थों की छानबीन करता है। भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान-यद्यपि कुछ सामान्य प्रणालियों की व्याख्या कर देते हैं, किंतु तौ भी मनोविज्ञान का स्थान नहीं ले सकते। आचार तथा समाज-सम्बन्धी तत्त्वों का शासन उनके नियमों के अनुसार होता है। उनमें वनस्पति विज्ञानवेत्ता अथवा प्राणिविज्ञानवेत्ता अपनी टांग नहीं लगा सकते। सभी भौतिक और रसायनिक नियमों को शेष तीन वर्गों पर लागू करना इसलिये विशेष मूर्खता है कि घटनाएं इस प्रकार की कार्यवाही का बड़ा विरोध करती हैं।

हमको लावेल (Lovell) के साथ सहमत होना चाहिये कि

"जीवन का आधार रसायनिक परीक्षा के अन्वेषण से भी दूर है।"

प्रत्येक विज्ञान को उसके अपने राज्य में राज्य करने दो और किसी भी योग्य घटना की उपेक्षा, उसमें उलटफेर अथवा उसकी अशुद्ध व्याख्या मत करो। इस प्रकार आप जे० लोएब (J. Loeb) तथा अन्य दार्शनिकों के बतलाये हुए सरसरे सिद्धांतों के धोखे में भी मत आओ, जो प्रकृति में केवल भौतिक और रसायनिक पदार्थों को ही मानते हुए जान पड़ते हैं और जो विशुद्ध प्राणिविज्ञान तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी विचारों और नियमों की उपेक्षा करते हुए प्रतीत होते हैं। जे०लोएब कहता है, "सभी जीवित पदार्थ रसायनिक प्रणाली से निश्चित किये जाते हैं।" ई० ए० शैफर (E. A. Schafer) का विचार है कि "जीवित प्राणि भी उन्हीं नियमों के अनुसार कार्य करते हैं, जिनके अनुसार जड़ पदार्थ कार्य करते हैं।" सर रे लैंकेस्टर (Sir Ray Lankester) यह कह कर केवल भौतिक विज्ञान को ही मुख्य विज्ञान मानता है, "मैं ने तो कई वर्ष से यही परिणाम निकाला है कि प्रकृति की पौद्गलिक (Materialist) और यंत्रीय (मनुष्य की प्रकृति का भी इसी में अन्तर्भाव किया गया है) कार्यावली ही, जिसका भौतिक विज्ञान द्वारा कठिनता से निर्माण किया जाता है, सत्य और विश्वास करने योग्य है।" बर्ट्रैंण्ड रसेल का विचार भी यही है, "यह एक काम चलाऊ मूल सिद्धान्त है कि मनुष्य शरीर भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के उन्हीं नियमों के अनुसार कार्य करता है, जिनके अनुसार जड़पुद्गल

है। प्रत्येक वर्ग में अपने से सभी पूर्ववर्ती वर्ग के द्रव्य भी हैं। कुछ विश्व नियम सभी वर्गों पर लागू होते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी नियम हैं, जिनका सम्बन्ध केवल एक २ वर्ग से ही है। प्रत्येक वर्ग के पदार्थ अगले वर्ग में भी मिले होते हैं। अतएव प्रायः दोनों वर्गों में एक सीमान्तरेखा डालनी पड़ती है। प्रत्येक वर्ग के पदार्थों में कुछ अपनी २ विशेषताएं हैं।

(१) **भौतिक पदार्थ**--अथवा अपने भिन्न २ रूपों में शक्ति (Energy) के सब पदार्थ और पुद्गल (Matter—यह भी शक्ति का ही एक रूप है)। इस वर्ग का विशेष पदार्थ गति है। इस वर्ग का अध्ययन भौतिक विज्ञान (Physics) द्वारा किया जाता है।

(२) **रसायनिक पदार्थ**--पौद्गलिक पदार्थों, उनकी रचना, रूपपरिवर्तन और मिश्रण का वर्णन रसायनविज्ञान (Chemistry) करता है। इन पदार्थों में पारस्परिक रसायनिक सम्बन्ध भी होता है; विशुद्ध भौतिक पदार्थों से इनका यही भेद है।

(३) **वनस्पति सम्बन्धी पदार्थ**--जीवन का अपने सरल से सरल रूप में आरंभ यहां से होता है। यहीं से जीवित सेल और उनके श्वास लेने वाले पदार्थ, पालन पोषण, वृद्धि, पुनरुत्पत्ति और मृत्यु का आरंभ होता है। पौदे साधारण जड़पुद्गल (Inorganic Matter) के जीवित जीवोज (Protaplasm) बना देते हैं। पौदों में जीव तो है, किन्तु चेतनता अथवा ज्ञान नहीं होता।

(४) **प्राणि सम्बन्धी पदार्थ**--इन पदार्थों का वर्णन प्राणि विज्ञान (Zoology) में किया गया है। प्राणियों का भोजन वनस्पति होते हैं। क्योंकि वह साधारण जड़ पदार्थों से जीवित नहीं रह सकते। उनमें (पौदों के समान) केवल जीवन ही नहीं होता, वरन् चेतना भी होती है; क्योंकि उनमें नाड़ीसंस्थान होता है। ज्ञान उनमें भी नहीं होता, और न उनमें ज्ञान के सहचारी तर्क और भाव होते हैं। इस वर्ग के लिये शरीर विज्ञान (Physiology) मुख्य विज्ञान है। चौथे और पांचवें वर्ग की सीमांतरेखा ज्ञान के विकास को प्रगट करती है।

(५) **मानवी पदार्थ**--मानवी पदार्थों का अध्ययन शरीर निर्माण विज्ञान (Anatomy), शरीर तत्त्व विज्ञान (Physiology), मनो विज्ञान (Psychology), इतिहास, राजनीति, आचारशास्त्र, अर्थशास्त्र और समाज विज्ञान (Sociology) आदि से किया जाता है। इस वर्ग के लिये विशेष विज्ञान मनो विज्ञान है। मनुष्य में केवल जीवन और चेतना ही नहीं होती, वरन् अपने सहचारी तर्क और मनोभावों सहित ज्ञान भी होता है।

कुछ लेखक वनस्पति तथा प्राणि सम्बन्धी समूहों के विभाग न करके उनको प्राणि विज्ञान (Biology) सम्बन्धी एक वर्ग में ही रखते हैं। कुछ लोग केवल मानवी पदार्थों को ही चौथे वर्ग में सम्मिलित करते हैं, किन्तु मेरा विश्वास है कि सभी मानवी पदार्थ प्राणि-मनोवैज्ञानिक (Bio-psychological)

हैं। उचित यह है कि इन पांचों वर्गों को प्रथक् २ ही रखा जावे। क्योंकि प्रत्येक वर्ग का सम्बन्ध कुछ ऐसे विशेष नियमों से है जो दूसरे वर्गों में नहीं पाये जाते।

कुछ भूलें

अब आपको कुछ भारी भूलों के सम्बन्ध में सावधान कर देना चाहिये। यह भूलें अधकचरे ज्ञान अथवा विचारों के सम्मिश्रण से हो जाया करती हैं।

(१) आपको इस विचार को सदा के लिये तिलांजलि दे देनी चाहिये कि विश्व में केवल दो ही प्रकार के पदार्थ हैं--एक जड़ अथवा अजीव, दूसरे चेतन अथवा सजीव। प्रकृति एक और अविभाज्य है। उसमें दो संसार नहीं हैं, जिसमें एक को जड़ और दूसरे को चेतन कहा जा सके। अनेक व्यक्ति जो चेतन संसार के विषय में बड़ी लम्बी चौड़ी बातें बघारा करते हैं, वास्तव में आत्मा के विषय में कुछ भी नही जानते। संभवतः उस को वह वाष्प अथवा धुएं जैसा कोई पदार्थ मानते हैं। अथवा वह यह विश्वास करते हैं कि कोई ऐसा लोक भी है, जिसमें आकाश-काल, सकारणता, और प्रवाह का अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार के विचार उपनिषदों, प्लैटो के लेखों, रहस्यपूर्ण धर्मों, प्राचीन जर्मन दार्शनिक ग्रन्थों, रुडल्फ स्टीनर (Rudolf Steiner) तथा अन्य लेखकों के ग्रन्थों में मिलते हैं। उनका सिद्धान्त है कि 'आत्मिक' जगत् में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता; क्योंकि वह आकाश, काल और पुद्गल (Matter) से भी परे है। यह अपरिवर्तनीय,

अकारण, मृत्यु रहित, कष्ट रहित और भेद रहित है। आत्मा के विषय में उनका धुंधला विचार यही जान पड़ता है। किन्तु इस प्रकार के आत्मिक संसार का अस्तित्व नितान्त असंभव है। सूमा चीन (Ssuma-Chien) के बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों को स्मरण रखो, "अधिकांश शिक्षित व्यक्ति आत्मिक जगत् के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते।" जब कभी आप "अपरिवर्तनीय," "अविनाशी", "स्वयं सिद्ध" अथवा "आत्मिक" शब्दों को ज़ोरशोर से सुनो तो समझ लो कि वक्ता मूर्खता की बातें बक रहा है; जैसा कि डब्ल्यू० आर० इंज (W. R. Inge) का कहना है, "हमारी नागरिकता स्वर्ग में अर्थात् ऐसे लोक में है जहां आकाश और काल नहीं होते। क्या आप किसी ऐसी वस्तु की कल्पना कर सकते हैं, जो बिना काल और अवकाश की हो? जिस प्रकार मछली जल में रहती है उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्राणि काल और आकाश में ही है। समय बीतता है और हम समय के साथ बीतते जाते हैं। इसी का दूसरा नाम प्रवाह है। अपरिवर्तनीय कोई वस्तु न है, न हो सकती है। "अपरिवर्तनीय" और "आत्मिकता" कोरे शब्द मात्र ही हैं; उनका विश्व की घटना अथवा अस्तित्व के साथ सम्बन्ध नहीं है। 'आत्मा' के अस्तित्व के निषेध पर बल देते समय "पुद्गल" और "आत्मा" के विषय वाले अलंकारों के पचड़े में मत पड़ो; साथ ही दर्शन-शास्त्र में "पुद्गल" और "पौद्गलिक" शब्दों का उपयोग करने में असावधानी मत करो। बर्ट्रेंड रसेल ने बतलाया है कि "वर्तमान

भौतिक विज्ञान में पुद्गल का विचार शक्ति के विचार में घुलमिल गया।……घटनाओं के सम्बन्ध में कुछ कारण सम्बन्धी नियमों का वर्णन करने के लिये सुविधा जनक शीघ्रलिपि के अतिरिक्त पुद्गल और कुछ भी नहीं हैं।………संबंध-वाचकता यही चाहती है कि पुद्गल के सम्बन्ध में उस प्राचीन विचार को छोड़ दिया जावे, जो आत्मविद्या (Metaphysics) में "पदार्थ" को मिलाने से दूषित हो गया है ।………पुद्गल की एक इकाई घटनाओं की परम्परा अथवा घटनाचक्र की परम्परा को कहते हैं ।" वर्तमान भौतिक विज्ञान में प्रयोग किये हुए नये विचारों को दृष्टि से दार्शनिक वादविवादों में "आत्मिक" और "पौद्गलिक" शब्दों से काम न लेना ही सब से अच्छा है। आपको केवल प्राकृतिक पदार्थों के विषय में ही कहना चाहिये। "पौद्गलिक" तथा "आत्मिक" संसार के विषय में निरर्थक वादविवाद में मत पड़ो। आपको प्राकृतिक पदार्थों में रुचि रखनी चाहिये, न कि केवल भाववाचक शब्दों में। पेस्च्योर के उस प्रसिद्ध वाक्य को स्मरण रखो, जिसको दर्शनशास्त्र के सभी विद्यार्थियों को सदा स्मरण रखना चाहिये, "जब कभी मैं अपनी प्रयोग शाला में होता हूं तो मैं पुद्गलवाद और आत्मवाद के लिये द्वार बंद करके कार्य आरंभ करता हूँ । मैं केवल घटनाओं पर ही सूक्ष्म दृष्टि देता हूं । मैं केवल उन वैज्ञानिक दशाओं को ही खोजता हूं, जिनमें जीवन स्वयं प्रगट होता है "।

अतएव पेस्टयोर के प्रमाण पर ही आपको घोषणा कर देनी चाहिये कि आप न तो पुद्गलवादी ही हो और न आत्मवादी। इन दोनों ही प्रकार के सिद्धान्तों से सदा के लिये विदाई ले लो। "यह दोनों आपके घर के लिये प्लेग की बीमारी हैं।" "स्वयंसिद्ध", "आत्मा", "वास्तविकता" और "पौद्गलिकता" का वर्णन करने वाला स्वप्नलोक का अध्यात्मशास्त्र वास्तव में बहाना करने वाला बनावटी सिद्धान्त और शब्दों का कानों को प्रिय लगने वाला ऐसा महल है, जिसका कोई बुद्धिमत्तापूर्ण अर्थ नहीं है।

मेफिस्टोफेलेस (Mephistopheles) ने गोएथे के 'फ़ास्ट' (Faust) नामक ग्रन्थ में कहा है:—

"प्राथमिक और सबसे बड़े कर्तव्य, अध्यात्म शास्त्र को
अध्ययन करने के पश्चात् उसके उपयोग और सौंदर्य का अध्ययन करो!
देखो, आपको वह वस्तु बहुत अधिक मिल जाती है
जो मानवी मस्तिष्क के अनुकूल नहीं पड़ती!
काम देने के लिये आपको एक प्रतापी शब्द ही मिलेगा,
जो तुम्हारे मस्तिष्क में समा सकता है और नहीं भी समा सकता।
यह उत्तम वादविवाद जिन शब्दों से होता है,
वह प्रणाली उन शब्दों के अत्यन्त उपयुक्त है;
शब्दों से उत्तम विश्वास ही कराया जाता है,
कोई भी शब्द अपने भाव को नहीं छिपा सकता।"

इस प्रकार का अध्यात्मशास्त्र जंगल के सुंदर २ उन विषैले

फलों के समान है, जिनको कभी बच्चे जंगल में खा लिया करते हैं। इससे सावधान रहो।

(२) भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान से प्राप्त किये हुए नियमों और विचारों को आपको वनस्पति, प्राणि तथा मानवी वर्गों पर लागू नहीं करना चाहिये। कुछ ऐसे नियम भी हैं, जो पांचों ही वर्गों पर लागू होते हैं, (उदाहरणार्थ, शक्ति का संचय), किन्तु दूसरे नियम केवल किसी विशेष वर्ग पर ही लागू होते हैं। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान रसायनिक सम्बन्ध के रहस्य अथवा पौदों और प्राणियों में पुनरुत्पत्ति की प्रणाली का वर्णन नहीं कर सकता, रसायनिक नियम भी सब कहीं, यहां तक कि यदि कोई प्राणि अथवा मनुष्य अचानक आपत्ति में आगया अथवा भयभीत हो गया हो तो पाचन की सामान्य प्रणाली तक पर लागू नहीं होंगे। मनोविज्ञान मनुष्यों के मानसिक पदार्थों की छानबीन करता है। भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान-यद्यपि कुछ सामान्य प्रणालियों की व्याख्या कर देते हैं, किंतु तौ भी मनोविज्ञान का स्थान नहीं ले सकते। आचार तथा समाज-सम्बन्धी तत्वों का शासन उनके नियमों के अनुसार होता है। उनमें वनस्पति विज्ञानवेत्ता अथवा प्राणिविज्ञानवेत्ता अपनी टांग नहीं लगा सकते। सभी भौतिक और रसायनिक नियमों को शेष तीन वर्गों पर लागू करना इसलिये विशेष मूर्खता है कि घटनाएं इस प्रकार की कार्यवाही का बड़ा विरोध करती हैं।

हमको लावेल (Lovell) के साथ सहमत होना चाहिये कि

"जीवन का आधार रसायनिक परीक्षा के अन्वेषण से भी दूर है।"

प्रत्येक विज्ञान को उसके अपने राज्य में राज्य करने दो और किसी भी योग्य घटना की उपेक्षा, उसमें उलटफेर अथवा उसकी अशुद्ध व्याख्या मत करो। इस प्रकार आप जे० लोएब (J. Loeb) तथा अन्य दार्शनिकों के बतलाये हुए सरसरे सिद्धांतों के धोखे में भी मत आओ, जो प्रकृति में केवल भौतिक और रसायनिक पदार्थों को ही मानते हुए जान पड़ते हैं और जो विशुद्ध प्राणिविज्ञान तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी विचारों और नियमों की उपेक्षा करते हुए प्रतीत होते हैं। जे०लोएब कहता है, "सभी जीवित पदार्थ रसायनिक प्रणाली से निश्चित किये जाते हैं।" ई० ए० शैफर (E. A. Schafer) का विचार है कि "जीवित प्राणि भी उन्हीं नियमों के अनुसार कार्य करते हैं, जिनके अनुसार जड़ पदार्थ कार्य करते हैं।" सर रे लैंकेस्टर (Sir Ray Lankester) यह कह कर केवल भौतिक विज्ञान को ही मुख्य विज्ञान मानता है, "मैं ने तो कई वर्ष से यही परिणाम निकाला है कि प्रकृति की पौद्गलिक (Materialist) और यंत्रीय (मनुष्य की प्रकृति का भी इसी में अन्तर्भाव किया गया है) कार्यावली ही, जिसका भौतिक विज्ञान द्वारा कठिनता से निर्माण किया जाता है, सत्य और विश्वास करने योग्य है।" बर्ट्रैंण्ड रसेल का विचार भी यही है, "यह एक काम चलाऊ मूल सिद्धान्त है कि मनुष्य शरीर भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के उन्हीं नियमों के अनुसार कार्य करता है, जिनके अनुसार जड़पुद्गल

कार्य करता है। जड़पुद्गल से इसकी विभिन्नता उसके नियमों में न होकर उसकी असाधारण और उलझनदार रचना में ही है।" हर्बर्ट स्पेंसर ने "शक्ति की दृढ़ता" के भौतिक विचार और "इन्द्रिय शरीर" तथा "गर्भ के विकास" के प्राणिविज्ञान सम्बन्धी विचार को इतिहास और समाज विज्ञान के मानवी-पदार्थ पर लागू किया, जिसका परिणाम विनाशकारी ही हुआ। इस प्रकार की प्रणाली से विचार में गड़बड़ी और गलतियां ही होती हैं। योग्य दर्शन शास्त्र यही चाहता है कि पांचों वर्गों में से प्रत्येक के ऊपर शासन करने वाले नियमों को देखी तथा निश्चय की हुई घटनाओं के आधार पर बनाना चाहिये। भौतिक विज्ञान तथा शरीर विज्ञान के सभी नियमों को प्राणि विज्ञान पर लागू करने अथवा प्राणि विज्ञान के नियमों को मनो विज्ञान और समाज विज्ञान के ऊपर लागू करने का उद्योग नहीं करना चाहिये। प्रत्येक विज्ञान अपने २ पदार्थों का ही वर्णन करता है। वह सब वर्गों के पदार्थों के ऊपर सामान्य रूप से लागू होने वाले नियमों के अतिरिक्त अपने विशेष नियमों का भी पता लगाता है।

(३) आपको "जीवन" के सिद्धान्ताभास से भी सावधान रहना चाहिये। आपको यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि प्राणि जीवन, पशु जीवन और मानवी जीवन के पदार्थ सदा भौतिक-रसायनिक प्रणालियां ही नहीं हैं, उनकी व्याख्या करने के लिये किसी 'जीवन शक्ति' को स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। हेनरी बर्गसन (Henri Bergson), एच० ए० ई० ड्रीश

(H. A. E. Driesch) तथा विलियम मैकडौगल (William McDougall) के 'जीवात्मा' अथवा इसी से मिलते जुलते अन्य सभी शब्द वास्तव में धोखे और गड़बड़ी में डालने वाले हैं। वह केवल आध्यात्मिक भाव हैं। विज्ञान पदार्थों और उनके नियमों का वर्णन करता है। वह मस्तिष्क को गड़बड़ में डालने वाले अस्पष्ट और रहस्यपूर्ण भावों को दूर भगा देता है। यह सत्य है कि प्राणि विज्ञान सम्बन्धी पदार्थ केवल भौतिक-रसायनिक पदार्थ ही नहीं है। प्राणि के कार्य से अपने आस-पास के व्यक्तियों तथा अन्य वस्तुओं की सेवा होती है। उसके सभी कार्यों की भविष्यवाणी ग्रहण और इंजिन के कार्यों के समान नहीं की जा सकती। जे० ए० टामसन (.J A. Thomson) के शब्द में जीवित शरीर "एक ऐसा एंजिन है जिसकी आग में स्वयं ही कोयला पड़ जाता है, स्वयं मरम्मत हो जाती है, स्वयं ही रक्षा हो जाती है, स्वयं ही सारा कार्य ठीक हो जाता है, स्वयं ही बढ़ जाता है और स्वयं ही फिर उत्पन्न हो जाता है।" प्राणि केवल मशीन ही नहीं होता। उड़ने वाला पक्षि हवाई जहाज़ के समान केवल यंत्रीय पदार्थ से बहुत कुछ अधिक है; क्योंकि वह नाड़ीचक्र सहित एक जीवित प्राणि है। पर्वत से रेंग कर नीचे आने वाली चींटी अथवा कीड़ा उसके ऊपर से लुड़क कर आने वाले पत्थर से बिलकुल ही भिन्न प्रकार का पदार्थ है। इसी प्रकार अमीबा (Amoeba) भी बिल्लौर की अपेक्षा बिल्कुल ही भिन्न रीति से बढ़ता है। इसी कारण प्राकृतिक पदार्थों को पांच भिन्न २ वर्गों में विभक्त किया गया है, जिनमें से प्रत्येक वर्ग के अपने

प्रथक् २ ऐसे नियम हैं, जो दूसरे वर्गों पर लागू नहीं होते। वनस्पति विज्ञान तथा प्राणि विज्ञान अपने २ ढंग के स्वतन्त्र विज्ञान हैं; पौदों और प्राणियों के भौतिक तथा रसायनिक नियमों के आधीन होते हुए भी वह केवल भौतिक विज्ञान और रसायन-विज्ञान की शाखाएं ही नहीं हैं। प्राणि विज्ञान तथा रसायन विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर एफ. जी. हापकिंस (H. C. Hopkins) कहते हैं, उसके व्यवहारिक रसायनिक रूप के वर्णन से जीवित प्राणि का योग्य वर्णन हो जाने से यह परिणाम निकालने का दावा—कि जीवित शरीर भौतिक-रसायनिक पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है—नहीं करना चाहिये। इसका यह भाव है कि अपने गति सम्बन्धी कार्यों के किसी निश्चित और पहचान होने योग्य दर्जे पर जीवित शरीर का तर्क पूर्ण ढंग पर केवल भौतिक-रसायनिक शब्दों में ही वर्णन किया जा सकता है।……तौ भी कई एक उससे भी ऊँचे दर्जों के विषय में उससे बिलकुल भिन्न शब्दों में वादविवाद किया जा सकता है।"

इस प्रकार आपको मूल सिद्धान्तों में बिल्कुल भिन्न २ प्रकार के वर्गों के पदार्थों के अस्तित्व को उनके विशेष नियमों सहित स्वीकार कर लेना चाहिये। किन्तु आपको "चेतनवाद" के अस्पष्ट और धोखे में डालने वाले शब्दजाल में नहीं फंसना चाहिये। 'वाद' रूप के अनेक शब्दों के समान 'चेतनवाद' भटके हुओं के लिये केवल शब्दजाल ही है। यह केवल अध्यात्मिक कागज़ का टुकड़ा है। एच० बर्गसन यदि यह कल्पना करता

है कि वह हमको इस प्रकार के वाक्य से अधिक बुद्धिमान् बना देगा तो वह अपने आपको स्वयं ही धोखा दे रहा है, "अब हम फिर उसी विचार-जीवन की मूल वेगशक्ति के विषय पर-आते हैं, जहां से हमने आरम्भ किया था……यह बलशक्ति विकास के सिद्धान्त पर आश्रित होती हुई, उसी में विभक्त होती हुई, परिवर्तनों का मूल कारण है।" इस प्रकार के सिद्धान्त का कुछ भी वैज्ञानिक मूल्य नहीं है। "चेतनवाद" न तो किन्हीं नियमों का पता लगाने, न किसी पदार्थ की व्याख्या करने में सहायता देता है। अतएव यह कहने से क्या लाभ हो सकता है कि किसी जीवित शरीर में जीवात्मा है? यह तो केवल पुनरुक्ति ही है। मेंढक वास्तव में एक जीवित जीवधारी है, न कि पत्थर अथवा गन्धक का टुकड़ा—यह वर्णन वास्तव में उससे कहीं अधिक योग्य है। इस प्रकार के बातूनी बाजीगरों के सम्बन्ध में हास्य प्रिय सैमुएल बटलर (Samuel Butler) ने कहा है—

> "वह प्रत्येक बात को जानता था, और इतना अधिक जानता था जितना अध्यात्मवादी की बुद्धि उड़ सकती है।"

एक प्रसिद्ध "अध्यात्मवादी" कहता है, "एक ऐसा समय आवेगा, जब जीवात्मा के अतिरिक्त कोई जीवधारी न होगा।" क्या आप उस बहुमूल्य मध्यवर्ती और अध्यात्मिक वर्णन का खंडन केवल अपनी मूर्खता से ही कर सकोगे। मोलियर (Moliere) ने एक ऐसे डाक्टर का वर्णन किया है जो अफीम के नींद लाने वाले प्रभाव का वर्णन उसके 'गुणों के वर्णन' से किया

करता था। यदि आप जीवन और स्फूर्ति के मूल सिद्धान्त को 'शरीरधारी' नाम दोगे और उसको इसी रूप में लिखने में भी प्रधान स्थान दोगे तो आप ऐसे मार्ग से चल पड़ोगे जिसमें अध्यात्मवाद के शब्दाडम्बर के अंधकार में मार्ग भूल जाने का बहुत कुछ भय है। इस प्रकार यह भाव का नामकरण करने का ढंग कविता के लिये भले ही ठीक हो किन्तु वैज्ञानिक दर्शन-शास्त्र में तो यह अत्यंत भयंकर है। आपको एक केकड़े के शरीर निर्माण विज्ञान और शरीर कार्यविज्ञान का अध्ययन करना चाहिये, किन्तु केकड़े की उस शक्ति के विषय में छानबीन नहीं करनी चाहिये जो उसको केकड़ा बनाती है। शीशम के वृक्ष में शीशम की शक्ति और बरगद के वृक्ष में बरगद की शक्ति को खोजने से वनस्पति विज्ञान के आविष्कारों में कुछ भी सहायता नहीं मिलती। उसी प्रकार बैलों और मछलियों के आत्मा को खोजने में प्राणिविज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं है। शरीरधारियों के जीवात्मा में जीवनी शक्ति अथवा जीवन का होना भी उसी प्रकार भाववाचक शब्द है, जो केवल एक शरीरधारी के प्रगट किये हुए पदार्थ के सारांश मात्र को ही बतलाता है। वह स्वयं एक स्वतंत्र सत्ता नहीं है। हमको स्वयं अपने ही बनाये हुए शब्द का पूजन नहीं करना चाहिये। हमको अपने ही मस्तिष्क की रचना के सन्मुख सिर नहीं झुकाना चाहिये। किसी विशेष वास्तविकता को प्रगट न करने वाले भाववाचक शब्दों की सूक्ष्म आधीनता से अपने को मुक्त करो। विज्ञान के निर्मल जल में अध्यात्मवाद की

गाद को मत उछालो। विज्ञान को सदा ही ऊपर २ सोचने वाले ऐसे व्यक्तियों से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये, जो उसका नाम व्यर्थ में ही लेते हैं। (उदाहरणार्थ, बर्गसन, ग्रैंडजीन, (Grandjean) ले राय, विलब्रॉएस (Wilbois), बैज़ेलास, (Bazaillas), इंज, रूडल्फ स्टीनर, इत्यादि)। उन्होंने अध्यात्मवाद की पुरानी डायन को उसकी वृद्धावस्था में लकड़ी थमाने के लिये ही विज्ञान की भड़कीली पोशाक को मांग कर पहिन लिया है। उन्होंने वर्तमान विज्ञान के व्याघ्रचर्म को पहिन लिया है, किन्तु उनकी वाणी अंदर की सारी पोलपट्टी को खोल देती है। उन्होंने विज्ञान के शब्दों और रीतियों को बार २ कहना सीख लिया है, किन्तु वह उसके ढंग अथवा रूप में बातचीत करना नहीं जानते। विज्ञान को आधुनिक अथवा मध्यकालीन किसी भी अध्यात्मवाद से समझौता नहीं करना चाहिये। अध्यात्मवाद जीवन को निर्बल बनाने, मस्तिष्क को बिगाड़ने, और आत्मा पर आवरण डालने वाली वह शक्ति है, जिसका आपको मुकाबला करके जहां मिले वहीं दबाना चाहिये। उसने अपने धीमे विषैले प्रभाव से अनेक समाजों और सभ्यताओं को नष्ट कर दिया है। आपको "पुनरुक्तिपूर्ण" तथा "आवश्यक" विकास के सम्बन्ध में व्यर्थ के वादविवाद में भी नहीं पड़ना चाहिये। सब पदार्थों को पांच भिन्न २ वर्गों में विभक्त करने तथा उनके भिन्न २ नियमों की छानबीन करने की हमारी प्रणाली हमको अध्यात्मवाद की कीचड़ के परस्पर विरोधी शब्दों का निर्णय

करने के कठिन कार्य से बचा लेती है। एक प्रकार से जब जड़ पुद्गल जीवित जीवनमूल (Protoplasm) के रूप में विकसित होता है तो कोई नई बात नहीं होती। वास्तव में उन्हीं तत्त्वों का क्रम और प्रबन्ध कुछ अधिक जटिल हो जाता है। एक पशु अथवा मनुष्य विश्व की शक्ति (Energy) और पुद्गल (Matter) में से भौतिक और रसायनिक रूप में न तो कुछ कम कर सकता है और न कुछ मिला ही सकता है। विकास केवल भौतिक-रसायनिक-विधि पर पुनरुक्ति का ही नाम है। शक्तिशाली सीजर भी मरने पर मिट्टी ही हो गया। टेनीसन ने अपने को इसी विचार से सान्त्वना दी कि आर्थर हैलम (Arther Halam) के मृतक शरीर के अंगरेजी फूल बन गये,

"यह अच्छा है, यह कोई वस्तु है; हम उस स्थान पर खड़े हो सकते हैं

जहां वह इंगलैण्ड की भूमि में सोया हुआ है,
और उसकी राख से,
उसकी मातृभूमि के बैंजनी फूल बन सकते हैं।"

शैले के मस्तिष्क और शरीर के अन्त्येष्टिसंस्कार के समय रसायनिक रूप में विश्व की कुछ भी हानि नहीं हुई। वह केवल तत्त्वों के अपने २ रूप में मिल जाने की प्रक्रिया मात्र थी। किन्तु कविता के संसार के लिये मृत्यु का रूप बिल्कुल ही भिन्न है। भौतिक-रसायनिक वृत्त वास्तव में एक बंद घेरा है। पौदा केवल जीवन के पदार्थ को प्रगट करता है; पशु उस जीवन में

चेतन और मिला देते हैं; और मनुष्य जीवन, चेतनता और ज्ञानयुक्त सबका मुकटमणि प्राणि है। प्राणिविज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक (Bio-psychological) भाव में विकास उत्पादक और आवश्यक है; यह केवल पुनरुक्ति ही नहीं है। मनुष्य के मस्तिष्क और शरीर में उद्‌जन (Hydrogen), कर्बन (Carbon), गंधक (Sulphur) तथा अन्य रसायनिक तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ और भी है। इस 'कुछ और' में कुछ विशेष तत्व नहीं है। इससे तराज़ू का पलड़ा जौ के करोड़वें भाग भी नहीं झुकेगा। किन्तु यही 'कुछ और' उस शरीर में जीवन, चेतना और ज्ञान--मनुष्य की तीन विशेषताओं रूप है। विज्ञान के सीधे और तंग मार्ग पर जाते समय इस वादविवाद में गंभीरता से पड़ने की कभी आवश्यक्ता नहीं है, जीवन शक्ति वाद की अध्यात्मिकता की अंधकारपूर्ण तंग गली में तो कभी नहीं भटकना चाहिये। विकास में 'आवश्यक' और 'पुनरुक्ति रूप' विशेषण लगाने से क्या लाभ संभव हो सकता है ? क्या यह कोई शब्दों का युद्ध है, जो सौ वर्ष में भी समाप्त नहीं हो सकता ? इस प्रकार के शून्य भावों के निष्फल वादविबाद के द्वारा हम पदार्थों और नियमों को नहीं समझ सकते। हम स्थूल और रुचिपूर्ण घटनाओं में इतने अधिक व्यस्त हैं कि हमारे पास इन सूत्य और न समझने योग्य अध्यात्मिक समस्याओं के लिये समय नहीं है।

रैबेलेस (Rabelais)ने हमको पहिले ही बतलाया है कि सार (सत्त्व) अथवा कल्पना के उस राज्य की यात्रा करने से

क्या लाभ है, जिसकी राजरानी भावों और पदार्थों के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाती, जहां के निवासी असत् से बड़ी २ वस्तुओं को बना लेते हैं, आग को चाकू से काट कर खरबूजे की फांकों में बांट देते हैं, और मछली के जाल से पानी खेंच लेते हैं। वह आश्चर्यजनक राज्य ही "जीवनी शक्तिवाद" के दार्शनिकों का उपयुक्त स्थान है।

(४) आपको विश्व के अन्य ग्रहों के ऊपर भी जीवन की संभावना से हठपूर्वक इंकार नहीं करना चाहिये। केवल समानता के तर्क से ही यह विश्वास करना पड़ता है कि दूसरे सूर्यों की परिक्रमा करने वाले कुछ ग्रहों और कुछ हमारे सौर मण्डल के ग्रहों पर भी प्राणियों का अस्तित्व हो सकता है। वास्तव में ग्रह कभी २ बनते हैं, ज्वार भाटे सम्बन्धी सिद्धांत के अनुसार वह तब तक उत्पन्न नहीं हो सकते, जब तक एक दूसरे के लगभग तीन व्यासों (Diameters) के अंदर से दो तारे न जावें। सर जे० जीन्स का कहना है, "जैसा कि हम जानते हैं कि तारे आकाश में किस प्रकार बिखरे हुए हैं, हम बड़ी सुगमता से अनुमान लगा सकते हैं कि एक दूसरे के इस अंतर में दो तारे किस प्रकार बार बार आ जाते होंगे। हिसाब लगाने से पता चलता है कि एक तारे के अपने करोड़ों और अरबों वर्ष के जीवन को व्यतीत करने के पश्चात् भी उसको एक हजार एक बार ऐसा अवसर मिल सकता है कि वह फिर ग्रहों से घिरा हुआ प्रतापी सूर्य बन जावे।" सौ

इंच व्यास वाले दूरवीक्षण यंत्र से लिये हुए फोटो में लगभग डेढ़ अरब (१५००००००००) तारे दिखलाई देने से यह कल्पना सुगम-जान पड़ती है कि अन्य ग्रहों में भी प्राणि सृष्टि हो सकती है। इस प्रकार के ग्रहों के अत्यंत कम होने पर भी कहीं न कहीं तो ऐसे कुछ ग्रह होंगे ही। यह सम्भव है कि इस छोटी सी पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र भी उपयुक्त तापमान, ओषजन (Oxygen) तथा प्राणि सम्बन्धी विकास की पूर्ववर्ती अन्य सामिग्री का भी अस्तित्व है। जैसा कि जिआरडैनो ब्रूनो (Giordano Bruno) ने अपनी कवितामयी और अवैज्ञानिक भाषा में कहा है, "एक जीव, संसार की एक आत्मा उसमें पूर्णतया और उसके प्रत्येक भाग में सब कहीं है। यह आत्मा……सब वस्तुओं को सब कहीं उत्पन्न करता है।" यह हो सकता है कि कुछ लोकों में केवल अर्द्धमानवी प्राणि ही हों, किन्तु अन्य ग्रहों में ऐसे मनुष्योत्तर (Supermen) प्राणि भी हो सकते हैं, जो हम लोगों कीअपेक्षा कहीं अधिक विकसित हों और उस दर्जे पर पहुँच चुके हों जिस पर पृथ्वी का मनुष्य करोड़ों वर्षों में पहुँचेगा। विकास बन्द नहीं हुआ है, क्योंकि डार्विन उसका आविष्कार करके मर गया। यह एक नित्य प्रक्रिया है। पृथ्वी के मनुष्य को यह दावा करने की आवश्यकता नहीं है कि वह जीवन की नोक पर खड़ा हुआ है। संभवतः उसका तो उसमें एक बहुत छोटा स्थान है। ऐसे प्राणि भी हो सकते हैं जो मनुष्य की अपेक्षा इतने बड़े हो सकते हैं जितना सूक्ष्मजीवों की अपेक्षा मनुष्य है। हम इस बात की

कल्पना भी नहीं कर सकते कि वह कैसे दिखलाई देते होंगे और किस प्रकार रहते होंगे। किन्तु सीप के कीड़े और मिट्टी के कीड़े को भी उच्च कोटि के संगीत अथवा राष्ट्रसंघ (League of Nations) का आनुमानिक विचार नहीं हो सकता। किसी दिन हम इन दूरवर्ती लोकों के निवासियों के साथ वार्तालाप करने में समर्थ होंगे। उस युग में रहना (अथवा फिर जन्म धारण करना?) वास्तव में बड़े गौरव की बात होगी।

द्वितीय अध्याय

इतिहास

बेकन (Bacon) ने कहा है कि "इतिहास मनुष्य को बुद्धिमान् बनाता है।" बुद्धि के अनेक साधनों में से वास्तव में इतिहास (पुरातत्त्व सहित) भी एक है ।

इतिहास के लाभ

(१) मनुष्य जाति के भूतकालीन अनुभवों और कार्यों के सम्बन्ध में योग्य घटनाओं का अध्ययन करने और उनकी दार्शनिक व्याख्या करने के लिये आपको इतिहास का अध्ययन करना चाहिये। एक व्यक्ति के रूप में आप अत्यंत परिमित परिस्थितियों के वश में हो। आपका व्यक्तिगत जीवन तो कुछ वर्ष

पूर्व ही आरंभ हुआ है। मानवी इतिहास तथा इतिहास-पूर्व-काल की लम्बी २ शताब्दियों की अपेक्षा आप एक ऐसे अल्पजीवी कीड़े हो, जो केवल एक दिन में ही जीवित रहता और मर जाता है। तुम अपने आसपास की वस्तुओं को ध्यानपूर्वक देखते हो और उन वस्तुओं और पुरुषों से कुछ शिक्षा ग्रहण करते हो; किन्तु अनुभव का एक ऐसा वृहत् भंडार भी है, जिसको केवल इतिहास के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। यह अलाउद्दीन की आश्चर्यजनक गुफा उस अमूल्य निधि से भरी हुई है, जिस को मनुष्य जाति ने पांच सहस्र अथवा उससे भी अधिक वर्षों से एकत्रित कर रखा है। वह सब खज़ाने तुम्हारे ही हैं। आप अपने जन्म से ही "उस सभी युगों की निधि के उत्तराधिकारी हो", इसके लिये किसी कानूनी उत्तराधिकारपत्र अथवा प्रमाण की आवश्यकता न पड़ेगी। आप इतिहास और पुरातत्त्वविज्ञान (Archaeology) के अध्ययन के आरंभ से अपने उत्तराधिकार का दावा करते हो। व्यक्तिगत रूप में आप छोटे और निर्बल हो, किन्तु जब आप इतिहास के द्वारा अपने अनुभव को बढ़ा लेते हो तो आप एक विशालकाय देव के सिर पर खड़े हुए बौने के समान बन जाते हो। अपने छोटे से जीवन में आप वास्तव में बहुत ही कम देख सकते हो। किन्तु यदि आप अपने मानसिक अस्तित्व को पीछे की ओर अनेक युगों में लम्बा करो तो आप अपनी दृष्टि की शृंखला को परोक्षदर्शिता के बड़े से बड़े भयंकर स्वप्न से भी अधिक बढ़ा लोगे। ऋग्वेद में सहस्र शिर और

सहस्र पैर वाले विराट् रूप का वर्णन किया गया है, किन्तु इतिहास का विद्यार्थी अपने को पृथ्वीतल के पूर्वकाल के स्त्री पुरुषों का रूप बनाता हुआ, करोड़ों अरबों तथा खरबों आंख और कान वाला होता है। अपने ही लिये छोड़ दिये जाने पर आप अपने समस्त जीवन भर में पर्वत के एक छोटे से सोते के समान ही होगे; किन्तु जब आपका मस्तिष्क और हृदय पूर्वकाल के असंख्य अतिथियों के विचारों और भावों से भर कर पुष्ट हो जावेगा तो आप सहस्रों सहायक नदियों वाली भागीरथी गंगा अथवा अमैज़न नदी की समानता करोगे। इस प्रकार इतिहास आपके व्यक्तित्व को चमका कर विस्तृत करता है। यदि आप इतिहास से प्रेम करते हो तो आप बादशाहों और सम्पादकों के समान (उनकी अपेक्षा भी अधिक हेतुपूर्वक) अपने विषय में 'हम' शब्द से सम्बोधन कर सकोगे। जब तुम बोलोगे तो तुम मनुष्यजाति की जिव्हा कहलाओगे।

(२) इसके अतिरिक्त, इतिहास के ज्ञान के बिना आप स्वयं अपने जीवन को भी नहीं समझ सकते। वर्तमान का मूल भूतकाल में ही हुआ करता है। प्रत्येक पीढ़ी स्वतंत्रतापूर्वक अपने पूर्वजों से लिया करती है और अपने वंशजों को उदारता से दिया करती है। जिस प्रकार आप अपने शरीर के लिये अपने माता-पिता, पितामह, पितामही और अन्त में अपने आदि काल के पूर्वज–हिमयुग वासियों के ऋणी हो; उसी प्रकार सभी रीतियां तथा संस्थाएं भी, जो आपको आपके द्वारा श्वास ली जाने वाली

वायु के समान घेरे हुए हैं, अदृश्य भूतकाल में ही उत्पन्न होकर बढ़ी थीं। प्राणिविज्ञान सम्बन्धी वंशपरम्परा अथवा सामाजिक विकास की परम्परा कभी नहीं टूटा करती।

मैथ्यू आर्नोल्ड (Mathew Arnold) एम्पोडिकिल्स के मुख से कहलाता है—

"जन्म लेकर मनुष्य अपने माता-पिता रूपी वृक्ष के तने से बढ़ता है। फिर जिस प्रकार उसमें अपने पूर्वजों का रक्त मिला हुआ है, उसी प्रकार वह भी अपने रक्त को अपनी सन्तान में मिलाता है, इसप्रकार प्रत्येक नवीन पुरुष अतीत कालमें अपनी जड़ जमा लेता है।

आज आप जिस सभ्यता को देखते हो, वह एक छायादार बल्लूत के वृक्ष के तने, डालियों और पत्तियों के समान है; किन्तु उसकी दूर २ तक अनेक शाखाओं में फैली हुई जड़ें पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुई हैं। इतिहास आपको उन जड़ों को वृक्ष को बिना उखाड़े ही दिखला देता है; वह ठोस पृथ्वी के अंदर मस्तिष्क की किरणों को भेजता है। इतिहास के बिना आप उस यात्री के समान हो, जिसको अपने गंतव्य मार्ग का पता नहीं है; आप यह तो जान लोगे कि आप कहां पर खड़े हुए हो, किन्तु आपको यह पता न होगा कि आप आए कहां से हो । इतिहास इस प्रकार की जाति सम्बन्धी स्मृति को न मिटने देगा। आपका एक धर्म और एक राज्य से सम्बन्ध है; आपकी शिक्षा एक स्कूल और संभवतः एक कालेज में भी हुई है; आपने कवियों और चित्रकारों की रचनाओं की प्रशंसा की है। यह राज्य, धर्म, स्कूल,

कालेज, कवि, और चित्रकार प्रथम बार किस प्रकार बने ? जब आप भोजन करते, दूध पीते, घोड़े पर चढ़ते, पत्र लिखते, घड़ी देखते, औरों के विषय में बातचीत करते अथवा छुट्टी के दिन बिस्तर पर लेटते हो तो आप संभवतः यह बात भूल जाते हो कि आप इन उपहारों और सुन्दर वस्तुओं के लिये उन अज्ञात और बिना नाम वाले पुरुषों के ऋणी हो, जो पृथ्वी के भिन्न २ देशों में अनेक युग पूर्व रहते थे और अब मर चुके हैं। आपका पाषाणयुग का परिश्रम आपको अब भी भोजन दे रहा है। मिश्र, बैबीलोनिया और फीनीशिया आपको अपनी प्रेमिका से पत्र द्वारा समय नियत करने के ढंग की शिक्षा देते हैं। आप समकालीन सभ्यता के भिन्न २ रूपों के आरंभ और विकास के विषय में बिना कुछ जाने हुए बुद्धिमान् नागरिक नहीं बन सकते। सच्ची नागरिकता का आधार इतिहास है, उसके बिना सच्चा आचारशास्त्र भी असंभव है।

(३) इतिहास मानवी प्रकृति पर भी प्रकाश डालता है, यह मनोविज्ञान का सम्मानित मित्र है। इतिहास में उपन्यास से भी अधिक विचित्र सत्य हुआ करता है। यदि आप इतिहास के द्वारा दिखलाये हुए विस्तृत और आश्चर्यजनक चित्र से परिचित नहीं हैं तो आप मानवी प्रकृति की संभावनाओं, उस के उन्नति करने योग्य स्वर्गीय उच्चस्थान और उसके डूबने योग्य अनन्त गंत के विषय में कुछ भी नहीं जान सकते। दांते (Dante) और शेक्सपीयर ने मानवी प्रकृति की गहराई में गोता लगाया है, किंतु

मनुष्य की जिस आत्मा का वर्णन इतिहास में किया गया है उसकी व्याख्या सहस्र दांते और शेक्सपीयर भी नहीं कर सकते। इतिहास की दूर तक फैली हुई शृंखला में प्रेम और घृणा, दया और निर्दयता, लोभ और त्याग, आकांक्षा और निरीहता, वीरता और कायरता तथा अन्य अनेक गुणों और उनके उतार चढ़ाव का वर्णन पराकाष्ठा तक किया गया है। आप यह अनुभव करते हो कि मनुष्य सत्य में ही भयंकरता तथा आश्चर्यजनक रूप से बनाया गया है।

"संसार का प्रताप, दिल्लगी और पहेली यही है।"

(४) आपके व्यक्तिगत जीवन में भी आपका अतीत अनुभव आपको भिन्न २ परिस्थितियों में बुद्धिमानी से कार्य करने में सहायता देता है। आप मित्रों पर भरोसा करते हो, अपने वचन को पूरा करते हो, उधार लेना नहीं चाहते, राजनीतिज्ञों और पुरोहितों का विश्वास नहीं करते और उनसे घृणा करते हो, अपने घर का बीमा कराते, और प्रेम में पड़ने के विरुद्ध अपनी रक्षा करते हो, इत्यादि; इसी प्रकार जाति का अनुभव हमको किसी समय आज कल की किसी पेंचीली समस्या का हल निकालने में सहायता तथा मार्गप्रदर्शन का काम दे सकता है। मनुष्य जाति ने परीक्षा और गलती की पद्धति से संभवतः स्थायी रूप से उचित सिद्धांतों और प्रत्यक्षों का छोटा सा संग्रह प्राप्त किया है। किन्तु इस बुद्धि के लिये सदा ही पीछे को लौटने के हेत्वाभास को भी सदा स्मरण रखो। प्रकृति ने आपके नेत्रों को

आपके सिर में पीछे की ओर नहीं लगाया है। कुछ लोगों का कहना है, "सूर्य के नीचे कोई भी बात नई नहीं है।" और "इतिहास अपनी आवृत्ति स्वयं करता है।" किन्तु वास्तव में सूर्य के नीचे तो प्रति दिन, प्रत्येक घन्टा, यहां तक कि प्रत्येक मिनट कुछ न कुछ नया कार्य हो रहा है और इतिहास अपनी आवृत्ति कभी नहीं करता। जैसा कि लावेल ने कहा है—

"नये अवसरों से नए कर्तव्यों की शिक्षा मिलती है,
समय प्राचीन उत्तम कार्यों को अनोखा बना देता है।
सत्य का पालन करने वाले सदा ही आगे आगे
ऊपर को उन्नति करते रहेंगे।
यह देखो ! हमारे सामने उसके कम्पू की आग
चमक रही है, हम अवश्य ही यात्री हैं।
हम भविष्य के द्वार को भूतकाल की रक्तरंजित
ताली से खोलने का उद्योग नहीं करते।"

आपको इतिहास से बहुत कुछ सीखना चाहिये, किन्तु आप इस बात को भी कभी मत भूलो कि सभी स्त्री पुरुष अपने २ उत्पादक मस्तिष्क और हृदयों से नया इतिहास बनावेंगे। बोलिंगब्रोक (Bolingbroke) की इतिहास की इस व्याख्या को स्वीकार करलो कि यह "उदाहरणों से शिक्षा दिया हुआ दर्शन शास्त्र" है। किन्तु स्मरण रखो कि यह एक अपूर्ण और कांट छांट किया हुआ दर्शन शास्त्र है, जिसमें हमको अपने वर्तमान कालीन विचारों को मिलाना पड़ेगा। आगस्टस कोम्टे (Augustus Comte)

ने कहा है, "मृत जीवित व्यक्तियों पर शासन करते हैं।" यदि यह सत्य है तो जीवित एक भयंकर निराशा का नाम है। सौभाग्यवश मृत लोग हम अपने बालकों को सहायता देते हैं, हम पर शासन नहीं करते। आप काट छांट कर सुखाये हुए नियमों के पूलों और न गिरने योग्य भूतकाल के प्रत्यक्ष सिद्धान्तों का अनाज अपने खलिहान में नहीं भर सकते; आप केवल थोड़े से सामान्य विचारों और सिद्धान्तों की चमक मात्र पा सकते हैं। मैं मर्टाइन (Lamartine) के इस सिद्धान्त से सहमत नहीं हो सकता कि "इतिहास प्रत्येक बात, यहां तक कि भविष्य की भी शिक्षा देता है।" इतिहास भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के समान पूर्वज्ञान और भविष्यज्ञान के लिये निश्चित सिद्धान्त नहीं देता। सत्याभास रूप उन व्याख्याताओं से सावधान रहो जो आपको धर्म अथवा राजनीति में नये सिद्धान्तों का अनुयायी बनाने का इस लिये उद्योग करते हैं कि कोई बात अत्यंत प्राचीन काल में पेरू, रोम अथवा मेसोपोटामिया में या तो हुई अथवा नहीं हुई। सभी घटनाओं और परिस्थितियों के सदा ही एक सी न होने से इतिहास से उस प्रकार की युक्तियां नहीं निकाली जा सकतीं। इसके अतिरिक्त हम सारे इतिहास से भी अनभिज्ञ हैं। हम अपूर्ण लेखों, पक्षपाती और अविश्वसनीय ऐतिहासिकों, किम्बदन्तियों और लोकोक्तियों, दन्तकथाओं और पौराणिक कथानकों, असत्यों और अर्द्धसत्यों पर निर्भर हैं। किंतु हमको यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि इतिहास हमारे लिये

कुछ सीमा के अंदर २ अवश्य उपयोगी हो सकता है। प्रोफेसर जे० एच० राबिनसन (J. H. Robinson) की सम्मति के अनुसार हमको अपनी "ऐतिहासिक विचार शैली" बना लेनी चाहिये। किन्तु इस विषय में भी सावधान रहने की आवश्यकता है कि यह सीमा से अधिक न किया जावे।

(५) इतिहास सामाजिक स्वास्थ्य और जीवनी शक्ति अर्थात् नैतिक आचरण की अनिवार्य आवश्यकता को देने में भी अत्यंत उपयोगी है। भूतकाल के लेख, जिनको उच्च कोटि के स्त्री पुरुषोंने अपने जीवन में व्यवहारिक रूप से चरितार्थ किया है, ऐसा नैतिक बल प्रदान करते हैं, जो प्रत्येक पीढी को तब तक मिलना चाहिये, जब तक कि वह पूर्णतया आचरणहीनता और दुर्बलता से मर न गई हो। इतिहास धर्म, राजनीति, कला और विज्ञान के बड़े २ कार्यों की विजय के जयगीत गाता है। मनुष्य जाति के सच्चे प्रेमियों ने सदा ही विजय के मूल्य के रूप में आत्म बलिदान किया है। संभवतः यह एक गुप्त नित्य नियम जान पड़ता है कि बिना बलिदान केकोई उन्नति नहीं की जा सकती। कुछ स्त्री पुरुषों को शहीद के रूप में मरने के लिये अथवा वीरों के रूप में मृत्यु का मुकाबला करने, बीर सैनिकों अथवा साहसी वीरात्माओं के रूप में अपने प्राणों को संकट में डालने; अत्यंत कठिन तपस्या करने; अपने शरीर को निर्दयता से विनयानुशासन का पालन करने; उच्च पदवी और सम्मान से घृणा करने; भूख और प्यास, ठंड और थकावट को सहन करने; गालियों और निन्दा

से घृणा करने; धन और पत्नी को छोड़ने; ख्याति, समृद्धि और पारिवारिक जीवन का त्याग करने; यातनाओं, जेल, देश-निर्वासन और काल कोठरी के कष्ट को सहन करने के लिये-और इस प्रकार अपने भावों पर शासन करके आत्मा को जीतने और मनुष्यजाति को बुद्धि और गुण के उच्च शिखर पर पहुँचाने के लिये सदा तयार रहना चाहिये। इतिहास इस प्रकार के प्रसिद्ध प्रतिनिधियों, उत्तम शहीदों, देवदूतों और वीरात्माओं के नाम, शब्दों और कार्यावली के विवरण को उसी प्रकार सुरक्षित रखता है, जिस प्रकार पर्वत नीलम, लाल तथा पन्ना आदि मणियों को अपने अंदर छिपाये रखता है। मनुष्यजाति का उत्थान केवल तीन प्रकार के व्यक्ति ही किया करते हैं--देवदूत, स्वधर्मार्थ प्राण त्याग करने वाले और वीर; अन्य नहीं। वह मर जाते हैं, किन्तु उनका किया हुआ उत्तम कार्य उनके पीछे जीवित रहता है। ऐतिहासिकों की लेखनी हमारी उनके जीवन और अस्तित्व से भेंट कराती है और हम एक दम मदिरा अथवा उच्च पर्वत की वायु के समान उत्साह में भरकर बलिष्ट हो जाते हैं। गोएथे(Goethe) ने सत्य ही कहा है, "सबसे उत्तम वस्तु जो इतिहास हमको देता है वह उत्साह है।" आत्म--बलिदान का उसी से प्रचार होता है। वह आकाश और काल को चिढ़ाता है। वह जाति और वर्णों के बंधनों के ऊपर से कूद जाता है। दो सहस्र वर्ष पूर्व शिक्षा देने और मरने वाला ईसामसीह यहूदी था। किन्तु उसके नाम पर यूरोप, एशिया, अफ्रीका, अमरीका, और आस्ट्रेलेशिया में सैकड़ों

शहीदों और धर्मप्रचारकों ने प्रतापी मृत्यु को स्वीकार किया, अथवा उसके नाम पर अत्यंत साधारण रूप में त्यागमय जीवन व्यतीत किया। गौतम बुद्ध प्राचीन भारत का एक घूमकर प्रचार करने वाला भिक्षु था; किन्तु उसके व्यक्तित्व के जादू से चीन, जापान और तिब्बत में सहस्रों भिक्षु और ग्रहस्थ उच्च जीवन के रहस्य को पा गये। इटली में पेट्रार्च (Petrarch) ने ऐसी मशाल को जलाया, जिसने शीघ्र ही सारे यूरोप को प्रकाशित कर दिया, और अनेक देशों के भक्त विद्वानों ने मध्यकाल के नारकीय अंधकार को दूर करने का उद्योग बिना किसी पारिश्रमिक के किया। इतिहास ने देवदूतों, शहीदों और वीरों के पवित्र त्रिगुट को हमारे सन्मुख उपस्थित करके सचमुच ही हमारे नेत्रों को चकाचौंध में डाल दिया है। हम कम्बोडिया अथवा लंका की स्वर्ण प्रतिमाओं के सन्मुख भय से खड़े हुये यात्रियों के समान आश्चर्य और श्रद्धा से उनके सन्मुख पूजा करने के लिये झुकते हैं। इस स्मृति पूर्वकाल तथा चिरस्थायी धर्म के उच्च कोटि के पुजारी इतिहासज्ञ लोग हैं। मिश्र देश की मसाला लगाकर सुखाई हुई लाशों में केवल शरीर, कपड़ों और व्यक्तित्व की ऊपरी सामग्री की ही रक्षा की जाती है; किन्तु इतिहास मनुष्य जाति के प्रत्येक बड़े सेवक के मस्तिष्क और आत्मा की रक्षा करता है। प्राचीनकाल में कुछ ईसाई सिंहों के सन्मुख फेंक दिये जाते थे, किन्तु यूसीबियस (Eusebius) ने उनकी कहानी का वर्णन किया है, जिसको हम नेत्रों में आंसू भर कर समाप्त करते हैं। शमन (श्रमण) हुई ली (Hwu Li)

के संरक्षण में उस य्वानच्वांग के साथ यात्रा करते हैं, जिसने प्रतापी तथा रुकावट डालने वाले हिमालय के नियमों को तोड़कर बौद्ध ज्ञान के पारितोषिक को प्राप्त किया और जिसने स्वयं ही विदेश में बड़े भारी कष्ट से दिन व्यतीत किये। यूनान और रोम के दार्शनिक और राजनीतिज्ञ हमारे लिये डायोजीन्स, (Diogenes), लेर्शियस (Laertius) और प्लूटार्च (Plutarch) के ग्रन्थों के पृष्ठों में अब भी जीवित हैं। फरीदुद्दीन अत्तार के स्मरणीय लेखों में सूफ़ी साधु अब भी हमको अपने सिद्धान्तों की शिक्षा दिया करते हैं। वाल्मीकि, ऐसेर, (Asser) जोइनविले (Joinville) और कनफ्यूसियस (Confucius) ने राम, ऐल्फ्रेड, सेंट लुई, याओ, और वेन जैसे धार्मिक शासकों के कार्यों का वर्णन किया है। अल-जाज़री और इब्न-खलीकान ने इस्लामी सभ्यता के निर्माताओं के कार्यों का वर्णन किया है। वसारी (Vasari) ने इटली के पुनर्जाग्रति काल के कलाकारों और जे० प्रेलूकर ने रूसी प्रजातंत्रवादियों और साम्यवादियों की वीरता का वर्णन किया है।

"समय की बालू" पर छोड़े हुए महान् स्त्री पुरुषों के "पदचिन्हों" के इस जादू भरे अन्वेषण में हमारे मार्ग प्रदर्शक और नेता ऐतिहासिक जीवन चरित्र हैं। यह पदचिन्ह अस्थायी नहीं, वरन् सोने के पत्तर पर प्लैटिनम नामकी धातु द्वारा लिखे हुए अक्षरों के समान अमिट हैं। हमको कारलाइल की इस प्रसिद्ध उक्ति को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, "विश्व का

इतिहास, अथवा मनुष्य के इस संसार के कार्यों का इतिहास संसार में कार्य करने वाले महान् पुरुषों के इतिहास का आधार है।" आर० डब्ल्यू० एमर्सन भी यह लिखकर अत्यधिक वीर पूजा के धोखे में पड़ गया था कि "जीवनचरित्र के अतिरिक्त अन्य ठीक इतिहास कोई नहीं है।" वी० कज़िन ने तो यहां तक कह डाला कि महान् आत्माओं की ग़लतियों का इतिहास में उल्लेख नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनके गुण और कार्य उनके पापों का प्रायश्चित्त कर देते हैं। ई० रेनन का प्रजातंत्रविरोधी असंगत दृष्टिकोण यह है कि इतिहास का उद्देश्य महान् आत्माओं को उपस्थित करना है। एल० कोसुथ यह कह कर उन महान् आत्माओं को ही समाज मानता है कि "राष्ट्रीयता राष्ट्र के महान् आत्माओं का सामूहिक व्यक्तित्व है।" किन्तु मैं कहता हूँ कि इतिहास अपने २ कार्य क्षेत्र में कार्य तथा परिश्रम करने वाले सभी साधारण स्त्री पुरुषों से उस प्रकार बनाया जाता है, जिस प्रकार मूंगे की चट्टान को चुपचाप परिश्रम करने वाले असंख्य छोटे २ मूंगे के कीड़े बनाते हैं। विलियम मारिस ने ठीक ही कहा है—

"कुछ लोगों ने जो विद्वान, बुद्धिमान् और
बलवान थे प्रसिद्धि, ख्याति और सम्मान पाया;
उनमें से कुछ निर्धन, अशिक्षित, निर्बल, दुःखी और
ग़लती करने वाले थे उनके नाम को कोई नहीं जानता;
हमारे अंदर नाम और बिना नाम वाले सभी रहते हैं;
उनमें से प्रत्येक हमारा नेतृत्व करता है,

उनके सहन किये हुए प्रत्येक कष्ट का अभिप्राय है,
उनका प्रत्येक दुःख हमारे दुःखों को भुलाने के लिये है।"

इस प्रकार सभी उत्सुक, फुर्तीले, अग्रदर्शी स्त्री पुरुषों के द्वारा–जो गत पांच सहस्र वर्षों अथवा इससे भी पूर्व थे अथवा मर चुके हैं—हमको उन्नति का उपहार मिला है। किन्तु जीवनचरित्र लेखक उनमें से दूसरोंकी अपेक्षा अधिक बलिदान करने वालोंको चुन कर पृथक् रख देते हैं। उन्होंने अपने उच्च आचरण की शक्ति और बुद्धि से जनता को मार्गप्रदर्शन करके संगठित किया था। संगठन करने का नाम ही नेतापना है, और सच्चे नेता को ही जनता का प्रतिनिधि समझा जाता है। जैसा मिकीविज्ञ (Mickiewicz) का कहना है, "मैं दस लाख रूप हूं।" जिस प्रकार एक यात्री सभी छोटी चोटियों और पहाड़ियों को देख कर अत्यंत प्रसन्न होने के स्थान में गौरीशंकर शृंग, कंचनचंगा और ऐकनकौग्वा को देख कर ही अत्यंत प्रसन्न होता है उसी प्रकार जीवनचरित्रों का लेखक भी भिन्न २ आन्दोलनों में जनता के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ा कर कार्य करने वाले नेताओं के घटनापूर्ण और रोचक जीवनचरित्रों से अपनी सामग्री प्राप्त करता है। एक राजदूत अपने राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, और एक प्रतिनिधि एक समाज की ओर से बोलता है; उसी प्रकार एक धर्मप्रचारक, वीर अथवा शहीद ऐतिहासिक सिद्धान्त के सभी प्रतिनिधियों का योग्य प्रतिनिधि समझा जाता है। हम उसका सम्मान करते हैं, उसकी प्रशंसा करने में हम उसके उद्योग और बलिदान की

सराहना करते हैं। इस रूप में जीवनचरित्र हमारे लिये नैतिक औषधि का वर्ष भर रहने वाला सोता है। हम पवित्रात्मा की तात्कालिक प्रेरणा से गुणों की शिक्षा लेते हैं, न कि शुष्क धर्मोपदेशों द्वारा। जीवनचरित्र हमारे विचार के लिये प्राचीनकाल के मनुष्य से लेकर वर्तमान सभ्य नागरिक तक के क्रम से विकसित होने वाले सभी उन्नतिशील आन्दोलनों के उच्च से उच्च विचारों, शब्दों और कार्यों को उपस्थित करते हैं। इस प्रकार इतिहास हमको अनेक युगों में मनुष्यजाति के मन्दिर की वेदी पर जलने वाली उत्साह की अग्नि को बनाये रखने वाले सच्चे जोरोस्ट्रिएन उत्तराधिकार के तपस्वियों और महात्माओं से संबंध में बांधता है। उसी नित्य अग्नि से उष्ण हो कर हम भी अपनी आत्माओं को संसार के प्रति उदासीनता और अहमत्व के हिममय नरक में नष्ट होने से बचाते हैं। अतएव इतिहास पढ़ते समय मैरी ऐन एवन्स (उपनाम जार्ज ईलियट) के साथ यह कह उठो–

"क्या मैं उन अमर मृतात्माओं की अदृश्य भजनमण्डली में सम्मिलित हो सकता हूं, जो हमारे मस्तिष्क में अपनी उत्तम उपस्थिति से फिर जीवित हो गये हैं।"

अध्ययन की ठीक विधि

इतिहास के अध्ययन की ठीक विधि अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इतिहास एक तेज़ उस्तरे के समान है। यदि आप उसको होशियारी और फुर्ती से चलावेंगे तो यह आपको साफ और आकर्षक दिखलाई देने में सहायता देगा। किन्तु उससे आप

अपने चर्म और यहां तक कि गले तक को भी काट सकते हो। सभी धर्म, राजनैतिक दल और राष्ट्र अपने बच्चों को धार्मिक हठ में पक्षपाती अथवा कठोर देश भक्त बनाने के लिये इतिहास की अशुद्ध विधि से शिक्षा देकर उसको बिगाड़ते और उसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। व्यक्तित्व अथवा आचरण को बनाने अथवा बिगाड़ने की इतिहास ऐसी भयंकर शक्ति है कि वह अपने उपस्थित किये जाने के ढंग के अनुसार उपहार भी बन सकता है और अभिशाप भी। धुंधली दृष्टि वाले अथवा स्वार्थी इतिहास बेचने वालों से सावधान रहो। संसार के अधिकांश कष्टों को उत्पन्न करने का दोष उन्हीं के सिर रहता है।

इतिहास का सार्वभौम दृष्टिकोण

(१) इतिहास को सभ्यता के पूर्ण रूप के मूल तथा विकास का लेखा समझना चाहिये। इतिहास के अध्ययन में समस्त मनुष्य जाति को एक मान कर आरम्भ करो। इतिहास के विषय के लिये समस्त मनुष्य जाति को ही लेना चाहिये, इसमें न्यूनता बिल्कुल न हो। इतिहास या तो विश्व की कहानी है, अथवा वह कुछ नहीं है। यदि वह तंग विचार वाले देशभक्तों अथवा सम्प्रदायवादियों के द्वारा लिखा गया है अथवा उसकी व्याख्या की गई है तो वह "शब्दों और पागलपन से भरी हुई, कुछ प्रगट न करने वाली सिड़ी की कही हुई कहानी है।" आपको इस बात को स्पष्टरूप से समझ लेना चाहिये कि इतिहास का ठीक विषय एक और अविभक्त मनुष्य जाति है। मनुष्य जाति और

इतिहास स्याम देश के वह दम्पति हैं जो कभी प्रथक् नहीं होते।

सार्वभौम इतिहास का स्वरूप

(२) आपको ऐसे भयंकर मार्गप्रदर्शकों का कभी अनुसरण नहीं करना चाहिये, जो यह समझते हों कि इतिहास का अर्थ केवल यूरोप के इतिहास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह एक बड़ा विचित्र और दुःखपूर्ण अनुभव है कि किस प्रकार कुछ उच्च कोटि की शिक्षा पाए हुए विद्वान् अभी तक भी अपने आपको केवल यूरोप के इतिहास में ही सीमित रखते हैं और "पश्चिमीय ज्ञान" तथा "पश्चिमीय वीरों" आदि के सम्बन्ध में ही शिक्षाप्रद पुस्तकें लिखते हैं। यूरोप के इतिहास को तो "प्राचीन", "मध्यकालीन" और "वर्तमान" खण्डों में विभक्त किया जा सकता है, किन्तु विश्व के इतिहास के विषय में क्या होगा ? कुछ लेखक "विश्व का इतिहास" लिखने का दावा करते हैं; किन्तु प्राचीन चीन, जापान, ईरान और भारतवर्ष के विषय में कुछ पृष्ठ लिखकर ही वह फिर यूरोप के कथानक का विस्तार से वर्णन करने लगते हैं, जैसे कि उस प्राचीन समय के पश्चात् एशिया में कोई महत्त्वपूर्ण घटना हुई ही नहीं और वहां के सब निवासी दो सहस्र वर्ष तक सोते ही रहे। इस प्रकार यूरोप को ही समस्त भूमण्डल समझ कर एक भाग को ही गलती से सम्पूर्ण रूप दिया जाता है। यह विचित्र भूल मूर्खता, आलस्य और अज्ञानवश की जाती है। इसके अतिरिक्त उसके लिये अन्य कोई बहाना नहीं किया जा सकता। इस प्रकार इतिहास को विपरीत रूप में

उपस्थित किया जाकर हास्य का विषय बनाया जाता है। मैं चाहता हूँ कि मैं इस प्रकार के प्रत्येक ऐतिहासिक को एक पहाड़ी पर ले जाकर उसको उस निम्नलिखित वाक्य का स्मरण कराऊँ जो माइकेल ने आदम के आश्चर्य करने वाले नेत्र के सम्बन्ध में उससे कहा था–

"उसका नेत्र उस स्थान पर खड़े हुए ही
प्राचीन अथवा आधुनिक ख्याति के नगर,
संसार की सबसे अधिक शक्तिशाली राजधानियों—जिनमें
कैमबलू को स्थिर दीवारों से लगाकर कैथिअन शाम और
आक्सूस नदी के पास समरकंद में तैमूर के राजसिंहासन तक,
सिनाई बादशाहों के पेकिन से
महान् मुग़लों के आगरा और लाहौर तक
फिर वहां से लगाकर सुनहरे चरसोनीज़ तक अथवा जहां
एकबैटन में ईरानी लोग बैठा करते थे और वहां से लगाकर
इस्पहान तक शासन कर सकता था।"

राष्ट्रीय इतिहास इतिहास नहीं है

(३) अनेक विद्वानों ने इतिहास को निर्दयता से काटकर उसको 'राष्ट्रीय' चिथड़ों में बांट दिया है और इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, ऐलबेनिया, आरमीनिया, ईराक़ आदि के इतिहास पर विद्वत्ता पूर्ण मोटी २ पुस्तकें लिखी हैं। वह इतिहास के निर्दय क़साई हैं। दुर्भाग्यवश मनुष्यजाति इस समय अनेक राष्ट्रों में बंट गई है; किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यह अस्थायी सम्प्रदायवाद इतिहास के राज्य पर भी आक्रमण करे। गत

शताब्दी में कैंट के 'विश्व के इतिहास' के विचार को भुला दिया गया। दीवाना राष्ट्रीयवाद पवित्र इतिहास को अपवित्र और प्रथक् २ भागों में करने का उद्योग करता है; साथ ही उसके टूटे फूटे तथा कटे छटे अंगों से युयुत्सु राष्ट्रों के रक्त रंजित प्रासादों और स्मरणचिन्हों को संवारने, सजाने और काम लेने का उद्योग करता है। राष्ट्रों की सरकार अपने नवयुवक नागरिकों के मस्तिष्कों को उनकी कोमल आयु में ही "देशभक्ति" के जहरीले मवाद से विषाक्त कर देती हैं और इस प्रकार इतिहास भी बेपरवाही से कुचला जाकर उतने ही टुकड़ों में बंट जाता है, जितनी संख्या संसार के राष्ट्रों की है। किन्तु वैज्ञानिक ऐतिहासिक क्या कहता है? वह क्रोध से अपने दांत पीसता और चिल्लाकर कहता है। "तुमने इतिहास की हत्या की है, अतएव तुम अब इसके पश्चात् शान्ति से न सो सकोगे। इतिहास की प्रथम हत्या करने के कारण तुमको यह शाप होगा कि यादवों के घराने के समान तुम एक दूसरे को नष्ट कर दोगे।"

यदि इतिहास को भिन्न २ युगों की राजनीतिक उथल पुथल के उतार चढ़ाव के अनुकूल "राष्ट्रीय" भागों में विभक्त कर दिया जावेगा तो उसको वास्तव में समझा ही नहीं जा सकता। भूतकाल के प्रबल आन्दोलन उन बड़ी २ नदियों के समान हैं, जो अनेक देशों में से बहती हुई किसी देश की राष्ट्रीयताका ध्यान नहीं करतीं। राइन, डैन्यूब और गंगा नदी पूर्णतया अराष्ट्रीय (अन्तर्राष्ट्रीय) प्रवाह हैं। सभी राष्ट्र दूसरे देशों से लाए हुए फलों, शाकों, अन्न, विचारों

और संस्थाओं से बढ़ते तथा पलते हैं। किसी राष्ट्र ने अभी तक केवल अपने ही बल पर बिना दूसरे की शक्ति से सहायता लिये हुए उन्नति नहीं की। जैसा कि स्वेडेन का कवि टेगनट कहता है "आरंभ में केवल बर्बरता ही स्वदेशी थी।" एक "राष्ट्रीय" इतिहासिज्ञ अपने प्यारे देश में अचानक प्रगट होने वाले धार्मिक, राजनीतिक और ज्ञान सम्बन्धी आन्दोलनों के आरंभ की व्याख्या नहीं कर सकता। उसका वर्णन सदा ही अपूर्ण, असन्तोषजनक और साथ ही तर्करहित और अवैज्ञानिक होता है। केवल जर्मनी के इतिहास में ही परिश्रम करने वाला कार्ल लैम्प्रेट (Karl Lamprecht) भी यह स्वीकार करता है कि "केवल एक परिवर्तन अथवा एक पदार्थ का पूर्ण ऐतिहासिक विचार --अपनी ऐतिहासिक विशेषता--सहित सार्वजनिक सिद्धान्तों अथवा उच्च कोटि के विश्व इतिहास के तत्त्वों से ही प्राप्त किया जाता सकता है।"

इस प्रकार ईसाइयत, वीरता, फ्रांसीसी सभ्यता, सुधार, धर्म संशोधन और पुनर्जाग्रति के सभी आन्दोलन इंगलैण्ड में बाहिर से ही आए। दूसरी जातियों के इन उपहारों के बिना इंगलैण्ड क्या होता ? किन्तु यदि हम इंगलैण्ड के इतिहास के वर्तमान रूप को पढ़ें तो उसमें सेंट आगस्टाइन और महन्त लोग कहीं बाहिर से आये हुए नहीं जान पड़ते; सुधार का मार्टिन लूथर से कुछ भी सम्बन्ध दिखलाई नहीं देता। वास्तव में उसके अध्ययन से पाठक की कल्पना में लूथर और कैल्विन जैसे धर्म सुधारकों

का स्थान हेनरी अष्टम और एलीज़ैबेथ जैसे राजनीतिज्ञ ले लेते हैं। अमरीका के इतिहासज्ञ हमको अपने यात्री--पूर्वजों के विषय में बहुत कुछ बतलाते हैं, किन्तु अपने उत्पन्न करने वाले कैल्विन के विषय में बहुत कम बतलाते हैं। साथ ही इटली के प्राचीन कवियों के वर्णन के बिना स्पेंसर और मिल्टन का पता भी चलना कठिन था, क्योंकि इंगलैण्ड में उत्पन्न न होने के कारण उनका वर्णन वहां के राष्ट्रीय ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं किया गया। उसी प्रकार जापान के 'राष्ट्रीय इतिहासज्ञ लोग बौद्ध धर्म, अज्ञेयवाद, ईसाई धर्म, प्रजातंत्रवाद, व्यापारवाद, और समाजवाद के उस देश में प्रथम वार आने का कोई वर्णन नहीं करते। इस प्रकार का लेखक फ्रांस के उस भूगोलवेत्ता के समान है, जिसने रोन नदी को फ्रांस राज्य के अन्दर लायन्स (Lyons) से लगाकर मार्सेल्ज़ (Marseilles) तक ही देखकर स्वीज़रलैण्ड की हिममयी-पहाड़ियों में उसके उद्गम स्थान के प्रतापी दृश्य को देखने के लिये जाने से मना कर दिया था। इस प्रकार का भूगोलवेत्ता एक प्रशंसनीय 'राष्ट्रीय' व्यक्ति हो सकता है; किन्तु वैज्ञानिक नहीं हो सकता। वास्तव में इतिहास को इस प्रकार प्रथक् २ 'राष्ट्रीय' विभागों में बांटना बहुत बुरा, उपहास योग्य, और पक्षपात का ऐसा कार्य है, जिसके बचाव के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। इतिहास, जो हमारे बुद्धि के नेत्र को कला तथा विज्ञान की सर्वोत्तम कृतियों से सजे हुए राज प्रासाद के रूप में दिखलाई देना चाहिये था, अब हमारी कल्पना में शिरों का शिकार करने

वालों के विजय चिन्ह रूप मनुष्य शिरों और अस्थियों से सजी हुई तुच्छ और आरंभिक झोंपड़ियों के भद्दे समूह के समान दिखलाई देता है। ऐतिहासिकों को वीरतापूर्ण देशभक्ति के जुवे को उठाने के लिये विवश किया गया है। यह उच्च समय है, इस समय उनको साहसपूर्वक अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर देनी चाहिये। उनको अभिमानी राष्ट्रीयवाद के विजयी जुलूस में नम्रता से कान दबाकर उस प्रकार चलने से इंकार कर देना चाहिये, जिस प्रकार जूलियस सीज़र के पीछे विजित बादशाह चला करते थे। उसको जोरदार शब्दों में स्पष्ट रूप से कह देना चाहिये कि, हम केवल मनुष्य जाति और सत्य के सेवक हैं, हम तुम्हारे अभिमान और युद्ध पिपासा को प्रतापी बनाने के लिये इतिहास का अपमान नहीं कर सकते। हम आचार शास्त्र के वेत्ता और वैज्ञानिक हैं, चापलूस चुग़लख़ोर और नरसिंहा बजाने वाले नहीं हैं।"

"राष्ट्रीय" इतिहास भी हमारे ध्यान को युद्धों और अनेक छोटी २ बातों की ओर आकर्षित करता है। विश्व इतिहास का मूलमंत्र मानव सभ्यता का क्रमिक विकास है। किन्तु देशभक्त इतिहासज्ञ लोग, जो राष्ट्रीयवाद के किराये पर लिये हुए ठग हैं, रक्त रंजित युद्धों और छोटे २ कार्यों को अनुचित महत्त्व देकर हमको मार्ग भ्रष्ट करते हैं। यहूदियों की मिश्र से यात्रा, इंगलैण्ड का इगबर्ट (Egbert) की आधीनता में एक हो जाना, स्वेडेन और डेनमार्क का युद्ध, जर्मनी और फ्रांस के युद्ध, नार्वे

का स्वेडेन और स्पेन का पुर्तगाल से प्रथक् होना, ब्रूस और वेलेस के स्थानीय कार्य आदि इसी प्रकार के छोटे २ कार्य हैं। इस प्रकार अनुपात की सारी की सारी बुद्धि ही मलीन हो जाती है, और इतिहास का रूप राष्ट्रों के काटे हुए 'देशभक्तों' के रक्त से 'दान्त और पंजों में लाल' दिखलाई देता है। इस प्रकार की मनोवृत्ति को उत्पन्न करना वास्तविक इतिहास नहीं है। यह सदा ही दयनीय दिल्लगी का चित्र और सार्वजनिक हत्या की लज्जाजनक गंदी कहानी है।

इसी लिये मैं आपको चेतावनी देता हूं कि, "राष्ट्रीय ऐतिहासिकों से सावधान रहो।" इतिहास वास्तव में अनेक मुखों वाला चमकीला हीरा है। यदि इसके अनेक टुकड़े कर दिये जावें तो इसका मूल्य कम हो जाता है। संसार के इतिहास की विशेषता मौलिक एकता है। अतएव पहिले राष्ट्रीय इतिहास और फिर विश्व इतिहास पढ़ाने की प्रचलित प्रणाली को बन्द कर देना चाहिये।

नये संवत् की आवश्यकता

यदि इतिहास का अध्ययन वैज्ञानिक और विश्वबन्धुत्व की भावना में किया जावे तो उसकी तारीखों और वर्षों की गणना के लिये एक नये संवत् की आवश्यकता होगी। अभी तक अनेक राष्ट्रीय संवत् चल चुके हैं—उदाहरणार्थ, ओलिमपिअड लोगों का हेलेनिक संवत्, भारतवर्ष का विक्रम संवत्, यहूदियों का संवत् आदि। भिन्न २ धर्मों में भी अनेक धार्मिक संवत्

प्रचलित हैं। मुसलमानों का हिजरी सन् मुहम्मद के मक्का से भागने की स्मृति है, और ईसाइयों का सन् ईसा मसीह के जन्म दिन का सूचक है। वैज्ञानिक और सार्वभौम इतिहास इस प्रकार के संवतों को स्वीकार नहीं कर सकता। हम यह नहीं मान सकते कि ईसामसीह की उत्पत्ति संसार के इतिहास की अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना थी। हम ईसाई या मुसलमान नहीं हैं। अतएव हम इस प्रकार उन २ धर्मों के प्रति श्रद्धा प्रगट नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के संवत् अत्यंत असुविधाजनक हैं। हमको लिखे हुए इतिहास के लिये इन संवतों से भी बहुत पीछे को जाना पड़ता है। यह अस्वाभाविक पद्धति अत्यंत तर्कशून्य और गड़बड़ी डालने वाली है, इतिहास को (जैसा कि वह पुरातत्त्व से प्रथक् है) एक ऐसे ऐतिहासिक संवत् की आवश्यकता है, जो हमारे मस्तिष्क को मिश्र और बैबीलोनिया की सभ्यता के ऐतिहासिक समय तक ले जा सके। वह सामन्यतया ऐतिहासिक समय के अपने योग्य हो। अपने वर्तमान उद्देश्य के लिये, मैं परीक्षा के रूप में ईसा पूर्व पांच सहस्त्र वर्ष को ऐतिहासिक संवत् का आरंभिक समय निश्चित करता हूं। किन्तु यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न प्रसिद्ध ऐतिहासिकों की कांग्रेस द्वारा तय किया जाना चाहिये। इस सन् को इतिहास का सन् कहकर ईस्वी के ए० डी० के स्थान में ए० एच० (Anna Historiae) से प्रगट करना चाहिये।

भूतकालीन राजनीति ही इतिहास नहीं है

(४) रांके, (Ranke), ड्रायसेन (Droysen),

मौरेनब्रेचर (Maurenbrecher), और फ्रीमैन (Freeman) जैसे कुछ ऐतिहासिकों का सिद्धान्त है कि "भूतकालीन राजनीति का नाम ही इतिहास है।" उनका कहना है कि इतिहास को केवल राज्य के विकास की ही शिक्षा देनी चाहिये; दर्शनशास्त्र, कला, साहित्य, विज्ञान, व्यापार, उद्योग धन्दों आदि सभ्यता के सभी अंगों के विकास की नहीं। इस सिद्धान्त में 'इतिहास' नाम में केवल युद्धों, सन्धियों, शासनविधियों, नियमों, क्रान्तियों तथा अन्य राजनीतिक कार्यों के वर्णन का ही अन्तर्भाव किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रणालियों तथा आन्दोलनों की—उनके मूल 'इतिहास' से बाहिर होने के कारण—उपेक्षा की जाती है। इस प्रकार जे० आर० सीली का कहना है। "ऐतिहासिक राजनीतिज्ञ है। राजनीतिक दल तथा अंग और राज्य ही उसका अध्ययन है। ······राजनीति विज्ञान पर व्याख्यान देना इतिहास पर व्याख्यान देना है।" यह सिद्धान्त अयोग्य और भटकाने वाला है, क्योंकि यह मनुष्य कार्य के एक अंग पर आवश्यकता से अधिक बल देता है। राज्य अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु केवल वही महत्त्वपूर्ण नहीं है। किसी २ जोखम के समय राजनीतिक घटनाएं ही इतिहास में निर्णायक घटना होती हैं, उस समय उन्हीं को रंगमंच का केन्द्र बनाना चाहिये। किन्तु किसी दूसरे समय धर्म, कला, साहित्य, विज्ञान अथवा अर्थशास्त्र का समाज में सार्वजनिक प्रभाव होता है। उस समय इतिहास को उसी के प्रति श्रद्धा प्रगट करनी चाहिये। पुनर्जाग्रति (Renaissance) काल में इटली की प्रतापी कला

—का ऐतिहासिक रूप में तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं और इटली के छोटे २ स्वेच्छाचारी राजाओं के उन षडयंत्रों की अपेक्षा जिनको अब भूला जा चुका है—क्षणस्थायी कार्य भी यूरोप में ईसा की तेरहवीं शताब्दी के विश्वविद्यालयों और महन्तों के कारण अधिक प्रसिद्ध है; अतएव उस शताब्दी की राजनीतिक कहानियों की किसको चिन्ता है? चीन में तांग वंश का राज्य चीन की कविता और 'कला के लिये अत्यंत प्रसिद्ध है, किन्तु वह राजनीतिक रूप में अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं था। इतिहास के लिये कौन अधिक महत्त्वपूर्ण था, ईसामसीह अथवा टाइबेरियस? बुद्ध या अजातशत्रु? डार्विन या ग्लैडस्टन? आगस्टे कोम्टे अथवा नेपोलियन तृतीय? गोएथे या वीमर का ड्यूक? यह स्पष्ट है कि किसी समय का राजनीतिक इतिहास उसके उन अनेक अत्यंत विशेषतायुक्त कार्यों का वर्णन नहीं करता, जो उसी समय पृथ्वी के दूसरे भाग में घटी हैं। यह हो सकता है कि जिस समय धर्म, शिक्षा संस्था अथवा व्यापारिक सभा नये जीवन से ओत प्रोत हो रहे हों उस समय राज्य नीरस और बनजड़ संस्था हो। उस समय राज्य अन्दर के बहुमूल्य अनाज को ढकने और उस की रक्षा करने वाले छिलके के समान कार्य करता है। लावेल ने हमको चेतावनी दी है कि "मनुष्य कोरी शासनविधियों से भी कुछ अधिक है।" इतिहास केवल राजनीति से ही बहुत कुछ अधिक है। इतिहास को केवल भूतकालिक राजनीति में ही क्यों सीमित रहना चाहिये? इतिहास केवल राजनीतिज्ञों का मनबहलाव

नहीं है। यह मनुष्य के विचारों, कार्यों, साहसों, कष्टों, अनुभवों और प्यार का लेखा है। मनुष्य केवल वोटर ही नहीं है, वह माता पिता, आजीविका कमाने वाला, कला-प्रेमी और विचारक है। उसके समस्त कार्य को जानना और उसकी सराहना करनी चाहिये।

इतिहास का सार

पहिले आपको सामान्य विश्व–इतिहास के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों को पढ़ जाना चाहिये। इसके पश्चात आपको निम्नलिखित कालों, आन्दोलनों और व्यक्तियों के विषय में विशेष विचार करना चाहिये—

(१) आरम्भिक मिश्र, आलेख्य कला (पत्थर अथवा लकड़ी पर खोदने की विद्या) और वास्तु कला (घर बनाने की विद्या)।

(२) अखनैटन; उसका जीवन चरित्र और कार्य।

(३) पर्शिया और यूनान का युद्ध।

(४) यूनानियों का प्रजातंत्रवाद और समाजवाद।

(५) थेल्स (Thales) से लगा कर लाटीनस (Plotinus) तक के ग्रन्थों का यूनानी दर्शनशास्त्र।

(६) यूनानी कला—आलेख्य कला (Sculpture) और वास्तुकला (Acrhitecture)।

(७) होमर का 'ओडोसी' (Odyssey)।

(८) यूनानी शोकान्त रचनाएं-ई सचाइलस (Aeschylus),

सोफोकिल्स (Sophocles), यूरीपाइड्स (Euripides)।

(९) ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में अलेग्जेंड्रिया के वैज्ञानिक और विद्वान्।

(१०) इबरानी पैग़म्बर (Hebrew Prophets)

(११) ईसाई सिद्धान्त का आरम्भ और विकास; उसके धर्मार्थ प्राण देने वाले और देवदूत।

(१२) ज़ोरोस्टर और उसके धर्म की उन्नति।

(१३) भारत में बुद्ध और बौद्ध धर्म। अशोक, जैन धर्म।

(१४) नागार्जुन और महायान। गान्धार की आलेख्य कला।

(१५) कुंग-फू-त्जू (कन्फ्यूशियस), मेनशियस, और उनका आन्दोलन। लाओ-त्से और ताओवाद।

(१६) रोम का प्राचीन इतिहास। प्रजातंत्र और जनतंत्र शासन पद्धति।

(१७) रोम के वर्ग युद्ध।

(१८) जस्टीनियन का राज्य, रोम का क़ानून, बाइज़न-टाइन कला।

(१९) मिश्र में स्मृति चिन्हों का विकास, सेंट बेसिल और सेंट बेनीडिक्ट के समाज।

(२०) यूरोप में ईसाइयत का विस्तार। आयर्लैंण्ड के साधु और विद्वान्।

(२१) सेंट फ्रांसिस और उसका समाज, अध्यात्मिक सन्त।

(२२) मुहम्मद और आरम्भिक इस्लाम।

(२३) इस्लाम का प्रचार; मुस्लिम दर्शनशास्त्र और विज्ञान (नौवीं से बारहवीं शताब्दी तक)

(२४) सूफ़ीवाद और उसके महात्मा।

(२५) साधुपन्थ

(२६) ईरान की उपदेशप्रद कविताएं।

(२७) चीन में तांग वंश। बौद्ध धर्म की उन्नति। चीन की चित्रकारी।

(२८) भारत में गुप्त साम्राज्य। भारतीय साहित्य और कला। रामायण।

(२९) पर्शिया का सैसानियन काल।

(३०) बाइज़नटाइन साम्राज्य में पुनर्जाग्रति। (नौवीं शताब्दी ईस्वी)। फोटियस और ऐरेथस।

(३१) यूरोप में आरम्भिक पुनर्जाग्रति (दूसरी और तीसरी शताब्दी)

(३२) लम्बार्डी के ग्रामसंघों और सम्राट् में युद्ध।

(३३) इटली और यूरोप में महान् पुनर्जाग्रति (चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी)। नये स्कूल और कालेज। फ़्लोरेंस में प्रजातन्त्र। इटली की चित्रकारी। आलेख्य कला और वास्तु कला।

(३४) उत्तरी भारत के वैष्णव साधु। सुधारक। वर्तमान हिन्दू सम्प्रदाय। तामिल साधु।

(३५) चीन और जापान के बौद्ध धर्म के नेता, उनके

सिद्धान्त और सम्प्रदाय। जापानी आलेख्य कला (Sculpture)।

(३६) चीन में सूंग दार्शिनिक।

(३७) रास के मार्ग (Cape route) और अमरीका का अन्वेषण। कोलम्बस।

(३८) प्रोटेस्टेंटों का सुधार। लूथर, काल्विन, ज़्विग्ली, ऐनैबैपटिस्ट, पूरीटन, सोसीनियन, इंगलैण्ड और अमरीका के नान कन्फर्मिस्ट लोग। (Nonconformists) गुस्टैवस ऐडालफस, डच लोगों का स्वतन्त्रता का युद्ध।

(३९) भारत में मुग़लों के विरुद्ध स्वतन्त्रता का युद्ध। मुग़ल और राजपूत चित्रकारी। उत्तरी भारत में मुग़ल वास्तु कला। दक्षिण भारत में हिन्दू वास्तु कला (Architecture)।

(४०) यूरोप और अमरीका में सन् १४०० ई० के पश्चात् विज्ञान की उन्नति।

(४१) बैच से लेकर वैगनर तक का जर्मन संगीत।

(४२) वर्तमान इंगलिश कविता। फ्रांस की शोकान्त तथा हास्य रस की रचनाएं। जर्मन नाटक, कविता और छोटी २ कहानियां। रूसी उपन्यास और नाटक, फ्रांस और इंगलैण्ड के देहाती चित्रकार।

(४३) वर्तमान प्रजातन्त्रवाद। इंगलैण्ड, अमेरिका, और फ्रांस की क्रान्तियां। यूरोप और दक्षिणी अमरीका के राष्ट्रीय आन्दोलन। पार्लियामेंटें। दासप्रथा का अन्त।

(४४) यूरोप में समाजवाद, रूस की राज्यक्रान्ति,

पैराग्वे में ईसाई लोग। उत्तरी अमेरिका के साम्यवादी उपनिवेश।

(४५) वर्तमान धर्म और दर्शनशास्त्र। निश्चयवाद। स्पिनोज़ा, स्पेंसर। यूरोप और अमेरिका में विचार स्वातंत्र्य और आचार सम्बन्धी आन्दोलन। थियोसोफी। ब्रह्म समाज। बहाईवाद। जापान में ओमोटो।

(४६) शान्ति का आन्दोलन, एस्पेरैन्टो भाषा, राष्ट्रसंघ।

इतिहास में यह काल और आन्दोलन वास्तव में अत्यन्त शिक्षाप्रद हैं। यदि आप अपने व्यक्तिगत विकास के लिये इतिहास का इससे भी अधिक सार या सत्त्व निकालना चाहते हों तो आप इससे और आगे जाकर निम्नलिखित संक्षिप्त सूची के आधार पर अध्ययन कर सकते हैं:—

(१) ओडीसी (Odyssey)। यूनान की शोकान्त रचनाएं। यूनान का दर्शनशास्त्र। यूनानी कला (आलेख्य कला और वास्तु कला)

(२) राम, कृष्ण, ज़ोरोस्टर, कनफ्यूसियस, मेनसियस, लाओत्से, महावीर, बुद्ध, मणि, मुहम्मद, ह्वान–च्वाँग, रबिया, नानक, बोधि धर्म, ची–कै, लूथर, कैल्विन, फाक्स, बैब, बाह उल्ला, होनेन, शींरान, निशीरेन, और वेसले की जीवनियां।

(३) प्राचीन ईसाइयत का इतिहास।

(४) सेंट बेनीडिक्ट का समाज और उसके ग्रन्थ।

(५) पेट्रार्च, एरस्मस तथा पुनर्जाग्रति काल (Renaissance) के दूसरे विद्वानों की जीवनियां। विटोरिनो तथा

अन्य शिक्षा विशारद।

(६) चीन और इटली की चित्रकारियां। जापान, गांधार और इटली की आलेख्य कला। गोथ लोगों के गिर्जे। स्पेन और भारत में इस्लामी वास्तु कला।

(७) जर्मन संगीत।

(८) इंगलिश कविता। शेक्सपीयर। फ्रांस के हास्यरस के नाटक। जर्मन कविता। गोएथे। रूसी उपन्यास। टाल्सटाय और डास्टाईवस्की।

(९) वर्तमान प्रजातंत्र।

(१०) वर्तमान शिक्षा तथा विज्ञान का इतिहास।

(११) वर्तमान समाजवाद और साम्यवाद।

(१२) वर्तमान दर्शनशास्त्र। बुद्धिवाद (Rationalism)। निश्चयवाद, और विचार स्वातन्त्र्य।

(१३) वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीयता और राष्ट्रसंघ।

इतिहास की कुछ शिक्षाएं

यदि आप इस प्रकार इतिहास का अध्ययन करेंगे तो आपको कुछ आवश्यक और हितकारी शिक्षाएं मिलेंगी।

(१) आप गोएथे के समान पूर्ण विश्वास के साथ सार्वभौम विश्वबन्धुत्व (Cosmopolitan) धर्म के अनुयायी बन जाओगे। गोएथे कहा करता था, "मनुष्यजाति सभी राष्ट्रों से ऊपर है।" आपके मस्तिष्क में मनुष्य जाति की एकता सूर्य की धूप के समान चमकने लगेगी, और वह राष्ट्रीयता तथा

जातीय अभिमान जैसी विनाशकारी महामारियों को उत्पन्न करने वाले घातक कीटाणुओं (Microbes) को नष्ट कर देगी। कैंट ने हमको शिक्षा दी है कि विश्व के इतिहास से हम मनुष्य जाति की एकता का अनुभव करने योग्य बनें। टेनीसन ने आशा प्रगट की है कि इतिहास "मनुष्य की पार्लियामेन्ट और संसार के संघ शासन" में पूर्णता को प्राप्त होगा। वह आपको बतलाता है कि किस प्रकार सभी राष्ट्र और जातियों ने यथाशक्ति अत्यंत परिश्रम करके प्रकृति पर विजय प्राप्त करने, बुराई को दूर करने और समाज तथा उसके व्यक्तियों को उन्नत करने का यत्न किया है। इतिहास सभी जातियों और राष्ट्रों की पारस्परिक आधीनता को भी सिद्ध करता है। यूनानियों ने बहुत कुछ मिश्र वालों से सीखा, और रोमनों ने यूनानियों से सीखा, चीनियों और हिंदुओं ने एक दूसरे से सीखा, मुसलमान भी यूरोप के शिक्षक बनने से पूर्व यूनान और भारत के शिष्य थे। वर्तमान यूरोपवासी यूनान, रोम और इस्लाम के अत्यंत अधिक ऋणी हैं। हम पुनर्जाग्रति के लिये इटली के, धर्म संशोधन के लिये जर्मनी के, राज्यक्रान्ति और निश्चयवाद के लिये फ्रांस के, और इसी प्रकार अन्य राष्ट्रों के ऋणी हैं। प्राचीन काल में रक्त सम्मिश्रण से भी जातियों और राष्ट्रों का निर्माण हुआ है। भारतवर्ष में आर्य लोग और यहां के मूल निवासी मिल गये, इटली में एटुरुस्कन और रोमन लोग, स्पेन में अरब और स्पेन वासी, इंगलैण्ड में केल्ट और ट्यूटोन लोग, प्रशा में स्लैव और ट्यूटोन लोग, और ब्रैज़िल

में यूरोपियन तथा अमरीकन लोग मिल गये। इसी प्रकार अनेक स्थानों में रक्त सम्मिश्रण हुआ। ऐतिहासिक टेरेंस के साथ बड़ी प्रसन्नता से गाता है, "मैं एक मनुष्य हूँ। और मनुष्य सम्बन्धी कोई विपरीत बात मेरे अंदर नहीं है।"

इस प्रकार संसार का इतिहास आपके अंदर से अन्तर्दृष्टि की कमी के रोग को—जिससे कुछ तिर्छा देखने वाले देशभक्त और "जातियों के दर्शनशास्त्री" पीड़ित हैं—दूर कर देगा। वह मनुष्यजाति के केवल एक भाग को ही देख सकते हैं, सम्पूर्ण को नहीं। वह केवल एक छोटे से राष्ट्र, अथवा कुछ राष्ट्रों के समूह अथवा एक जाति की ही प्रशंसा के गीत गाते हैं। वह यह प्रमाणित करने के लिये कि एक विशेष राष्ट्र अन्य सब राष्ट्रों के ऊपर है अथवा होगा, अथवा एक विशेष राष्ट्र अथवा जाति ने सभ्यता की उन्नति के लिये अन्य राष्ट्रों अथवा जातियों की अपेक्षा कहीं अधिक कार्य किया है—अनेक अतिशयोक्तियों तथा मिथ्या हेतुओं से कार्य लिया करते हैं। उनमें से कुछ तो एक राष्ट्र अथवा जाति का शिक्षा तथा सफलता पर एकाधिपत्य का ही दावा करते हैं। आत्मा के रोगों का निदान करने पर इस प्रकार के अनेक बड़े २ बेढंगे रोगों का पता चलता है। "राष्ट्र की पूजा करने वाले" और "जाति के पीछे पागल" व्यक्ति इस प्रकार के मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों के दयनीय शिकार बना करते हैं। जे० माइकेलेट ने घोषणा की थी कि "तर्कशास्त्र और इतिहास" ने उसको यह सिद्ध कर दिया है कि "उसका प्रतापी देश अब से

मनुष्यजाति की नाव का खेने वाला होगा।" उसने यह भी कहा कि इस परिणाम पर पहुँचने के लिये उस पर देशभक्ति के प्रभाव ने लेशमात्र भी काम नहीं किया। शराबी शराब पीकर सदा ही शपथ पूर्वक कहा करता है कि उसने शराब नहीं पी है। एफ० पी० जी० गुइजॉट ने लिखा है कि "फ्रांस को इस लिये विशेष सम्मान मिलना चाहिये कि उसकी सभ्यता ने अन्य देशों की सभ्यता की अपेक्षा सभ्यता के सर्व सामान्य रूप और मौलिक विचार को अधिक सच्चाई के साथ दोबारा उत्पन्न किया है।" फिचटे ने सन् १८०७ में घोषणा की थी कि शिक्षा और विज्ञान की उन्नति जर्मनी पर निर्भर करेगी। एच० एस० चैम्बरलेन का विचार है कि "ट्यूटोन" लोग चुने हुए मनुष्य होते हैं। वह कहता है, "उत्तरी यूरोप के निवासी ही विश्व इतिहास के निर्माता रहे हैं। पुनर्जाग्रति आन्दोलन के इटली के सभी महापुरुष या तो लम्बार्दी वालों, गोथ लोगों और फ्रैंक लोगों के रक्त से भरे हुए उत्तर में उत्पन्न हुये थे, अथवा जर्मनी और हेलेन (यूनान) के रक्त से भरे हुये एक दम दक्षिण में हुए थे।......हमारी वर्तमान समस्त सभ्यता और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति सब एक निश्चित जाति के मनुष्यों—ट्यूटोनिक लोगों का कार्य है।" जाति के पीछे पागल रहने वाले कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि ईसामसीह का निकास भी ट्यूटोन लोगों में से ही हुआ था। (किन्तु मूसा और कनक्यूसियस के विषय में क्या कहा जा सकता है?) दूसरे व्यक्ति "आर्य" लोगों की प्रशंसा करते हैं और सेमाइट लोगों की निंदा करते

हैं। वह इस बात को भूल गये कि मिश्र और मेसोपोटामिया के सेमाइट लोग ही वह आरंभिक वीर थे, जिनके शिष्य आर्य लोग बने। एक हिन्दू लेखक ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दू धर्म का महत्त्व' (Hindu Superiority) में भारतवर्ष के सम्बन्ध में लिखा है, "हे भारत! तू पृथ्वी पर स्वर्ग है, तू संसार को सभ्यता और धर्म का पाठ पढ़ाता है, तू नित्य, अमूर्तिक और सदा रहने वाला है।" धुंधली दृष्टि वाली देशभक्ति में ही इस प्रकार के कवित्वमय भाव उत्पन्न हुआ करते हैं। एम० एन० धल्ला का यह अस्थिर दावा है, कि "ज़ोरोस्टर के अनुयाई ईरान ने ईसा पूर्व १००० से लगाकर ईस्वी सातवीं शताब्दी तक विश्व इतिहास में असाधारण महत्त्व का उपयोग किया है।" इस प्रकार के ऐतिहासिक लोग उन प्रेमियों और पागलों के समान होते हैं, "जो आमूल कल्पना पूर्ण" होते हैं। उन्होंने अत्यन्त उत्साह से मनुष्यजाति के केवल एक भाग से प्रेम करना सीखा है। अब हम को सारी मनुष्यजाति से सहयोगियों के रूप में प्रेम करना चाहिये।

(२) मृतकों के लिये न्याय के सम्बन्ध में आप सहनशील और दयालु बन जाओगे। इतिहास सब व्यक्तियों को उनके समय और परिस्थिति की दृष्टि से जांचता है, अपने उन्नतिशील आदर्शों से नहीं। इस प्रकार सम्भवतः आप "मृतकों के सम्बन्ध में भले के अतिरिक्त और कुछ न कहना" सीख जाओगे, क्योंकि वह अपने सम्मान पर आक्रमण का उत्तर देने

नहीं आ सकते। आपको केल्विन और सर्वेंटस दोनों के ही साथ सहानुभूति होगी।

(३) आप एक उत्साही किन्तु पहचान करके काम करने वाले सुधारक बन जाओगे। इतिहास से आपको इस बात का विश्वास हो जावेगा कि प्राचीन संस्थाओं में स्थायी मूल्य वाले सब तत्त्वों की रक्षा करनी चाहिये। आपको यह भी विश्वास हो जावेगा कि प्रत्येक प्राचीन संस्था पूर्णतया बुरी नहीं है, वह भलाई और बुराई का संयोग रूप है। आपको ऐतिहासिक धर्मों और रीति रिवाजों में पालन करने तथा रक्षा करने योग्य भलाई का पता लग जावेगा। आप विचार हीन मूर्तिनाशकों के समान कार्य नहीं करोगे। साथ ही साथ आपको समय २ पर सभी संस्थाओं को पुनः संगठित करने और उनका सुधार करने की आवश्यकता प्रतीत होगी; क्योंकि "ऐसा न हो कि एक अच्छी रीति भी संसार को खराब करे।" आप उन सब संस्थाओं को निर्दयता से दमन करके उनको उसी प्रकार नष्ट कर दोगे जो अब अपनी उपयोगिता को नष्ट कर चुकी हैं; क्योंकि माली भी बाग में से सूखे वृक्षों और दूसरी महत्त्वपूर्ण पौद को हानि पहुंचाने वाले हरे वृक्षों को कभी २ निकाल देता है। सभी देशों और सभी राष्ट्रों में मानवी भावों का गला घोंटने वाले अनुचित व्यवहारों, कालविरोध, नियमोंल्लंवनों, मूर्खताओं और राक्षसी-कृत्यों को आप सहन न करोगे। आप इस बात को समझ जाओगे कि उन्नति के वास्तुशिल्पी को किसी स्थान पर आधुनिक ढंग

का सुन्दर भवन बनाने के लिये कुछ प्राचीन तथा बेढंगे मकानों को गिराना ही पड़ता है। तब आप नये संगठन का निर्माण करने के लिये प्राचीन को गिराने से भयभीत न होगे और प्राचीन प्रणाली में जो कुछ आपको अधिक उपयोगी जंचेगा उससे संबंध को न तोड़ोगे। व्हीटियर ने बड़ी बुद्धिमानी से कहा है—

"मैंने धूल के बादलों को फैलते हुए देखा,
मकान का बनाने वाला भी अधिक बड़ा दिखलाई देता था,
मैंने पुराने टूटे हुए मकानों को टूट कर,
नयों के रूप में बनते हुए देखा।
यह नया मकान बुराई का विध्वंस,
गलती और बुरे काम का नाशस्वरूप था।
किन्तु जो कुछ भी प्राचीन काल की अच्छी बात थी
वह अब भी बची हुई थी।"

(४) आपको निम्नलिखित सर्वसाधारण सिद्धान्तों के उपयुक्त होने का विश्वास हो जावेगा—

१. व्यक्तिगत स्वेच्छाचारिता का शासन विपत्ति है। कुशासन (उदाहरणार्थ, यूनान, रोम, भारत, इङ्गलैण्ड और फ्रांस) के विरुद्ध संरक्षण केवल जनतन्त्र शासन से ही मिल सकता है।

२. एक ईश्वर में विश्वास करने से असहन शीलता उत्पन्न होती है; (उदाहरणार्थ, इस्लाम और ईसाइयत)।

३. उन्नति का मूल स्रोत अधिक से अधिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है; (उदाहरणार्थ, ऐथेन्स, इङ्गलैण्ड, भारत, संयुक्त-

राज्य, फ्रांस, स्कैंडिनैविया, स्वीजरलैण्ड ।)

४. ब्रह्मचर्य के नियम के आधार पर संगठित हुई साधु संस्थाएं हानिप्रद होती हैं; (उदाहरणार्थ, कैथोलिक और बौद्ध मठ) ।

५. अल्पव्यक्तिगत शासन सदा ही अत्यन्त स्वार्थी और निर्दयतापूर्ण होता है, इससे आपस में सदा ही झगड़े बखेड़े मचे रहते हैं; (उदाहरणार्थ, रोमन लोग, फौजी नौकरी के बदले के जागीरदार (Baron) लोग, फ्रांस के मध्यश्रेणि वाले और जापानी जमींदार ।)

६. नये आन्दोलनों की सफलता के लिये अपने भोगों का त्याग और सरल जीवन अत्यन्त आवश्यक हैं; (उदाहरणार्थ, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, दयानन्द, मैज़िनी और मार्क्स)

७. किसी २ समय उन्नति के लिये आत्म बलिदान भी करना चाहिये; (उदाहरणार्थ, सेंट स्टेफन, एटीनी डॉलेट, वानिनी, फेरर, तेगबहादुर, क़ुर्रत-अल-ऐन) ।

८. आर्थिक असमानता से उन्नति न होकर स्थिरता अथवा गड़बड़ी होती है; (उदाहरणार्थ, पेरू, यूनान, फ्रांस और रूस)

९. स्थायी सेनाएं जनता की स्वतन्त्रता के लिये भयस्वरूप होती हैं; (उदाहरणार्थ, मुग़ल साम्राज्य रूस, प्रशा, और टर्की) ।

१०. वहुदेवोपासना, एकेश्वरोपासना और अध्यात्मवाद विज्ञान और उन्नति के विरोधी होते हैं ।

११. उच्च कोटि की कला का निर्माण उच्च कोटि के

सामाजिक आदर्शों से होता है, (उदाहरणार्थ, पेरीक्लीन कला, गोथिक गिर्जे, और बौद्धों की पत्थर तथा लकड़ी की आलेख्य कला)

१२. वैज्ञानिक आविष्कारों के क्रमपूर्वक प्रोत्साहन से ही प्रकृति के ऊपर अधिक से अधिक विजय प्राप्त की जा सकती है। (उदाहरणार्थ, गत शताब्दी का यूरोप)।

१३. जनता को हर्ष अथवा विषाद में उसके नेता ही डाल सकते हैं। (उदाहरणार्थ, टेमिस्टोकिल्स्, नीशियस अलेग्ज़ैन्डर, क्रामवेल, वाशिंगटन, नेपोलियन, चैथम, चार्ल्स बारहवां, बन्दा, ख़लीफ़ा उमर और लेनिन)।

१४. अल्पसंख्यक जातियां यदि सशस्त्र होकर दृढ़ चित्त हों तो जनता से नये २ धर्मों, कानूनों, और संस्थाओं को बल-पूर्वक मनवा सकती हैं; (उदाहरणार्थ, पर्शिया और कश्मीर में मुसलमान; इंगलिश प्रोटेस्टेंट लोग; बोलशेविक लोग; फासिस्ट लोग और इंका लोग)।

१५. योग्य और फुर्तीले व्यक्ति यदि व्यक्तिगत आचरण के उच्च उद्देश्यों की शिक्षा न पाए हुए हों तो जनता को जालसाज़ी अथवा शक्ति से नष्ट कर देंगे। प्रत्येक आन्दोलन—उसके उद्देश्य आरंभ में कितने भी उत्तम क्यों न हों कुछ न कुछ धोखेबाज़ों और चुग़लखोरों को भी अवश्य उत्पन्न करता है; (उदाहरणार्थ, ईसाई पादरी लोग, ट्रेड यूनियनों के अफ़सर लोग और सोशिएलिस्ट नेता)।

१६. सांम्राज्यवाद सदा ही निर्दयता और अन्याय से

मिला होता है। वह विजित और विजेता दोनों का ही पतन करा देता है; (उदाहरणार्थ, असीरिया, पर्शिया, रोम, और स्पेन)।

१७. भिन्न २ सभ्यताओं के सम्पर्क से उन्नति करने में अधिक सुविधा होती है; (उदाहरणार्थ मध्य एशिया में यूनानी, भारतीय और चीनी सभ्यता; रोमन साम्राज्य में यूनानी और इबरानी (हेब्यू) सभ्यता; ज़ोरोस्ट्रियन पर्शिया में यूनानी, रोमन और ईसाई सभ्यता; अब्बासी साम्राज्य में मुस्लिम और भारतीय सभ्यता; भारत में यूरोपियन, हिन्दू और इस्लामी सभ्यता)।

१८. कई राजनीतिक सिद्धान्तों का पिघल २ कर एक रूप ढल जाना अत्यंत अनिवार्य है; (उदाहरणार्थ इंगलैण्ड में सात मनुष्यों के साझे के राज्य की प्रथा का बंद किया जाना; इंगलैण्ड और स्काटलैण्ड की एकता; जर्मन साम्राज्य और संयुक्त राज्य अमेरिका)।

इतिहास के सिद्धान्त

आपको इतिहास के ईश्वरीय, अध्यात्मिक और सभी भयानक सिद्धान्तों को छोड़ देना चाहिये।

भाग्य और ईश्वर इतिहास का निर्माण नहीं करते

१ "इतिहास के दर्शनशास्त्र' में सेंट आगस्टाइन, ओरोसियस, टबारी, बोसुएट, बुचेज़, रैवेसन–मोलीन, केशव चन्द्रसेन, तथा अन्य व्यक्तियों ने आस्तिक सिद्धान्त को मिलाया है, जो सभी ऐतिहासिक घटनाओं और आन्दोलनों का कारण

'ईश्वर' की इच्छा और भाग्य को बतलाता है। इसी प्रकार बोसुएट (Bossuet) सम्पूर्ण इतिहास को रोमन चर्च की स्थापना के लिये मङ्गलाचरण समझता है। वह कहता है, "परमात्मा ने असीरिया और बैबीलोनिया वालों से अपने मनुष्यों को दण्ड दिलाया; ईरानियों से उसका बदला लिवाया; सिकन्दर और तत्कालिक उत्तराधिकारियों से उसकी रक्षा कराई;......और रोमनों से शाम के बादशाह के विरुद्ध उनकी स्वतंत्रता की रक्षा कराई, उसको स्वीकार न करने का बदला लिवाया, ईसामसीह को क्रॉस पर चढ़वाया और इस प्रकार ईसाई धर्म का) प्रचार कराकर उसको विजय प्रदान की।" बूचेज़ (Buchez) का कहना है कि परमात्मा ने आदम, नूह, एक अज्ञात पैग़म्बर तथा ईसामसीह को प्रथक् २ अपनी चार उक्तियों को देकर इतिहास का मार्ग प्रदर्शित किया। कारलाइल इतिहास को "ऐसा शक्तिशाली नाटक समझता है, जिसका लेखक परमात्मा है।" केशव चन्द्रसेन ने कहा है, "इतिहास परमात्मा का अत्यंत सूक्ष्म प्रकाश है। वह धार्मिक संकेतों से भरा पड़ा है।" मैथ्यू आरनोल्ड ने भी निम्नलिखित शब्दों में इसी विचार को प्रगट किया है—

"मनुष्य के इस पृथ्वी पर आने से पूर्व,
स्वर्ग में ही
परमात्मा ने उस के हाथ में पत्रों का एक बंडल दिया;
और उसको आज्ञा दी कि वह यथाशक्ति उन पत्रों के
अनुसार ही अपने भावी जीवन में कार्य किया करे,

मनुष्य ने उसकी कई बार आवृत्ति की, उसने यूनान,
रोम, इंगलैण्ड और फ्रांस का निर्माण किया। वह उन
लेखों के अनुसार ही
एक के बाद दूसरा मार्ग बनाता गया। यह परिवर्तन
सदा से हो रहा है और कभी बन्द नहीं होता।

……………………………………………

तू कहता है, कि एक दिन परमात्मा का वह शब्द उसकी वह आज्ञा उसके अपने अभिप्राय में अवश्य प्रगट होगी।"

इस प्रकार इतिहास को छेदने और बनाने का मल्लाहों का एक ऐसा विशाल तमाशा बनाया गया जिसमें "परमात्मा" ही सब डोरियों को खींचता है।

जीवात्मा भी इतिहास का निर्माता नहीं है

(२) जी० डब्ल्यू० एफ० हेगेल, वी० कज़िन, ए० फौइली, बी० क्रोस तथा अन्य विद्वानों ने अपने धुंधले और सड़े हुए अध्यात्मवाद के अनुसार इतिहास की व्याख्या की है। हेगेल का तर्कपूर्ण आदर्शवाद इतिहास के ऊपर इस प्रकार लागू किया जाता है कि वह "संसार की आत्मा को ज्ञान और उसकी आवश्यक प्रकृति स्वतन्त्रता के लिये उद्योग करने वाला, कल्पना करता है।" यह आत्मा क्रम से उत्तरोत्तर उन अनेक रूपों को धारण करता है, जिनको यह क्रम से उन्नति करता हुआ प्राप्त करता है। यह रूप ऐतिहासिक व्यक्तियों के विचित्र और स्वाभाविक

उच्च व्यक्तियों के रूप में दिखलाई देते हैं। ईरानियों में संसार की आत्मा ने कर्तृत्व की असीम स्वाभाविकता को प्राप्त किया है; यूनानियों में "व्यक्तित्व ही सौन्दर्य से चमक उठा है"; और रोमनों में "कर्तृत्वपूर्ण आन्तरिकता" है। जर्मनी का आत्मा आधुनिक संसार का आत्मा है; उसका उद्देश्य "स्वतन्त्रता का अमर्यादित आत्मनिर्णय ही एकान्त सत्य का अनुभव है।" दार्शनिक के विशाल मस्तिष्क द्वारा बनाये हुए इस अत्यंत अध्यात्मिक मकड़ी के जाले को ऐतिहासिक अन्तर्दृष्टि और नम्र परिहास की झाड़ से झाड़ देना चाहिये। वी० कज़िन विचारों के तीन अनिवार्य तत्त्वों के अनुसार इतिहास को निम्नलिखित तीन युगों में विभक्त करता है—अमर्यादित के महत्त्व का युग, मर्यादित के महत्त्व का युग और अमर्यादित तथा मर्यादित के सम्बन्ध का युग। उसकी सम्मति में चौथे युग का अस्तित्त्व असम्भव है। बी० क्रौस निम्नलिखित बेठिकाने बात को कहने का उत्तरदायी है, "स्वयं आत्मा ही इतिहास है। वह अपने प्रत्येक क्षण में इतिहास का निर्माता और साथ ही साथ समस्त पूर्ववर्ती इतिहास का परिणाम है। इस प्रकार आत्मा के अन्दर समस्त इतिहास रहता है, जो वास्तव में आत्मा के ठीक बराबर है।" ऐल्फ्रेड फौइली इतिहास की व्याख्या अपने "विचार-शक्तियों" के सिद्धान्त से करता है। इन विचार शक्तियों को ही सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण समझा जाता है। वह कहता है, "सम्भावना के तत्त्व आदर्श में ही होते हैं। इससे यह परिणाम

निकलता है कि जब विचारों में आदर्श का अस्तित्व रहता है तो वह वास्तविकता में परिणत होने के साधनों को स्वयं ढूंड निकालता है।"

अनेक ऐतिहासिक तत्त्वों की व्याख्या करने के लिये कुछ इतिहासज्ञों ने अध्यात्मिक विचारों से काम लिया है; किन्तु सरल पद्धति से भी वह कुछ अधिक नहीं समझे जा सकते। किसी राष्ट्र अथवा जाति की 'आत्मा' को बिना किसी आर्थिक, भूगोलिक, सामाजिक और व्यक्तिगत बातों के समावेश के ऐतिहासिक तत्त्वों का कारण बतलाया गया है। किन्तु इस प्रकार की व्याख्याओं से कोई सहायता नहीं मिलती। उससे केवल इतना ही पता चलता है कि एक राष्ट्र अथवा जाति ने किसी कार्य को इस लिये कर लिया कि वह उसको कर सकता था, और इस लिये नहीं किया कि वह उसको नहीं कर सकता था। ग्रोटे और गिल्बर्ट मरे ने "हेलेन वाद" और "हेलेन सम्बन्धी भाव" के 'यूनानी विचार' के सम्बन्ध में कहा है। पैपैरीगोपौलो समस्त यूनानी इतिहास की व्याख्या "हेलेन सम्बन्धी आचरण" के द्वारा करता है। ई० रेन अरब सभ्यता की विशेषताओं का सम्बन्ध "सेमेटिक भावनाओं" से बतलाता है। जे० मार्ले घोषणा करता है कि यूनानी और यहूदी लोग "राजनीतिक सहयोग की विश्वव्यापी भावना से शून्य" थे। कनिंघम "उन सिद्धान्तों के विषय में बतलाता है, जिनका प्रतिनिधित्व क्रमशः यूनानी और फीनीशिया वासी करते थे।" इस प्रकार की ऊपरी व्याख्या करने वाले इतिहास कारण-

वाद पर प्रकाश नहीं डाला करते । वह केवल कुछ अध्यात्मिक तत्त्वों के अस्तित्व की कल्पना ही किया करते हैं और हमारी जेब में केवल कोरे शब्द ही भर दिया करते हैं.। इस प्रकार के विचारक ऐरिस्टोफेन्स (Aristophanes) द्वारा प्रसिद्ध किये हुए आकाश के कोयल नगर में रहते हैं। किन्तु स्वयं हमको ठोस पृथ्वी पर आकर ही वैज्ञानिक सिद्धान्तों की विवेचना करनो चाहिये ।

इतिहास निर्माण में परिस्थिति का स्थान

(३) इतिहास के वैज्ञानिक दृष्टिकोण में सभी यन्त्रीय अथवा भाग्यवाद के सिद्धान्तों को अस्वीकृत कर देना चाहिये । क्योंकि वह ऐतिहासिक तत्त्वों पर केवल परिस्थिति का प्रभाव ही मानते हैं (और व्यक्तित्व तक को या तो छोड़ देते हैं अथवा उसकी उपेक्षा करते हैं ।) उनको अर्द्धवैज्ञानिक सिद्धान्त कहा जा सकता है, उनका संशोधन किया जाना चाहिये । वह ग़लत नहीं, वरन एक-पक्षीय है । यदि आपकी किसी ऐसे ऐतिहासिज्ञ से भेंट हो जो केवल समीपवर्ती वस्तुओं को ही सब कुछ समझे तो आपको उसे एक आंख वाला बुद्धिमान् समझना चाहिये । यदि उसके दो नेत्र होते 'तो उसने इतिहास में मानव व्यक्तित्व की शक्ति को भी स्वीकार किया होता । मेरी सम्मति में इतिहास दो शक्तियों से उत्पन्न होता है--परिस्थिति (समीपवर्ती वस्तुओं) और व्यक्तित्व से । व्यक्तित्व पिता और परिस्थिति माता है । व्यक्तित्व कार्यकारी शुक्राणु है और परिस्थिति डिम्ब है ।

कुछ वैज्ञानिक विचारकों ने मनुष्य जाति की उन्नति के ऊपर परिस्थिति के प्रभाव को अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में स्वीकार किया है। बोडिन ने उत्तरी मध्यवर्ती और दक्षिणी राष्ट्रों तथा उनके स्वभाव के विषय में वाद विवाद किया है। मानटेस्क्यू ने इतिहास की मुख्य रूप से भिन्न २ देशों के भूगोल और जलवायु से व्याख्या करने का उद्योग किया है। उसने प्रारब्धवाद का खंडन किया है, किन्तु वह बार २ सभी नियमों और संस्थाओं की उत्पत्ति का कारण वहां की स्थानीय भूमि और जलवायु को समझता है। उसकी सम्मति में उष्ण देशों के निवासी अनिवार्य रूप से दासता और कष्ट ही भोगते रहे हैं। उसने लिखा है, "अधिक उष्णता मनुष्यों की शक्ति और साहस को निर्बल बना देती है। उष्ण जलवायु की कोमलता उनको लगभग दास ही बना देती है। शीत जलवायु वालों की वीरता उनको अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने योग्य बनाती है।......राजनीतिक पराधीनता जलवायु की प्रकृति पर निर्भर है। इसी प्रकार वह सभ्य और घरेलू होती है।......ऐथेन्स की भूमि के ऊजड़ होने के कारण वहां प्रजातंत्र की स्थापना हुई, और लैसीडीमोनिया के उपजाऊपन के कारण वहां राजतंत्र प्रणाली बन गई।" जे० जी० वॉन हेर्डर भी स्वाभाविक परिस्थिति को अत्यंत महत्त्व देता है। वह मानव इतिहास को प्राकृतिक इतिहास की ही एक शाखा मानता है। उसका कहना है कि इतिहास ने मनुष्यों द्वारा केवल बाह्य प्रकृति के नियमों का अनुसरण किया जाना ही दिखलाया

है। उसका कहना है, "जलवायु उन कारणों का विश्रृंखलित संग्रह है, जो एक दूसरे से बिलकुल न मिलते जुलते होने के कारण अनेक प्रकार से बहुत धीरे २ काम करते हैं। यहां तक कि अन्त में वह उन कार्यों के सब से अंदर के भाग तक पहुँच कर उनके स्वभाव तथा उत्पन्न करने के नियम तक को बदल देते हैं।" टी० एच० बफिल यद्यपि सभ्यता के उन्नत होते समय व्यक्तित्व की बढ़ती हुई शक्ति को स्वीकार करता है, किन्तु वह मानव उन्नति के आरंभिक युग में भी विशुद्ध भौतिक शक्तियों के स्थिर प्रभाव को आवश्यकता से अधिक मानता है। उसने लिखा है, कि "प्रकृति के विभिन्न रूपों ने सर्व साधारण के आचरण में भी उसी प्रकार की अनेक विभिन्नताएं उत्पन्न कर दीं।······समाज के सामान्य संगठन के विषय में जलवायु-भोजन और पृथ्वी के उपजाऊपने के कारण अत्यंत महत्त्वपूर्ण परिणाम देखने में आए हैं।" एच० टेन की शिक्षा है कि इतिहास में जाति और परिस्थिति ही मुख्य होती हैं। उसका कहना है। "इतिहास एक यंत्रीय समस्या है।······हमारी विशेष सुविधाएं तुच्छ होती हैं; प्रकृति और इतिहास वस्तुओं को पहिले से ही निश्चित कर देते हैं।" एल. फ्योरबक साहसपूर्वक इतिहास का आधार चटोरपने को मानता है। वह घोषणा करता है। "मनुष्य अपने खाये हुये के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" कार्ल मार्क्स और एफ. एंजेल्स यद्यपि इतिहास की "आर्थिक व्याख्या" की मर्यादा को स्पष्टरूप से मानते हैं

किन्तु वह आर्थिक दशाओं और समाज तथा उसकी संस्थाओं का निर्माण करने वाली शक्तियों पर आवश्यकता से अधिक बल देते हैं। मार्क्स कहता है—

"उत्पत्ति तथा भौतिक जीवन की पद्धति सामाजिक, राजनैतिक और अध्यात्मिक जीवन की सरल प्रणाली पर निर्भर है।······हाथ से चलाया जाने वाला कारख़ाना आपको ऐसी समाज देता है जिसमें फ़ौजी नौकरी देने वाला एक स्वामी होता है। किन्तु एक वाष्प के एंजिन से चलाया जाने वाला कारख़ाना आपको व्यापारिक पूंजिपति स्वामी वाली समाज देता है। ······मानवी मस्तिष्क से प्रतिबिम्बित भौतिक संसार और उसके विचार रूप में परिवर्तन के अतिरिक्त आदर्श और कुछ नहीं है।" एंजेल्स लिखता है। "प्रत्येक इतिहासिक युग में आर्थिक उत्पति और विनिमय की प्रचलित पद्धति और उसके पश्चात् अनिवार्य रूप से होने वाला सामाजिक संगठन ही उस आधार का निर्माण करते हैं, जिस पर उसकी रचना की जाती है और केवल जिसके ऊपर ही उस युग के राजनीतिक और बौद्धिक इतिहास की व्याख्या की जा सकती है।" अनेक समाजवादियों, और साम्यवादियों ने सभी विचारों, आन्दोलनों, और घटनाओं की पूर्णतया इतिहास के "पौद्गलिक विचार" के अनुसार व्याख्या करने का उद्योग किया है। किन्तु वह इस बात को भूल जाते हैं कि स्वयं एंजेल्स ने भी इस पद्धति को अयोग्य कह कर छोड़ दिया है। उसने लिखा है "मार्क्स और मैं दोनों ही आंशिक

रूप से इस घटना के लिये उत्तरदायी हैं, कि नवयुवक लोग आर्थिक प्रश्न पर कभी २ आवश्यकता से भी अधिक बल देते हैं।" (हमको मार्क्स की इस अनुपम उक्ति को कभी नहीं भूलना चाहिये, "मैं मार्क्सवादी नहीं हूं।")

यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि परिस्थिति का भी इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, और यह होना भी चाहिये। यह कहना मूर्खता होगी कि प्राचीन सभ्यता अरब के मरुस्थल अथवा तिब्बत के उबड़खाबड़ पार्वत्य प्रदेश में विकसित हो सकती थी। पहाड़ियों का आचरण और उनकी संस्थाएं सदा ही मैदान के लोगों से भिन्न होंगी; समुद्रतटवासी मनुष्यों का जीवन भी उनके जल में कार्य करने के कारण एक विशेष प्रकार का ही बन जावेगा। ऐथेन्स्, रोड्स्, और साइडन कभी भी पृथ्वी से घिरे हुये एकान्त नगर स्पार्टा के जैसे नहीं हो सकते थे। स्वीजरलैण्ड वासियों ने यूरोप के शासकों को भाड़े के सिपाही भी दिये और स्वेच्छाचारिता के युग में अपनी प्रजातन्त्र संस्थाओं को भी सुरक्षित रखा। हिमालय निवासियों की आकृति और आत्मा दोनों पर ही बरफ़ और बरफ़ीले पहाड़ों का प्रभाव स्पष्ट अंकित रहता है। ग्रीनलैण्ड अथवा टीराडेल फ्यूगो में फली फूली सभ्यता को पाने की आशा कोई भी नहीं करेगा। भारत, जावा और ब्रैजिल जैसे उष्ण और अर्द्धोष्ण देशों के निवासी शारीरिक गठन और मनोवृत्ति में इङ्गलैण्ड, जर्मनी और साइबेरिया जैसे ठंडे देशों के निवासियों

से अत्यन्त भिन्न होते हैं। क्योंकि उष्ण देशों के जलते हुये और चकाचौंध करने वाले सूर्य की वहां की भूत घटनाओं में उपेक्षा नहीं की जा सकती। टेनीसन ने इस सिद्धान्त का इस प्रकार सामान्य रूप में वर्णन किया है—

> "ए अवाबील तु, जो सब किसी को अच्छी तरह
> जानती हैं उससे कह दे—
> कि दक्षिण चमकीला, भयंकर और चंचल है,
> जब कि उत्तर अंधेरा, सत्य और कोमल है।"

यद्यपि इस उक्ति को सभी एक स्वर से स्वीकार नहीं करेंगे, किन्तु इससे यह सारांश निकलता है कि उत्तर और दक्षिण में सदा ही एक उल्लेखनीय अंतर रहेगा। क्योंकि उनकी जलवायु और खाद्यसामग्री सदा ही एक नहीं हो सकती। मनुष्य प्रकृति के नियमों का पूर्णतया उल्लंघन नहीं कर सकता। चीन और फ्रांस में उत्तर और दक्षिण दोनों भागों ने वास्तव में ही दो भिन्न जातियों को जन्म दिया है। रोमन लोग जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन में दूर तक नहीं पहुँच सकते थे, किन्तु दक्षिण में वह लोग अजेय थे। मूर्ति सम्बन्धी कला ने दक्षिण में स्थायी स्थान बना लिया, किन्तु उत्तर में वह अब भी विदेशी ही बनी हुई है। उत्तर में जल और भोजन के परिमाण की प्रशंसा की जाती है, अतएव वहां अनेक * 'पेटू' होते हैं, किन्तु दक्षिण में उत्तम भोजन की प्रशंसा की जाती है, अतः वहां 'उच्च रुचि' वाले पेटू

---

*मथुरा के चौबों जैसे

होते हैं। उत्तर को प्रकृति पर विजय प्राप्त करनी आवश्यक है और दक्षिण उसका उपभोग कर सक्ता है। उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा अधिक भयंकर और संगठित वर्ग युद्ध होने चाहियें (शेष बातें दोनों में समान रहते हुए), क्योंकि भूख और शीत नाम के दोनों शान्त आन्दोलक सिसली अथवा लंका (सीलोन) की अपेक्षा नार्वे और स्वेडेन में अपना प्रभाव अधिक शक्ति तथा दृढ़ता से दिखला सकते हैं। जलवायु और भौगोलिक परिस्थिति के अतिरिक्त किसी जाति की आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएं भी उसके नियमों, रीतियों और विचारों पर कुछ प्रभाव डालती हैं। अर्जेंटाइन, भारत अथवा दक्षिणी फ्रांस के कृषि प्रधान देशों के निवासी इंगलैण्ड, जर्मनी और उत्तरी फ्रांस के अत्यंत परिश्रमी निवासियों की अपेक्षा भिन्न प्रकार से ही विचार और कार्य करेंगे। एक देश में ही मछियारों और खान के मज़दूरों आदि जैसे विशेष कार्य वालों में कुछ विचित्र विशेषताएं होंगी। हमारा नित्य का भोजन केवल हमारे पेट को ही नहीं भरता, वरन् वह विश्राम के समय हमारे मस्तिष्क, हृदय, और आत्मा को ढालता, रंग देता और शासन में भी रखता है। बंगाल, इंगलैण्ड और जर्मनी में ज़मीदारों के अत्याचारों से दबे हुए लोग पंजाब, फ्रांस और स्वेडेन के स्वतंत्र किसानों की अपेक्षा अधिक नीच होते हैं। पैराग्वे के अर्द्ध--समाजवादी ईसाई निवासियों ने अपने उन साथियों की अपेक्षा, जो ऐसे सौभाग्यशाली नहीं हैं, सामाजिक गुण अधिक प्राप्त कर लिये हैं। प्रजातंत्र का निवासी एकतंत्र

सम्राट् के राज्य के निवासी की अपेक्षा कम नीच होता है। डमांस्थीन्स् ने प्राचीन काल में कहा था, "राज्य की नीति जनता को शिक्षा देती तथा उच्च बनाती है।" हीरोडोटस ने ऐथेन्स वासियों पर प्रजातंत्र प्रणाली के लाभप्रद परिणामों का वर्णन करते हुए लिखा था, "जब ऐथेन्सवासी प्रजापीड़क राजाओं के शासन में थे तो वह अपने पड़ौसियों की अपेक्षा अधिक उच्च नहीं थे, किन्तु जब वह स्वतंत्र हो गये तो वह सब से उत्तम बन गये। यह देखा गया है कि अधिकारों की समानता एक प्रकार से ही गुणकारी नहीं वरन् इससे सब गुण प्रगट हो जाते हैं।" उसी प्रकार इंगलैण्ड, फ्रांस, संयुक्तराज्य अमेरीका और जापान की राजनीतिक संस्थाओं के द्वारा भिन्न प्रकार का आचरण ही उत्पन्न किया जाना चाहिये। इस प्रकार परिस्थिति, अपने विभिन्न रूपों में बाल्यावस्था के पालने से लगाकर अंत समय की क़ब्र तक प्रत्येक बात में मनुष्य जीवन के ऊपर अपना प्रभाव डालती है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने चर्म से नहीं बच सकता उसी प्रकार परिस्थिति के प्रभाव से भी कोई नहीं बच सकता। किसी विशेष युग और विशेष देश में जन्म लेते समय आपकी जन्म कुण्डली में बारहों राशियों के प्रायः स्थान निश्चित रहते हैं। किन्तु अनेक पुरुषों के जन्म के समय उनके सब स्थान पहिले से ही निश्चित होते हैं। परिस्थिति वास्तव में ही ऐसा सदा कार्य करते रहने वाला कुम्हार है कि वह हमारी मानवी मिट्टी (शरीर) को ढालकर बनाता है।

इतिहास–निर्माण में व्यक्तित्व का स्थान

इतिहास के संसार में एक और कुम्हार भी है और वह व्यक्तित्व है। परिस्थिति की शक्ति के विषय में अतिशयोक्ति से काम लेने वाले अर्द्ध वैज्ञानिक दार्शनिक इस बात को भूल जाते हैं कि इतिहास, स्पार्टा के समान, दो शासकों द्वारा शासित होता है। परिस्थिति और व्यक्तित्व इतिहास में दो रचनात्मक और कार्य को उत्पन्न करने वाली शक्तियां हैं।

परिस्थिति के सर्वशक्तिमान् होने का प्रारब्धवादी निर्बल सिद्धान्त इतिहास की कठोर घटनाओं से मुक़ाबला पड़ने पर ठीक उसी प्रकार खंडित हो जाता है, जिस प्रकार पृथ्वी पर गिराया जाने से कांच टुकड़े २ हो जाता है। उसी परिस्थिति द्वारा भिन्न २ युगों में भिन्न २ प्रकार के मनुष्य, विभिन्न रीति रिवाज तथा सामाजिक नियम, तथा अनेक प्रकार के धार्मिक और दार्शनिक विचार उत्पन्न किये जाते हैं। अत्यंत विस्तृत रूप से फैली हुई परिस्थितियों में रहने वाले राष्ट्रों में उसी प्रकार की संस्थाएं विकसित होती हुई देखी जाती हैं। इस निषेध न की जाने योग्य घटना से सिद्ध होता है कि परिस्थिति सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकती। इस प्रकार बकले का भारत और मिश्र की परिस्थिति एकसी होने के कारण उन दोनों की सभ्यता के एक होने का निष्कर्ष निश्चय से ही ग़लत सिद्धान्त पर अवलम्बित है। मानटेस्क्यू का कहना है कि राजनीतिक स्वेच्छाचारिता उष्ण प्रदेशों में हुआ करती है। किन्तु हम जानते हैं कि भारतवर्ष में ईषापूर्व पांचवीं शताब्दी

में अनेक प्रजातन्त्र और गणतन्त्र राज्य थे, जब कि उष्ण जल वायु से सहस्रों मील दूर फ्रांस, इंगलैण्ड, जर्मनी और रूस में भी राजनीतिक स्वेच्छाचारिता की विभीषिका फैली हुई थी। अरब लोग आग की भट्टी के समान उष्ण देश में रहते हैं, किन्तु उन्होंने अपने से कहीं ठण्डे अनेक देशों पर विजय प्राप्त की। रेनन का सिद्धान्त है कि सेमेटिक लोगों में उनके मरुस्थल के जीवन के कारण ही एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का विकास हुआ; किन्तु अरब लोग मुहम्मद से पूर्व असंख्य पीढ़ियों से मरुस्थल में रहते थे और उनमें एकेश्वरवाद का कभी विचार भी उत्पन्न नहीं हुआ। इतिहास के सब से प्राचीन एकेश्वरवादी अखनैटन, मूसा और अनैक्सैगोरस तो मरुभूमि में उत्पन्न भी नहीं हुए थे। वर्डस्वर्थ का विश्वास था कि स्वतन्त्रता विशेष रूप से पर्वतों और समुद्रों से ही सम्बन्ध रखती है। शीलर ने भी लिखा था, "स्वतन्त्रता पर्वतों पर निवास करती है।" मानटेस्क्‍यू भी प्रजातंत्र शासन प्रणाली का सम्बन्ध पार्वत्य प्रदेशों से ही बतलाता है, किन्तु राष्ट्रीय अथवा सामूहिक स्वतन्त्रता का प्राचीन तथा वर्तमान् हेलस में, नेपोलियन युग के जर्मनी और स्पेन में, अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में महाराष्ट्र, नेपाल और पंजाब में, मांटिनिग्रो और अफग़ानिस्तान में, वर्तमान् इटली और जापान में, चौदहवीं शताब्दी के स्वीजलैंण्ड में, पुर्तगाल वालों के विरुद्ध युद्ध के समय कांगो में, माइचाओकन के टारास्कस लोगों में, ऐटलस पर्वत माला के बर्बर लोगों में, तथा हैटी (Haiti Isles)

हालैण्ड, स्काटलैण्ड और आइलैंण्ड में बराबर विकास होता रहा है। प्रजातन्त्र के आधार वाली नागरिक स्वतन्त्रता का प्रचार संसार में कम रहा है। इसका प्रचार अपने अपूर्ण रूप में ऐथेन्स, फ़्लौरेंस, उत्तरी भारत, हालैण्ड, इंगलैण्ड, नार्वे, स्वीडेन, फ्रांस तथा अन्य देशों में रहा है। अतएव यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता केवल समुद्र और पर्वतों के वासियों के लिये ही नहीं है। कशमीर, तिब्बत और कोहक़ाफ (Caucasus) की जनता को वहां के पर्वतों ने स्वतन्त्रता और प्रजातंत्र प्रणाली नहीं दी। जहां कहीं भी व्यक्तित्त्व ने कुछ विशेष परिस्थितियों में सफलता पूर्वक कार्य किया, वहां उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, पर्वतों, और मैदानों, समुद्रतटों और उससे दूर के देशों, खजूरों और ताड़ के वृक्ष वाले देशों में स्वतन्त्रता स्थापित हो गई। ईसा की नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दियों में उष्ण परिबन्ध वाले इराक़ के मुसलमान झुलसाने वाले और निर्बल करने वाले जलवायु में भी, उत्तर के यूरोपियनों की अपेक्षा विज्ञान और दर्शनशास्त्र के अध्ययन में अधिक तत्पर थे। उष्ण तथा तेज़ सूर्य वाले इटली में उत्पन्न हुए वहां के विद्या प्रचार काल के बहुपरिश्रमी विद्वान् ठण्डे इङ्गलैण्ड और जर्मनी के विद्वान् साधुओं की अपेक्षा कहीं अधिक परिश्रमी थे। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के एंग्लो सैक्सन लोग भी शक्ति और परिश्रम के लिये विख्यात नहीं थे। जलवायु सार्वज़निक तथा अनिवार्य रूप से सदा ही जनता में आलस्य अथवा परिश्रम शीलता उत्पन्न नहीं

किया करती, उसकी यह कार्य करने की प्रकृति तो होती है, किन्तु उसकी प्रकृति में व्यक्तित्व द्वार बाधा पहुंचाई जा सकती है। आर्थिक दशा भी उन्नति अथवा अवनति की एक मात्र कारण नहीं होती। यह भी अनेक शक्तियों में से एक है, और व्यक्तित्व द्वारा इसके प्रभाव में भी सहायता अथवा बाधा पहुँचाई जा सकती है। आर्थिक प्रणालियों और कृषि की रीतियों, ग्रहशिल्प और आवागमन के साधनों में भी इतिहास के प्राचीन काल से लगा कर ईसा की अट्ठारहवीं शताब्दी तक अनेक मौलिक परिवर्तन नहीं हुए। वह इन लम्बी २ शताब्दियों में समस्त संसार में एक से ही थे। वाष्प और बिजली के आधुनिक युग से पूर्व सभी सभ्य देश हलों और दरांतियों, घोड़ा गाड़ियों और पाल के जहाज़ों, चर्खों और पनचक्कियों से काम लिया करते थे। किन्तु इस पूरे समय भर आर्थिक जीवन की शैली एकसी ही थी, उसमें कोई भी उन्नति नहीं हुई थी। ईसा पूर्व चार सहस्त्र वर्ष अथवा पांचवीं शताब्दी में कोई भी उल्लेखनीय अंतर नहीं था। किन्तु उन पांच या छैः सहस्र वर्षों में धर्म, साहित्य, राजनीति, कला, और दर्शनशास्त्र में अनेक प्रकार के प्रयोग किये गये थे, जिससे बड़ी भारी सफलता प्राप्त हुई थी। मनुष्य जाति सदा ही राजतन्त्र प्रणाली (Monarchy), अल्पसत्ताक शासन प्रणाली (Oligarchy), प्रजातन्त्र शासन प्रणाली (Democracy), नगर--राज्य (City—State), राष्ट्र--राज्य .(Nation--State), साम्राज्य नक्षत्र पूजावाद,

हालैण्ड, स्काटलैण्ड और आइर्लैण्ड में बराबर विकास होता रहा है। प्रजातन्त्र के आधार वाली नागरिक स्वतन्त्रता का प्रचार संसार में कम रहा है। इसका प्रचार अपने अपूर्ण रूप में ऐथेन्स, फ्लौरेंस, उत्तरी भारत, हालैण्ड, इंगलैण्ड, नार्वे, स्वीडेन, फ्रांस तथा अन्य देशों में रहा है। अतएव यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता केवल समुद्र और पर्वतों के वासियों के लिये ही नहीं है। कशमीर, तिब्बत और कोहक़ाफ (Caucasus) की जनता को वहां के पर्वतों ने स्वतन्त्रता और प्रजातंत्र प्रणाली नहीं दी। जहां कहीं भी व्यक्तित्त्व ने कुछ विशेष परिस्थितियों में सफलता पूर्वक कार्य किया, वहां उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, पर्वतों, और मैदानों, समुद्रतटों और उससे दूर के देशों, खजूरों और ताड़ के वृक्ष वाले देशों में स्वतन्त्रता स्थापित हो गई। ईसा की नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दियों में उष्ण परिबन्ध वाले इराक़ के मुसलमान झुलसाने वाले और निर्बल करने वाले जलवायु में भी, उत्तर के यूरोपियनों की अपेक्षा विज्ञान और दर्शनशास्त्र के अध्ययन में अधिक तत्पर थे। उष्ण तथा तेज़ सूर्य वाले इटली में उत्पन्न हुए वहां के विद्या प्रचार काल के बहुपरिश्रमी विद्वान् ठण्डे इङ्गलैण्ड और जर्मनी के विद्वान साधुओं की अपेक्षा कहीं अधिक परिश्रमी थे। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के एंग्लो सैक्सन लोग भी शक्ति और परिश्रम के लिये विख्यात नहीं थे। जलवायु सार्वजनिक तथा अनिवार्य रूप से सदा ही जनता में आलस्य अथवा परिश्रम शीलता उत्पन्न नहीं

किया करती, उसकी यह कार्य करने की प्रकृति तो होती है, किन्तु उसकी प्रकृति में व्यक्तित्व द्वार बाधा पहुंचाई जा सकती है। आर्थिक दशा भी उन्नति अथवा अवनति की एक मात्र कारण नहीं होती। यह भी अनेक शक्तियों में से एक है, और व्यक्तित्व द्वारा इसके प्रभाव में भी सहायता अथवा बाधा पहुँचाई जा सकती है। आर्थिक प्रणालियों और कृषि की रीतियों, गृहशिल्प और आवागमन के साधनों में भी इतिहास के प्राचीन काल से लगा कर ईसा की अट्ठारहवीं शताब्दी तक अनेक मौलिक परिवर्तन नहीं हुए। वह इन लम्बी २ शताब्दियों में समस्त संसार में एक से ही थे। वाष्प और बिजली के आधुनिक युग से पूर्व सभी सभ्य देश हलों और दरांतियों, घोड़ा गाड़ियों और पाल के जहाज़ों, चर्खों और पनचक्कियों से काम लिया करते थे। किन्तु इस पूरे समय भर आर्थिक जीवन की शैली एकसी ही थी, उसमें कोई भी उन्नति नहीं हुई थी। ईसा पूर्व चार सहस्र वर्ष अथवा पांचवीं शताब्दी में कोई भी उल्लेखनीय अंतर नहीं था। किन्तु उन पांच या छैः सहस्र वर्षों में धर्म, साहित्य, राजनीति, कला, और दर्शनशास्त्र में अनेक प्रकार के प्रयोग किये गये थे, जिससे बड़ी भारी सफलता प्राप्त हुई थी। मनुष्य जाति सदा ही राजतन्त्र प्रणाली (Monarchy), अल्पसत्ताक शासन प्रणाली (Oligarchy), प्रजातन्त्र शासन प्रणाली (Democracy), नगर–राज्य (City—State), राष्ट्र–राज्य .(Nation–State), साम्राज्य नक्षत्र पूजावाद,

(Astrolatry), पशु पूजावाद (Zoolatry), बहुदेववाद, एकेश्वरवाद, नास्तिकवाद, अद्वैतवाद, शोकान्त रचना, हास्यरस की रचना, युग कथा, गाथाएं, यूनानी और गोथ लोगों की गृहनिर्माण की शिल्प कला आदि से प्रसन्न अथवा दुःखी होती रही है। विद्या, कला, और राजनीति सम्बन्धी अनुभव की यह आश्चर्यजनक विभिन्नता समाज के 'आर्थिक आधार' की स्थिरता और एकरूपता के बड़े भारी विरोध में आज खड़ी होती है। इतिहास के अनेक रंगों के चित्र दिखलाने वाले खिलौने में इन सब विभिन्न बातों को केवल एक वस्तु ही—जो या तो बहुत कम परिवर्तन करती है अथवा बिलकुल ही नहीं करती—उत्पन्न नहीं करती। एक बिन्दु के ऊपर बड़ा खम्भा नहीं खड़ा किया जा सकता ।

इ. नि. में आर्थिक दशा का स्थान

मनोविज्ञान और आचार शास्त्र के राज्य में, कठिन "आर्थिक निश्चयवाद" माननीय सिद्ध नहीं किया जा सकता है। सैंकड़ों उत्साही रूसी विद्यार्थियों ने उस समाजवाद की विजय के लिये, जो उनके वर्ग-स्वार्थों का सीधा विरोधी और उनकी मध्यश्रेणि की शिक्षा के प्रतिकूल था, प्रबल उत्साह पूर्वक कार्य किया और अनेक कष्ट सहे। वास्तव में समाजवाद के अनेक नेता धनिक वर्ग और मध्यम-श्रेणियों में से आये थे; उन्होंने अपने कार्य और योग्यता से "आर्थिक निश्चयवादियों" के सिद्धान्त की लम्बी चौड़ी युक्तियों

का बिना जाने ही खण्डन कर दिया। सेंट साइमन, राबर्ट ओवेन, लुई ब्लैंक, मार्क्स, बैकुनिन, क्रोपोटकिन, एंजेल्स्, हाइंडमैन, ब्रैंटिग, जौरेस, मैटिओटी, अर्नेस्ट जोन्स तथा अन्य आत्म बलिदान करने वाले नेताओं ने अपने जीवन को समाजवाद की सेवा में लगा दिया और इस प्रकार उन्होंने इस सिद्धान्त को कि--इतिहास का "पौद्गलिक विचार" सार्वजनिक रूप से ठीक है---असत्य सिद्ध कर दिया। यन्त्रीय मार्क्सवाद का समर्थन करने वाले पंडितों के मतानुसार सामाजिक क्रान्ति अत्यधिक पूंजीवादी देशों में होनी चाहिये थी; किन्तु इसका विस्फोट रूस में हुआ, जहां पूंजीवाद का कम से कम विकास हुआ था। अतः कौटँस्की ने घबड़ा कर इसका उसी प्रकार सिद्धान्त रूप से निषेध करना आरम्भ किया, जिस प्रकार एक बालक ने चिड़ियाघर में लम्बी २ अगली टांगों वाले जिरेफ नाम के प्राणि को देख कर कहा था कि "इस प्रकार का कोई प्राणि असम्भव नहीं है।" किन्तु के. कौटस्की का मार्क्सवाद का सिद्धान्त केवल अर्द्ध सत्य ही था; क्योंकि वह यन्त्रीय परिस्थिति को ही महत्त्व देकर जीवित व्यक्तित्व का कुछ भी प्रभाव नहीं मानता था। धार्मिक क्षेत्र के विषय में यह सत्य है कि पोलैण्ड में धर्म सुधार का आन्दोलन विफल सिद्ध हुआ, क्योंकि उस देश में कोई व्यापारिक अथवा औद्योगिक मध्यश्रेणि नहीं थी। जैनधर्म तथा ईसाइयों के प्युरिटन सम्प्रदाय को मुख्य रूप से नगर के व्यापारिक वर्ग ने ही स्वीकार किया था। किन्तु कैल्विन के सम्प्रदाय

को स्काटलैण्ड में सफलता मिली, जहां मध्य वर्ग का एक दम अभाव था। भारतवर्ष के व्यापारिक लोग तो प्रायः जैनी, हिन्दू अथवा बौद्ध ही होते हैं। जावा निवासी चौदहवीं शताब्दी में आर्थिक क्रम में परिवर्तन हुए बिना भी हिन्दु धर्म को छोड़ कर मुसलमान बन गये थे। प्राचीन ईसाई धर्म के अनुयायी प्रायः नागरिक व्यापारी और श्रमजीवी ही थे, किन्तु बाद के युग में उसी धर्म को किसानों, रईसों और उत्तरी यूरोप के बादशाहों ने ग्रहण किया। उनका ईसाई धर्म की दीक्षा ग्रहण करने का सम्बन्ध किसी भी आर्थिक आन्दोलन से नहीं था। चीन और जापान में भी बौद्ध धर्म के आने के पूर्व कोई आर्थिक क्रांति नहीं हुई थी। इस्लाम का आरम्भ मध्यमश्रेणि के धनी व्यक्तियों में हुआ था, किन्तु आज ईरान और मिश्र के किसान और मज़दूर इस्लाम के कट्टर भक्त हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक धार्मिक सम्प्रदाय और आन्दोलन आर्थिक शक्तियों अथवा वर्ग-स्वार्थों के बिना भी सीधे चल सकते हैं। मनुष्य एक मिश्रित आवश्यकताओं वाला प्राणि है। उसको केवल धन की ही आवश्यकता नहीं होती वरन् आचरण, आमोद प्रमोद, संगीत और रहस्य की भी होती है। किसी २ समय उसको नये कार्यों में अपनी वर्ग-मनोवृत्ति और आर्थिक परिस्थिति के अनुसार पृथ्वी के मालिक, अथवा सौदागर अथवा मज़दूर के रूप में कार्य करना पड़ता है। किन्तु किसी दूसरे समय उसको बिल्कुल एक शुद्ध और सरल मनुष्य के समान इस प्रकार कार्य

करना पड़ता है, जैसे उसका किसी समाज के किसी वर्ग से सम्बन्ध न हो। जब कोई वर्ग ही न रहेंगे तो इस "आर्थिक निश्चयवाद" के सिद्धान्त का क्या होगा ? बिना वर्ग के समाज में क्या दर्शनशास्त्र, आचारशास्त्र, और कला की कोई उन्नति हो सकेगी ? क्या नयी मशीनों के आविष्कारों को किये बिना मनुष्य का मस्तिष्क शान्त रह सकेगा ? इतिहास की नौका की पतवार मस्तिष्क है, न कि उसकी उत्पन्न की हुई मशीनें। वर्ग एक न एक दिन समाप्त हो जावेंगे; किन्तु मनुष्य जाति सदा ही रहेगी। जब एक मजदूर सूर्यास्त के सुन्दर दृश्य अथवा स्वादिष्ट सेब का आनन्द लेता है, संगीत सुनता अथवा अपनी प्रेयसी पत्नी का चुम्बन करता है, अपने घर पर किसी आर्थिक का सत्कार करता अथवा अपने किसी मित्र या सम्बन्धी के अन्त्येष्टि संस्कार में सम्मिलित होता है, कविता पढ़ता अथवा जीवन और मरण की समस्याओं पर विचार करता है, तो वह यह सब कार्य अपने अजेय मानवी गुणों के कारण करता है, न कि अपने अस्थायी वर्ग–स्वार्थों के लिये। जब लोग फ्लोरेंस की गलियों में से साइमैब्यू नाम के चित्रकार की "मरियम की मूर्ति" का जुलूस निकाल रहे थे, अथवा ऐफ़ीसस नगर की डायना को ही चिल्ला कर बड़ी देवी बतला रहे थे, अथवा गैरीबाल्डी और मॅलिसन की प्रशंसा करने के लिये सहस्रों की संख्या में एकत्रित हुए थे, अथवा 'हेरनैनी' (Hernani) के ऊपर लड़े थे, अथवा अत्यंत शान्ति से विक्टर ह्यूगो के अन्त्येष्टि सम्बन्धी जुलूस में चले थे,

अथवा दशहरा के अवसर पर राम की स्मृति में रामलीला कर रहे थे, अथवा अपने पूर्वजों के धर्म की रक्षा के * लिये ईरान से भाग कर भारतवर्ष में आए थे, अथवा जिओवाद (Zionism) की पुकार पर फिलिस्तीन में एकत्रित हुए थे, अथवा पीटर की अपील पर जब उन्होंने जेरुसलेम पर चढ़ाई की थी, अथवा पार्थेनन के निर्माण के लिये धन संग्रह की स्वीकृति सूचक सम्मति दी थी, अथवा जब उन्होंने जर्कज़ीस और मारडोनियस की आधीनता स्वीकार करने से आग्रहपूर्वक इंकार कर दिया था, अथवा जब उन्होंने ने फोर्ज की घाटी में भूख और शीत को सहन किया था, अथवा जब उन्होंने वाल्मी, लुटज़ेन और टौर्स में वीरों के समान युद्ध किया था, अथवा जब वह वोलटेयर की गाड़ी के पीछे जुलूस में चले थे, अथवा जब उन्होंने बुद्ध के स्मृति चिन्हों को प्राप्त करने के समय उत्सव मनाया था, तो उस अवसर परउनको धन का बिल्कुल ही ध्यान न होकर किसी ऐसी दूसरी वस्तु का ध्यान था, जो धन से कहीं बड़ी है।

"आर्थिक निश्चयवाद" के सिद्धान्त वाले मानवी प्रकृति का जो अनेक रङ्गों का इन्द्रधनुष है, अंग भंग करते और उसकी निन्दा करते हैं; किन्तु उसमें उनको सोने के पीले रंग के अतिरिक्त और कोई रंग दिखलाई नहीं देता। यदि इतिहास की ठीक २ तथा ईमानदारी से व्याख्या की जावे तो वह इस

---

* यहूदियों के फिलिस्तीन में बसने के आन्दोलन को ज़िओमिज्म अथवा ज़िओवाद कहते हैं।

प्रकार के दुःखपूर्ण रंग के अन्धेपन की चिकित्सा कर देती है।

इसके अतिरिक्त मैं पूछना चाहता हूं कि इस आर्थिक रचना में परिवर्तन कौन करता है? क्या नई मशीनें अपने आप ही अपना आविष्कार कर लेती हैं? क्या मार्क्स की उल्लेख की हुई हाथ और वाष्प की कलें स्वयं ही अपने आपको बनाती हैं? क्या उत्पत्ति और बटवारे की नई प्रणालियां स्वयं ही अपने आपको स्थापित कर लेती हैं? क्या नया सामाजिक वर्ग रहस्यपूर्ण तथा यन्त्रीय ढंग से स्वयं ही उठ खड़ा होता है? नहीं। समाज की आर्थिक रचना को स्त्री पुरुष ही औद्योगिक उन्नति करके, वस्तुओं का नये ढंग पर बटवारा करके, और सम्पत्ति के किन्हीं अधिकारों को श्रम, पेशे, विजय, अधिकार अथवा दान आदि के आधार पर स्वीकार करके बदलते हैं। यह सभी आर्थिक कार्य औज़ारों और हथियारों द्वारा न होकर जीवित स्त्री पुरुषों द्वारा ही किये जाते हैं। इस प्रकार अन्त में "आर्थिक निश्चयवाद" (यदि इसको सत्य मान भी लिया जावे तो) मनुष्यों की बुद्धि और निश्चय, अर्थात् व्यक्तित्व पर ही निर्भर रहेगा। मशीनवादी दार्शनिक अन्तिम प्रश्न पर तनिक रुक कर पूछता है। 'उसको किसने किया?" यदि वह अपनी छानबीन को तर्कपूर्ण परिणाम तक ले जावें तो उनको पता लगेगा कि "क्या" सदा "कौन" को और 'वह' सदा किसी 'स्त्री' अथवा 'पुरुष' को ही बतलावेगा। वह इस बात को भूल जाते हैं कि प्रत्येक मशीन के पीछे उसी प्रकार मनुष्य अवश्य होता है, जिस प्रकार

जाले में एक मकड़ी अवश्य होती है। यदि मशीनों और वर्गों को इतिहास का निश्चय करने वाला माना भी जावे तो वह भी व्यक्तित्व के द्वारा ही बनाये और बदले जाते हैं। इस प्रकार मनुष्य के भाग्य का अन्तिम निश्चय करने वाला व्यक्तित्व ही होता है। सभी आर्थिक रीतियां मानवी व्यक्तित्व द्वारा ही निर्माण की जाती हैं अतएव इतिहास में वही कार्यवाही रचनात्मक शक्ति है। सभी कलाओं और विज्ञानों को मनुष्य के मस्तिष्क और निश्चय का कृतज्ञ होना चाहिये।

इ. नि. में राजनीतिक संस्थाओं का स्थान

यदि परिस्थिति और आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाएं ही वास्तव में मनुष्य के सब विचारों और आदर्शों को निश्चय करती हैं, तो इस बात की व्याख्या करना असम्भव हो जावेगा कि नये विचार किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं, अथवा किस प्रकार एक दमनशील शासन प्रणाली को पदच्युत किया जा सकता, अथवा उसमें सुधार किये जा सकते हैं। परिस्थिति अपने अनुकूल कार्यों को ही उत्पन्न करती है। आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाएं मनुष्य की प्रकृतियों को अपने उद्देश्यों के अनुकूल ही ढालती हैं। इसी प्रकार एकतन्त्र शासन प्रजा को राजभक्त बनाता है। सैनिक सेवा के बदले ज़मींदारी करने वाले अपनी प्रजा को यह शिक्षा दिया करते हैं कि अच्छी प्रजा को अपने स्वामी का अनुगमन करके उसकी सेवा करनी चाहिये। किन्तु यदि यह बाहिरी प्रभाव ही सर्वोपरि और

सर्व शक्तिशाली हों तो फिर संस्थाएं कभी किस प्रकार बदली जा सकती हैं ? उनके विरुद्ध विद्रोह कौन कर सकता है ? फिर कौनसी शक्ति असंतुष्टों और नया मार्ग बनाने वालों को उत्पन्न कर सकती है ? सम्राट् की मूर्ति की पूजा करने से स्पष्ट इंकार करने वाले ईसाई आदर्शवादियों की उन्नति को रोमन साम्राज्य किस प्रकार देखता रह सकता था ? उनका वह विचित्र विचार, जो स्वाभाविक रूप से आर्थिक-राजनीतिक प्रणाली में उत्पन्न नहीं हो सकता था, कहां से आया ? कैथोलिक सम्प्रदाय में ही प्रोवेन्स, वाले (Valais) और बोहेमिया के धर्म विरोधी किस प्रकार उत्पन्न हो सकते थे। पूंजीवाद अपने शत्रु समाजवाद को किस प्रकार जन्म दे सकता था ? तथ्य यह है कि अधिकांश जनता परिस्थिति तथा आर्थिक-राजनीतिक संस्थाओं की बहुत समय तक दास बनी रहती है, क्योंकि उनके अन्दर स्वतन्त्र उत्पादक व्यक्तित्व का अभाव होता है। किन्तु अल्पसंख्या सदा ही पुरानी शासन प्रणाली की समालोचना तथा निन्दा करना आरम्भ करती है। यह इने गिने विद्रोही ही अन्त में नयी संस्थाओं की स्थापना करने में कृतकार्य हो जाते हैं। किन्तु यह नवीन उत्साह और अन्तर्दृष्टि उनमें कहां से आती है ? केवल यह कहना निरा बुद्धूपन है कि किसी सिद्धान्त से उसके विरोधी सिद्धान्त का ज्ञान भी हो जाता है। मैं पूछता हूं "ऐसा क्यों है ?" सिद्धान्त को सुरक्षित रखना चाहिये। वही सिद्धान्त अपना निषेध और खेदन करने वाले विरोधी सिद्धान्त को किस प्रकार उत्पन्न कर

हुआ कि यूरोप से भारतवर्ष को आने का नया मार्ग खोजना चाहिये। किन्तु कोलम्बस की नये २ कार्य करने की प्रकृति, ईसाबेला की चतुरता और मांदियों की वीरता से ही यह विचार सफल हुआ। इंगलैण्ड में प्यूरीटन आन्दोलन मिल्टन के 'खोए हुए स्वर्ग' (Paradise Lost) के लिये अयोग्य विषय निर्वाचित किये जाने का उत्तरदायी था। किन्तु प्युरीटन सम्प्रदाय ने "राग (Harmonies) के शक्तिशाली मुख वाले आविष्कारक" के विचित्र रूप से बने हुए मस्तिष्क का निर्माण नहीं किया। वह मस्तिष्क भी व्यक्तित्व का ही एक अंग था। उस काल के प्रत्येक प्यूरिटन ने एक २ कविता नहीं लिखी। फ्रांस की राज्यक्रान्ति कुछ आर्थिक और राजनीतिक दशाओं के साथ २ रूसो, वॉलटेयर, डाइडेरॉट, तथा अन्य विचारकों के आंदोलन का परिणाम थी। उस क्रान्ति ने नेपोलियन को भी अवसर दे दिया; किन्तु क्या कोई गम्भीर विद्वान् यह सिद्ध कर सकता है कि यदि नेपोलियन के जैसे उच्च आत्मा और अभिलाषाओं वाले पुरुष का अस्तित्व न होता तो नेपोलियन के उस समय के सब युद्ध उसी प्रकार किये जाते। उस समय जितना आवश्यक आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का सार्वजनिक आन्दोलन था उतनी ही आवश्यक वह उच्च आत्मा और वह अभिलाषाएं थीं। पूंजीवाद ने समाजवाद की उन्नति के लिये आवश्यक बाह्य परिस्थितियां उत्पन्न करदीं, किन्तु पूंजीवाद ने अनेक वर्षों तक प्रतिदिन प्रातःकाल के समय ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में जाकर 'पूंजीवाद' पर कुछ नहीं लिखा। इस

सकता है ? निश्चय ही उस सिद्धान्त के पीछे कोई बड़ी शक्ति छिपी होनी चाहिये। वही शक्ति मानवी व्यक्तित्व है, जो प्रत्येक युग में केवल कुछ आत्माओं में ही बड़ी और उत्पादक हो सकती है।

विरोधी सिद्धान्त केवल सिद्धान्त के द्वारा ही उत्पन्न नहीं किया जाता है, वरन् सिद्धान्त और व्यक्तित्व के मिलने से उत्पन्न होता है। उसी प्रकार व्यक्तित्व सिद्धान्त और विरोधी सिद्धान्त को मिलाकर समालोचनात्मक नयी रचना (Synthesis) बना देता है, जो और प्रकार से बन ही नहीं सकती ? इतिहास को तर्कपूर्ण करने का उत्तरदायित्व भी व्यक्तित्व पर ही है।

परिस्थिति और व्यक्तित्व की संयुक्त शक्ति

बड़ी २ घटनाओं के कारण का वर्णन करते हुए मैं परिस्थिति और व्यक्तित्व के मिश्रित प्रभाव को प्रमाणित करूँगा। ईरान के साथ युद्ध और यूनान तथा ऐथेन्स की उसके बाद की घटनाओं के कारण इस बात की आवश्यकता पड़ी कि ऐक्रोपोलिस में मंदिर फिर बनाया जावे, किन्तु फीडियस (Pheidias) के प्रबल आत्मा ने पारथेनन का अविनाशी मंदिर बना डाला। यदि फीडियस उत्पन्न न भी होता तो किसी न किसी प्रकार का मंदिर अवश्य बनाया जाता; किन्तु वह फीडियस की उच्च कोटि की कला के समान कदापि न होता। तुर्कों के राजनीतिक कार्यों, यूरोप की जनता के लिये मसालों की आवश्यकता, तथा व्यापारियों के आर्थिक स्वार्थों के कारण पन्द्रहवीं शताब्दी में यह विचार उत्पन्न

हुआ कि यूरोप से भारतवर्ष को आने का नया मार्ग खोजना चाहिये। किन्तु कोलम्बस की नये २ कार्य करने की प्रकृति, ईसाबेला की चतुरता और मांदियों की वीरता से ही यह विचार सफल हुआ। इंगलैण्ड में प्यूरीटन आन्दोलन मिल्टन के 'खोए हुए स्वर्ग' (Paradise Lost) के लिये अयोग्य विषय निर्वाचित किये जाने का उत्तरदायी था। किन्तु प्युरीटन सम्प्रदाय ने "राग (Harmonies) के शक्तिशाली मुख वाले आविष्कारक" के विचित्र रूप से बने हुए मस्तिष्क का निर्माण नहीं किया। वह मस्तिष्क भी व्यक्तित्व का ही एक अंग था। उस काल के प्रत्येक प्यूरिटन ने एक २ कविता नहीं लिखी। फ्रांस की राज्यक्रान्ति कुछ आर्थिक और राजनीतिक दशाओं के साथ २ रूसो, वॉलटेयर, डाइडेरॉट, तथा अन्य विचारकों के आंदोलन का परिणाम थी। उस क्रान्ति ने नेपोलियन को भी अवसर दे दिया; किन्तु क्या कोई गम्भीर विद्वान् यह सिद्ध कर सकता है कि यदि नेपोलियन के जैसे उच्च आत्मा और अभिलाषाओं वाले पुरुष का अस्तित्व न होता तो नेपोलियन के उस समय के सब युद्ध उसी प्रकार किये जाते। उस समय जितना आवश्यक आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का सार्वजनिक आन्दोलन था उतनी ही आवश्यक वह उच्च आत्मा और वह अभिलाषाएं थीं। पूंजीवाद ने समाजवाद की उन्नति के लिये आवश्यक बाह्य परिस्थितियां उत्पन्न करदीं, किन्तु पूंजीवाद ने अनेक वर्षों तक प्रतिदिन प्रातःकाल के समय ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में जाकर 'पूंजीवाद' पर कुछ नहीं लिखा। इस

कार्य को करने वाला तो एक विशेष व्यक्ति कार्ल मार्क्स था। पूंजीवाद ने मार्क्स के माता पिता को प्राणिविज्ञान के अनुसार उस भौतिक मस्तिष्क को उत्पन्न करने में सहायता नहीं दी।

परिस्थिति और व्यक्तित्व के समान महत्त्व को थेमिस्टोकिल्स बहुत पहिले ही स्पष्ट रूप से बतला चुका है। सूटार्च उस घटना का वर्णन इस प्रकार करता है, "एक बार सेरिफोस नामक छोटे से नगर के एक साधारण नागरिक ने थेमिस्टोकिल्स् से कहा, 'तुम्हारी कीर्ति तुम्हारे प्रतापी नगर ऐथेन्स के कारण है।' उसने उत्तर दिया, 'बहुत ठीक; यदि मैं सेरीफोस में उत्पन्न हुआ होता तो कभी प्रसिद्ध न होता; किन्तु तुम यदि ऐथेन्स् में भी उत्पन्न हुए होते तो बड़े और शक्तिशाली नहीं हो सकते थे।' "

परिस्थिति की तुलना एक बुझी हुई मोमबत्ती से और व्यक्तित्व की दियासलाई से दी जा सकती है, जिसके बिना वह किसी प्रकार नहीं जल सकती। वह दोनों मिलकर ही प्रकाश उत्पन्न करते और संसार को प्रकाशित करते हैं।

सार्वजनिक नियम की अव्यवहारिकता

(४) कुछ दार्शनिकों ने समस्त भूतकाल की व्याख्या करने वाले सर्व सामान्य, आवश्यक और बहुत अर्थ को ग्रहण करने वाले नियम का पता चलाने का प्रयत्न किया है। किन्तु खेद है, कि इतिहास सामाजिक विकास के किसी एक मात्र सार्वजनिक 'नियम' को नहीं बतलाता। ऐतिहासिक तत्त्वों में कोई अनिवार्यता नहीं है। घटना हो चुकने पर उससे शिक्षा

ग्रहण करना और स्पिनोज़ा के साथ ही साथ यह कहना कि 'बीते हुए को लौटाया नहीं जा सकता' निश्चय से ही सम्भव है। इतिहास किसी पूर्वनिश्चित विधि के अनुसार नही बनाया गया।

मानवी अनुभव के विशाल और मिश्रित कोष अर्थात इतिहास की कोई एक 'नियम' अथवा सिद्धांत व्याख्या नहीं कर सकता। अतएव इस प्रकार के सब सामान्य नियमों को अयोग्य समझ कर छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार का प्रत्येक 'नियम' घटनाओं के छोटे से समूह पर ही लागू हो सकता है; वह समस्त भूतकाल पर लागू नहीं हो सकता। इतिहास में ऊँचे नीचे अनेक मार्ग होते हैं, विभिन्न विचारक इनमें से कुछ का चित्र बना सकते हैं, किन्तु इतिहास को केवल एक सामान्य नियम के आधार पर—उसके कितना ही उपयोगी होने पर भी—नहीं खड़ा किया जा सकता। इस मानसिक विभ्रम का कारण यह भ्रमपूर्ण विचार है कि इतिहास के नियम भी भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के अनुसार ही होने चाहियें। समाजविज्ञान के प्रत्येक अभिलाषापूर्ण न्यूटन ने ऐतिहासिक विकास के एक सार्वसामान्य 'नियम' का पता लगाने का उद्योग किया है, किंतु इतिहास को उन यथार्थ विज्ञानों के पद तक गिराने की आवश्यकता नहीं है, जो शब्द और सीलीनियम (Selenium), तथा प्रकाश और ल्यूटीसियम (Lutecium) के विषय में अनुसन्धान करते हैं। इतिहास को इस बात का गौरव प्राप्त है कि उसके तत्त्वों को माशों और रत्तियों अथाव अंगुलों और जौ में

तोला या नापा नहीं जा सकता। वह पूर्व दृष्टि और भविष्यवाणी की अपूर्णता में देदीप्यमान है। वह कहता है, 'देखो! मैं नीहारिका (Nebulae), सौर जगत् और आकाश गंगा के विषय में जो अत्यंत सुगमता से अनुमान लगा कर गिने जा सकते है, न कुछ बतलाता हूँ, और न बतला ही सकता हूँ क्योंकि मैं उस पदार्थ का वर्णन करता हूँ जो उनको गिनता और उनके विषय में अनुमान लगाता है, और उनसे कहीं अधिक बड़ा है। वह मनुष्य का मस्तिष्क है, जिसको कोई नियम अपने बन्धन में नहीं बांध सकता।

कोम्टे के सिद्धान्त का खण्डन

(क) आगस्टे कोम्टे समाजविज्ञान के यथार्थ विज्ञान की खोज में लग गया, उसने 'तीन श्रेणियों के नियम' की रचना की, जिनका टुरगाट ने वर्णन किया है। उसने सभी मानवी सिद्धांतों के आवश्यक मार्ग का तीन क्रमिक श्रेणियों के द्वारा वर्णन किया। प्रथम, ईश्वरीय अथवा काल्पनिक, यह अल्पकालीन होती है; दूसरी, अध्यात्मिक अथवा सारांश रूप, इसकी अवस्थाओं में परिवर्तन होता रहता है, और तीसरी विधि रूप अथवा वैज्ञानिक केवल यही श्रेणि निश्चित होती है। उसने लिखा है, "यह नियम मानवी मस्तिष्क की अत्यन्त मूल्यवान् बौद्धिक फलरूप है। उसका निश्चय हो जाने से विश्व के नियमों का वह भारी अनुसंधान कार्य जो हेतु का प्रथम वार पता लगाने वाले थेल्स से आरंभ हुआ था, पूर्ण हो जाता है।" दुर्भाग्यवश कोम्टे ने स्वयं ही इस

नियम के सार्वभौम बनने में उस समय बाधा पहुँचा दी, जब उसने यह स्वीकार कर लिया कि कुछ जातियां भूतवाद से सीधी निश्चयवाद पर आ सकती हैं। वह कहता है कि मध्यकालीन समाज "अध्यात्मिक और फौजी नौकरी का बदला देने वाले जागीरदारों वाली थी।" किन्तु मध्यकालीन में प्रचलित ईसाई दर्शनशास्त्र ईश्वरवादी था। क्योंकि उस युग के सभी विचारों का मूल केन्द्र व परिधि ईश्वर था। उसने यह परिणाम निकाला था कि वर्तमान युग शांतिपूर्ण और व्यापारिक होगा। सन् १९१४-१८ तथा उसके बाद के समय की घटनायें इस उक्ति की कितनी निंदित व्याख्या करती हैं। वह समस्त मध्य तथा पूर्वीय एशिया को छोड़ जाता है, और इस 'नियम' को उन स्थानों की सभ्यताओं पर लागू नहीं करता। वह भारतवर्ष तथा ईरान पर अत्यंत गहन प्रभाव डालने वाले अद्वैतवाद का तो उल्लेख तक नहीं करता। प्रोटेस्टेंट मत को 'अध्यात्मिक' कार्य किस प्रकार समझा जा सकता है? यह सारांश रूप में ईश्वरवादी है। एक कैथोलिक किसी शक्तिमान सन्त से प्रार्थना कर सकता है, किन्तु प्रोटेस्टेंट केवल परमात्मा से ही रक्षा की प्रार्थना किया करता है। इसके अतिरिक्त, यह 'नियम' ऐतिहासिक घटनाओं और आंदोलनों के वास्तविक कारण को किस प्रकार बतला सकता है? क्या यह बतला सकता है कि ईश्वरवाद में अध्यात्मवाद तथा अध्यात्मवाद में विज्ञान को क्यों और किस तरह लगाया गया? यह जान पड़ता है कि यह 'नियम' स्वयं भी

अध्यात्मिक विचारों की शैली से ही उत्पन्न हुआ है। कोम्टे इस विषय के मूल कारण तक नहीं जा सका।

विकासवाद का खण्डन

(ख) हर्बर्ट स्पेंसर ने भी सर्वसामान्य नियम के अन्वेषण में पर्याप्त परिश्रम किया था। उसने के० ई० वॅान बेर के केवल गर्भ सम्बन्धी विकास के नियम को ही अपनाया था। और उसी को समस्त प्रकृति तथा मनुष्य समाज तक पर लागू किया। वह गंभीर दार्शनिक अपराध और दुराचरण का दोषी था। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ सी० वी० लैंगलाएस और सी० साइनोबास सभी ने समाजविज्ञान-वादियों को चेतावनी दी है कि वह "सामाजिक विकास की व्याख्या में प्राणिविज्ञान सम्बन्धी समानताओं का उपयोग करने का प्रयत्न न करें। क्योंकि प्राणियों के विकास के कारणों से सामाजिक विकास नहीं हुआ करता।" स्पेंसर ने मानवी समाज की एक 'शरीरधारी' से तुलना की है। यह सिद्धांत अत्यन्त पुराना और नितान्त अवैज्ञानिक है, जो अब केवल शब्दिक वाग्जाल ही बन गया है। उसने इस अशुभ नियम को सोच साच कर बनाया, "विकास पुद्गल की सम्पूर्णता और गति का एक साथ विस्तार है, जिसमें पुद्गल कुछ अनिश्चित अमिश्रित (विशुद्ध) एक जाति वालों से कुछ निश्चित मिश्रित विजातियों में मिल जाता है और उस समय में रुकी हुई गति उसी प्रकार का दूसरा रूप धारण कर लेती है।" इतिहास इस प्रकार के किसी सार्वसामान्य नियम को उपस्थित नहीं करता।

सभी संस्थाएं साधारणता से विमिश्रितवस्था में और सजातीयता से विजातीयता में विकसित नहीं होतीं। इस क्रम को कुछ उदाहरणों में देखा जा सकता है, किंतु इसकी प्रतिकूल क्रम भी उसी प्रकार देखने में आता है। कुटुम्ब साधारणता से विमिश्रितावस्था में विकसित नहीं होता। प्राचीन समाजों का प्रबंध न किये जाने योग्य सम्मिलित कुटुम्ब इतना सरल कर दिया गया है कि अब उसमें पुरुष उसकी स्त्री और उनके बच्चे ही होते हैं। संसार के उन्नतिशील देशों के कुटुम्बों में आज कल चाचाओं, चाचियों, चचेरे भाइयों, चचेरी बहिनों, बहिनोइयों और सालियों आदि को सम्मिलित नहीं किया जाता। भाषा भी साधारणता से विमिश्रितावस्था में विकसित नहीं हुई है। आरम्भिक भाषाओं और संस्कृत, यूनानी, लैटिन और अरबी जैसी प्राचीन भाषाओं की रचना अत्यन्त मिश्रित है, जब कि फ्रेंच, इंगलिश और हिंदी जैसी वर्तमान भाषाएं उनकी अपेक्षा अत्यन्त सुगम हैं। धर्म भी स्पेंसर के उस कथित 'नियम' को प्रमाणित नहीं करता। जैसा कि हेसिओड (Hesiod) के ग्रंथ 'देवताओं की वंशावली के वर्णन (Theogony)' और वेदों से प्रगट है प्राचीन धर्म में देवताओं के मिश्रित समूह और राक्षसों की पूजा की जाती थी। धर्म को बहुदेवतावाद से जोरोस्ट्रियन द्वैतवाद और सेमेटिक एकेश्वरवाद में सरल किया गया। प्राचीन काल के धार्मिक त्यौहार भी अत्यंत पेंचीले और दुःसाध्य थे। उस समय ब्राह्मण ग्रंथों में लिखे हुए वैदिक यज्ञ याग तथा यूनान और

रोम में भी अत्यंत रहस्यपूर्ण त्यौहार होते थे। किंतु वर्तमान धर्म में पूजन में भी सरलता की गई है, यहां तक कि केकर लोगों (Quakers) ने तो बपतिस्मा और ईसामसीह के स्मरण में किये जाने वाले पवित्र भोज (Communion) तक की उपेक्षा कर दी है। शासनपद्धति अवश्य ही सरलता से पेंचीली और कभी २ चक्करदार से सरल भी बनती जा रही है। इस प्रकार ऐथेन्स वासियों की प्रजातन्त्र प्रणाली, अपनी कौंसिलों, असेम्बलियों और जूरियों सहित रोमन साम्राज्यवाद की उस नौकरशाही (Bureaucracy) पद्धति से अधिक पेंचीली थी, जिसमें केवल अफसर ही अफसर थे। वर्तमान प्रजासत्तात्म सरकारें फिर पेंचीदगी की ओर ही जा रही हैं। इस प्रकार स्पेंसर का सामान्य नियम केवल आंशिक रूप में ही ठीक बैठता हैं।

कल्पित युगवाद का खण्डन

(ग) कुछ विचारशील व्यक्तियों ने समाज की एक व्यक्ति से और ऐतिहासिक युगों की मानवी जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाओं से तुलना करके एक सार्वसामान्य नियम निकालने का उद्योग किया है। पैस्कल (Pascal) ने कहा है, "मनुष्य के अनेक युगों के विकास को उस प्रकार का एक मनुष्य समझना चाहिये, जो सदा जीता तथा सदा अध्ययन करता रहता है।" सी० फौरियर ने इतिहास के अस्सी सहस्र वर्ष के काल्पनिक काल को मानवी अवस्था के कालों के अनुसार बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रोढ़ावस्था और वृद्धावस्था इन चार अवस्थाओं में विभक्त किया

है। सेंट साइमन और लाइटर (Littre) का विचार था कि बाल्यावस्था का प्रतिनिधि मिश्र, युवावस्था का यूनान, प्रौढ़ावस्था का रोम और वृद्धावस्था के प्रतिनिधि वर्तमान देश हैं। ए. टायनबी (A. Toynbee) ने इस समानता की विस्तारपूर्वक व्याख्या की है। वह कहता है, "पाश्चात्य सभ्यता के कीटाणु आरम्भ में यूनानी समाज के शरीर में इस प्रकार विकसित हुए जिस प्रकार गर्भ में एक बच्चा होता है। रोमन साम्राज्य गर्भ का समय था। 'अंधकार युग' (Dark Age) प्रसव का विषम समय था। मध्यकाल बाल्यावस्था का समय था। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों को तरुणावस्था का समय और सन् १५०० से लगाकर अब तक के समय को प्रौढ़ावस्था कहा जा सकता है।" मैं पूछता हूँ कि, "दांत निकलने, खसरा माता और शीतला का समय कौनसा था।" जे० डब्ल्यू ड्रेपर ने कहा है, सामाजिक उन्नति भी शारीरिक उन्नति के समान ही पूर्णतया "प्राकृतिक नियम के अनुसार होती है। व्यक्ति का जीवन राष्ट्र के जीवन का ही एक लघुचित्र है।"

इस प्रकार के सब हेतुओं को कवित्वमय रूपकों से बिगाड़ा गया है। समाज प्राणिविज्ञान के रूप में एक शरीर धारी नहीं है। क्योंकि समाज प्रथक् २ मस्तिष्क तथा इच्छी शक्तियों वाले अनेक आत्मानुभव रखने वाले स्त्री पुरुषों का बना हुआ होता है। अतएव अपने झगड़ों तथा गड़बड़ियों के कारण समाज बिलकुल छिन्नभिन्न होता है, उसकी एक व्यक्ति से तुलना करना

दार्शनिक दिवालियेपन का बड़े से बड़ा उदाहरण है। इस प्रकार की काल्पनिक उपमाओं के आधार पर समाजविज्ञान के सिद्धान्तों की रचना नहीं की जा सकती। यदि ऐसा ही करना है तो एक मोटे लड़के को 'फुटबाल' की उपमा देकर उसके विकास के नियमों का भी फुटबाल की रचना के नियमों से मिलान करना चाहिये।

आशावाद का खंडन

(घ) सब वस्तुओं से संसार की भलाई की आशा रखने वाले कुछ बिगड़े दिल आशावादियों ने 'उन्नति के नियम' को रचना की है। विकास के विचार का कुछ संक्षिप्त वर्णन एसकाइलस, यूरीपाइड्स्, अरस्तू, सेनेका, सिसेरो, वृद्ध प्लिनी, टरट्यूलियन, ब्रदर जेरर्ड, सेंटविक्टर के ह्यूगो, टाम्स ऐक्विनास रोजर बैकन, फ्रांसिस बैकन, रेने डेस्कारटींज, पैस्कल, तथा अन्य लेखकों के ग्रन्थों में किया गया है। किन्तु इसका स्पष्ट रूप से विषाद वर्णन प्रथम वार अठारहवीं शताब्दी के यूरोपीय विद्वानों ने ही किया है। बोडिन, चैस्टेलैक्स, सी० एफ० बोल्नी, ई० डब्ल्यू० लीबनिज़, मरसियर, वॉल्टेयर, रेस्टिफ डे ला ब्रेटोन तथा अन्य लेखकों ने प्रमाणित किया कि यूरोपीय राष्ट्र अनेक शताब्दियों में सभ्यता में उन्नति करते गये आवश्यक और क्रमबद्ध उन्नति का सिद्धान्त विशेष रूप से ए० आर० जे० टुर्गोट और एन० कैरिटैट डे कॉनडॉर्सेट का माना जाता है। टुर्गोट के 'मानवी मस्तिष्क की क्रमिक उन्नति' के ग्रन्थ में

उन्नति के विचार को 'इतिहास का सजीव सिद्धान्त' कहा गया है। उसने लिखा है, "मनुष्य का युग २ में उन्नति करते जाना सदा ही भिन्न २ प्रकार के दृश्य को उपस्थित करता है। विचारशक्ति मनोविकार औरस्वतंत्रता लगातार नयी घटनाओं का निर्माण करते रहते हैं।······मनुष्य जाति अपने सम्पूर्ण रूप में शान्ति और आन्दोलन के क्रमशः परिवर्तन, तथा भली और बुरी दशाओं से सदा ही धीरे २ अधिक पूर्णता की ओर बढ़ती रहती है।······आंधी के झोंके के समान, जो समुद्र की लहरों तक को आन्दोलित करता रहता है, क्रान्ति से प्रथक् न होने वाली दोष बुराई नष्ट हो जाती है, भलाई शेष रह जाती है और मनुष्य जाति अपने आपको पूर्ण बना लेती है।" कॉनडॉर्सेट (Condorcet) ने यूरोप के इतिहास का नौ युगों में विभाग किया है। क्रमिक उन्नति इन सभी युगों की विशेषता रही है और यह भविष्य में अनिश्चित उन्नति, पूर्ण समानता और मानवी पूर्णता के मार्ग पर ले जावेंगे। उसने कहा है, "मनुष्य की योग्यता की उन्नति की कोई सीमा निश्चित नहीं की गई है; मनुष्य की पूर्ण होने की योग्यता भी पूर्णतया अनिश्चित है; इस पूर्ण होने की योग्यता की उन्नति की-जो अपनी उन्नति की बाधक प्रत्येक शक्ति से कहीं ऊपर है,—सीमा भी पृथ्वी के गोले की आयु के अतिरिक्त और कोई नहीं है·····इस उन्नति की गति निःसंदेह चाहे कम या अधिक हो, किन्तु वह उल्टी नहीं हो सकती।" पाइरे लेरौक्स

(Piere Leroux) ने भी विश्व की उन्नति की अनिवार्यता और अवश्यम भावी के विषय में घोषणा की है। सेंट साइमन और ए० बौज़ार्ड ने उन्नति के मार्ग को इतिहास के सजीव और महत्वपूर्ण युगों में अनुसरण किया है। ए० कोम्टे ने अपने "मनुष्य जाति के धर्म" का उद्देश्य 'उन्नति' ही स्वीकार किया है। कैबैनिस, मैडेम डे स्टेल, वी० कज़िन, टी० एस० जाफ़री, एफ० आर० जी० गुइज़ॉट, जे० माइकेलेट, ई० क्वाइनेट, पेलेटैन, तथा अन्य लेखकों ने इस सिद्धान्त की पुष्टि करके उसको जीवित रखा है। एच० ए० टेने ने प्रारब्धवाद पर विश्वास करते हुए भी निश्चित रूप से अवश्यंभावी उन्नति में विश्वास प्रगट किया है। वैचरॉट और ई० रेनन ने भी इसी विश्वास में भाग लिया है। ए० फौइली ने ज्ञान, आत्म-निर्णय, और स्वतन्त्रता के विषय में मनुष्य की उन्नति पर ज़ोर दिया है। इंगलैण्ड में ए० फर्गुसन, जे० प्रीस्टली और डब्ल्यू० गॉडविन ने फ्रांसीसी विचारों का प्रचार किया। गॉडविन कहा करता था, "मनुष्य की पूर्ण होने की योग्यता के अतिरिक्त उसका और कोई गुण ऐसा नहीं है, जो उसको दूसरों से इतना विशेष बनाता हो अथवा जो समाचार विज्ञान की प्रत्येक शाखा में इतना अधिक महत्त्वपूर्ण हो।" राबर्ट ओवेन और आरम्भिक समाजवादी पक्के आशावादी थे। उनका उस प्रकार की निश्चयरूप से सामाजिक प्रणाली के शीघ्र ही स्थापित होने में विश्वास था जो "भविष्य के सभी युगों में मनुष्य जाति के लिये सुख का संचार करेगी।"

जर्मनी में जे० जी० हर्डर ने जो क्रमबद्ध उन्नति में विश्वास रखता था, भविष्यवाणी की थी, कि "मनुष्य जाति का फूल, जो अभी तक उसके कीटाणु रूप में ही बंद है, किसी दिन खिल कर मनुष्य के वास्तविक रूप में फूल उठेगा।" जे० ई० लेसिंग ने इतिहास की व्याख्या में उसको धर्मों की उन्नतिशील शृंखला का नाटक बतलाया है। कैंट ने अपने दर्शनशास्त्र में संसार के दुःख रूप होने के सिद्धान्त का वर्णन करते हुए भी "न्याय के आधार पर स्थापित होने वाले सर्वसामान्य सभ्य समाज" की स्थापना के लिये आशा प्रगट की है। जे० जी० फिच ने इतिहास का उल्लेख किये बिना ही स्वतन्त्रता के विषय में आवश्यक उन्नति के नियम का वर्णन किया है। उसके सिद्धान्त में आचारशास्त्र का मुख्य उद्देश्य उन्नति है। उसने इतिहास को पांच युगों में विभक्त किया है। उनमें से अन्तिम दो युगों में विज्ञान और कला की उन्नति का कारण 'सचेत और शासक विचार शक्ति' को माना गया है। हेगल ने भूतकाल के विभिन्न राष्ट्रों में उन्नति के कारणों को खोजते हुए निश्चय किया है कि यह विकास अब समाप्त हो चुका है। बक्ले केवल उन्नति की घटना को ही स्वीकार करके, उसके कारणों की छानबीन करने का ही प्रयत्न करता है। जान स्टुआर्ट मिल की सम्मति है कि इतिहास की साधारण प्रवृति उन्नति की ओर को ही है। हर्बर्ट स्पेंसर ने अपने आशावाद के सिद्धान्त का आधार विकासवाद के सिद्धांत को बनाते हुए कहा है, "विकास बड़ी से बड़ी पूर्णता की स्थापना

और अधिक से अधिक आनन्द में ही पूर्ण हो सकता है।…
…इस विषय में कोई दैवी घटना, अथवा कोई अवसर नहीं होता, किन्तु सब कहीं नियम और पूर्णता ही है।"

निराशावाद का खन्डन

यह तो पूर्ण विश्वास रखने वाले प्रसन्नमुख आशावादी हैं। इसके विरुद्ध, अनेक विचारशील व्यक्तियों का विश्वास लगातार होने वाले विनाश के नियम में ही हैं। वह संसार को दुःखमय जानने वाले ऐसे निराशावादी (Pessimists) हैं, कि उनको कोई सान्त्वना नहीं दे सकता। एक दूसरे प्रकार के विद्वान् क्रमशः एक बार उन्नति और फिर अवनिति होने के सिद्धांत में विश्वास रखते हैं। उनको अर्द्ध-निराशावादी (Semi-Pessimists) कहा जा सकता है। निराशावाद और अर्द्ध-निराशावाद दोनों में ही बड़े २ विद्वान् लेखक हैं। हिन्दू पडितों का विश्वास है कि पृथ्वी के आरम्भ में स्वर्ण युग अथवा 'सत्युग' था, उसके पश्चात् से पृथ्वी पर बराबर अवनति हो रही है। सत्य युग के पश्चात् त्रेता और द्वापर युग बीत कर अब कलियुग का समय है। हेसिओड भी चार युगों को ही मानता है, और उसका ढंग निराशावादी है। प्लैटो क्रमशः पूर्णता और विनाश के दो कालचक्र मानता है, जिसमें से प्रत्येक का समय ३६००० सौर वर्ष माना गया है। स्टोइक्स का कहना है कि "युगों में निश्चित समय पर प्रलय हुआ करती है, जिसमें सब वस्तुएं जल कर नष्ट हो जाती हैं, और पृथ्वी फिर उसी प्रकार की हो जाती है, जिस प्रकार वह

आरम्भ में थी, और यह सभी वस्तुएं एक ही बार अपने पूर्व रूप को प्राप्त नहीं करतीं। किन्तु प्रत्येक वस्तु असंख्य बार उसी रूप को धारण करती है।" अरस्तू राज्यों के स्वेच्छाचारिता अथवा एकतंत्र शासन, अल्पसत्ताक शासन, प्रजातन्त्र शासन और फिर इसी क्रम से एकतंत्र शासन में परिणित होने का वर्णन करता है। रोमन विद्वानों में से ओविड (Ovid) लगातार अवनति के चार युगों के प्रचलित विश्वास का वर्णन करता है, और वरजिल (Virgil) स्वर्ण युग का उल्लेख करता है। अरस्तू और पालीबियस का अनुसरण करता हुआ मकैवेली ने राजनीतिक उन्नति में युग परिवर्तन के सिद्धांत को स्वीकार किया। जी० बी० वाइको का विश्वास था कि प्रत्येक सभ्यता बर्बरता में समाप्त होनी चाहिये, और तब नवीन कल्प (युगों का समूह) फिर आरम्भ होगा। रूसो का सिद्धांत है कि सभ्यता पूर्णतया असफल सिद्ध हुई है, क्योंकि समाज का आरम्भिक युग से ही बराबर पतन होता जा रहा है। वॉलटेयर निराशावादी न होते हुए भी इतिहास को 'अपराधों, मूर्खताओं और दुर्भाग्यों का समूह' समझता है। टी० एच० हक्सले इतिहास का अध्ययन करके उदास हो गया। उसने निश्चय किया कि मनुष्य की आचार सम्बंधी उन्नति दुराचरण की नियम प्रणाली के रोकने पर निर्भर है। इस प्रकार वह कुछ २ निराशावादी था वह (स्पेंसर के विरुद्ध) कहा करता था, "विकासवाद का सिद्धांत उस काल की आशाओं को कुछ प्रोत्साहन नहीं करता, जिसमें प्रलय से सहस्र

वर्ष पूर्व-हज़रत ईसा संसार में स्वयं शासन करेंगे।" बाइरन ने इतिहास के विषय में निराशावाद के शब्दों का इस प्रकार वर्णन किया है—

"मनुष्य की सभी कहानियों का यह सारांश है कि यह स्थिति प्राचीन काल की स्थिति का दोहराना है। प्रथम स्वतंत्रता और फिर यश और कीर्ति। किंतु जब यह कम हो जाय तो धन, दुराचरण और व्यभिचार अंत में बर्बरता।"

यथार्थ सिद्धान्त

मैं निराशावादी, अर्द्ध-निराशावादी अथवा आशावादी नहीं हूँ। मैं अवनति के सिद्धांत को अथवा युग परिवर्तन के सिद्धांत को भी नहीं मानता। साथ ही साथ मैं उस सुंदर किंतु दैवाधीन सिद्धांत को भी नहीं मानता कि मनुष्य जाति सब युगों और सब देशों में लगातार उन्नति ही करती रही है और बराबर उन्नति ही करती रहेगी। उन्नति का इस प्रकार का कोई स्वाभाविक विश्वनियम नहीं है, जो हमारे चाहे जो कुछ करते रहने पर भी मनुष्य जाति के लाभ के लिये ही यत्नशील रहे। मेरा सिद्धांत है कि इतिहास एक खिचड़ी है; वह भिन्न २ देशों तथा भिन्न २ युगों में उन्नति तथा अवनति की एक मिश्रित गुदड़ी के दृश्य को उपस्थिति करता है। कुछ लोग किसी २ युग में किन्हीं बातों में उन्नति किया करते हैं तो किन्हीं दूसरी महत्त्वपूर्ण बातों में वही लोग अवनति भी किया करते हैं। उस युग के अंत में वह लोग अपने पूर्वजों से किन्हीं बातों में कम हो

जाते हैं और किन्हीं बातों में बढ़ जाते हैं। मैं पृथ्वी के प्रत्येक भाग में प्रत्येक शताब्दी और प्रत्येक दशाब्दी में एकसी उन्नति नहीं मान सकता। इतिहास से बराबर उन्नति के सिद्धान्त को लागू नहीं किया जा सकता। मनुष्य जाति यह कहने योग्य नहीं है, "हम प्रति दिन प्रत्येक प्रकार से बराबर उन्नति करते जा रहे हैं।" मनुष्य जाति की प्रगति सदा ही बिना नियम, बिना क्रम और आकस्मिक हुआ करती है। वह एक सरल रेखा, एक वृत्त, एक कुण्डल अथवा किसी निश्चित टेढ़े आकार की नहीं हुआ करती। स्त्री पुरुष जैसे ही गुणी अथवा ऐबदार, उद्योगी परिश्रमी अथवा आलसी, बुद्धिमान् अथवा मूर्ख, नया कार्य करने वाले अथवा रूढ़ियों के दास होते हैं, इतिहास भी उसी प्रकार का ऊँचा-नीचा, नीचा-ऊँचा, आगे-पीछे, दाहिने-बाएं, बाएं-दाहिने, नियम रहित और गड़बड़ सड़बड़ हुआ करता है। मैं मनुष्य के व्यक्तित्व की शक्ति को मानता हूँ। मैं उन्नति के इस प्रकार के रहस्यपूर्ण अटल नियम के अस्तित्व को नहीं मानता, जो व्यक्तित्व से स्वतन्त्र हो। यदि व्यक्तित्व को किसी उच्च श्रेणि तक उठाया जावेगा तो समाज भी सभ्यता में उन्नति करेगा। यदि व्यक्तित्व को निम्न श्रेणि में गिरने दिया जावेगा तो समाज का पतन होकर उसकी उन्नति रुक जावेगी। सभ्यता की तुलना एक बगीचे और व्यक्तित्व की माली से की जा सकती है। यदि माली परिश्रमी और सुशिक्षित कलाकार है तो बग़ीचे की सुंदरता और दर्शनीयता बढ़ जावेगी; किंतु यदि माली आलसी और मूर्ख है

तो उसकी फुलवाड़ी में घास पात और भटकटैया के पौदे भर जावेंगे।

अन्वीक्षण

अब भूतकालीन सभ्यता के गुण और दोषों के सम्बन्ध में संक्षेप से विचार करके उनकी उन्नति और पतन के कारणों पर प्रकाश डाला जावेगा। मैं इस अन्वेषण के परिणाम को संक्षेप से वर्णन करने का यत्न करूंगा, जिससे हमको शिक्षा मिलेगी कि व्यक्तित्व की कौन सी विशेषता अधिक से अधिक उन्नति करने में साधक है।

मिश्र और बैबीलोनिया

मिश्र और बैबीलोनिया ने इस कारण विशेष उन्नति की कि वहां की आर्थिक दशा सामाजिक विकास के बहुत अनुकूल थी, उन उपजाऊ देशों में खाद्य सामग्री सुगमता से मिल जाया करती थी। मिश्रा वासियों ने प्राचीन काल में कला (आलेख्य कला और वस्तु कला) और आचारशास्त्र में बड़ी भारी उन्नति की थी। किंतु सैनिकवाद, अन्धविश्वास और सामाजिक असमानता के कारण उनका पतन हुआ। पूजक वर्ग ने आरम्भ में तो विज्ञान को प्रोत्साहित किया, किन्तु बाद में उनका चापलूस तथा रूढ़िपंथी वर्ग के रूप में पतन हो गया और उन्होंने नीच पशु पूजा को प्रोत्साहित किया। भावी जीवन के असेब (भूत प्रेत) ने उनके इस जीवन की शक्ति और परिश्रम शीलता को शिथिल बना दिया। उनमें न तो कोई प्रजातन्त्र राज्य ही था और न दमन

के विरुद्ध कुछ बचाओ का उपाय ही थे। हम कुछ हड़तालों और विद्रोहों का वर्णन पढ़ते हैं किन्तु वह सब विशृंखलित थे। स्त्रियों का समाज में उच्च स्थान था और और वह स्वतन्त्रता का आंनद लेती थीं। जनता में व्यक्तिगत मान और स्वतन्त्रता के कोई भाव नहीं थे। अतएव, वह सामाजिक परतन्त्रता में ही संतुष्ट थे, और इसी कारण उन्हों ने वहां के राजाओं और रईसों के निर्दय अत्यचारों का कोई विरोध नहीं किया। मिश्र ने अनेक महात्मा और दार्शनिक उत्पन्न किये (प्ताह-हेप, ककेम्ना, हेरुतातफ, अनी, अमेन--हेतप)। बैबीलोनिया में भी इसी प्रकार के कारण उपस्थित थे। बैबीलोनिया वासियों ने विज्ञान (ज्योतिर्विज्ञान), कला (आलेख्य) और शासनपद्धति (हम्यूराबी की शासन प्रणाली) में अच्छी उन्नति की थी। मृत्यु के पश्चात् उनको अपने जीवन के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भय और दुःख होने की सम्भावना नहीं थी। वह अपने देवी देवताओं की पूजा करने में मिश्र वासियों जैसे ही धार्मिक थे। किन्तु मिश्र के समान यहां की सभ्यता की उन्नति में भी स्वेच्छाचारिता और पुरोहित वर्ग का घुन लग गया। हमको बारह राशियों के चिन्ह, वर्ष के बारह महीनों, घंटों और मिनटों में विभाग, और सात दिन के सप्ताह का ज्ञान बैबीलोनिया वासियों से ही हुआ है।

असीरिया

असीरिया में स्वार्थी और पाशविक साम्राज्यवाद ने आचारण को गिरा कर अवनति का दृश्य उपस्थित किया। किंतु

असीरिया वासियों ने बैबीलोनियन साहित्य के बड़े २ पुस्तकालय स्थापित किये। असीरियन साम्राज्य ने बैबीलोनिया की शिक्षा और सभ्यता को अपना कर उसका अपने निकटवर्ती राष्ट्रों में प्रचार किया। उसके सम्पर्क में यूनान भी आ गया। इस प्रकार अचानक ही इस साम्राज्य ने यह अत्यंत उपयोगी कार्य कर दिया। किन्तु अन्यायपूर्ण युद्ध से उसने स्वयं ही अपना विनाश कर लिया।

मिश्र तथा बैबीलोनिया की शिक्षा तथा सभ्यता का दूर २ तक प्रचार फिनीशिया वासियों ने भी किया। यह लोग बड़े भारी नाविक और व्यापारी थे। उनकी वर्णमाला यूनानियों और रोमनों के द्वारा हमारे तक पहुंची है।

प्राचीन ईरान

प्राचीन ईरान (पर्शिया) में जोरोस्ट्रियन धर्म के आधार पर एक उच्च कोटि की सभ्यता का विकास हुआ था। इस धर्म में एक धर्माचार्य की जीवनी अनुकरण करने योग्य आदर्श और धर्माचरण का स्थायी साधन थी। इस धर्म को यह बड़ी भारी सुविधा थी, क्योंकि उन्नति की नींव व्यक्तित्व ही हुआ करता है। इस धर्म ने द्वैतवाद के सिद्धांत का भी उपदेश दिया था, किंतु इसका यह कहना था कि अंत में पुण्य पाप के ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है। इस धर्म ने विचारों, शब्दों और कार्यों में पवित्र रहने की शिक्षा दी। यह कृषि का सम्मान करता और शारीरिक उन्नति तथा सत्य भाषण पर विशेष बल देता था। किंतु साथ ही यह धर्म असहिष्णु भी था। इसके प्रवर्तकों ने स्वर्ग, नरक, प्रलय

और न्याय के सम्बंध में अनेक अंधविश्वासों को प्रचलित कर दिया। बाद में यही अंधविश्वास इनसे इबरानी (Hebrews) लोगों में और वहां से ईसाई तथा मुसलमानों में फैल गये। इन अन्धविश्वासों का उत्पत्ति स्थान ईरान है। कई शताब्दियों तक यहां का आचरण सम्बन्धी मान ऊंचा रहा, किन्तु तौभी यहां किसी प्रजातन्त्र संस्था की स्थापना नहीं हुई। हेरोडोटस (Herodotus) इस बात का वर्णन करता है कि ईरानी लोग प्रजातन्त्र की अपेक्षा स्वेच्छाचारिता को क्यों अधिक पसंद करते हैं। परिसिपोलिस (Persepolis) के विशाल खण्डर, मणि (Mani) का जीवन चरित्र और उसके विचार, मिथरावाद (Mithraism) के तत्त्व, जिनको बाद में ईसाई मत ने अपना लिया, साइरस और नौशेरवां के नाम और कार्य, ज़ोरोस्टर के सिद्धान्त, फिरदौसी का महाकाव्य, और भारत के लोगों का सद् प्रभाव हमारे लिये ईरान के उपहार हैं। वहां के उच्च वर्ग की नैतिक शक्ति को साम्राज्यवाद ने नष्ट कर दिया और वहां की जनता अन्धविश्वासों और दासता के बन्धनों में जकड़ी गई। इसी कारण यह इतना बड़ा देश होते हुए भी मेसीडोनिया वासियों और अरबों का कोई मुक़ाबला न कर सका। ईरान वालों ने भारतवर्ष से कहानियों का साहित्य और शतरंज का खेल सीखा और फिर उसको यूरोप को सिखाया। ईरानी लोग शिक्षा तथा सभ्यता के पूर्णतया धारण करने वाले थे।

इबरानी लोग

इबरानियों को मूसा (Moses) जैसा अत्यन्त बुद्धिमान

मार्गप्रदर्शक तथा व्यवस्थापक मिल गया था। एकता का यह बन्धन सामाजिक ऐक्य और शिष्टाचार विधान के लिये अत्यन्त 'मूल्यवान् था। उनको दस आज्ञाएं भी दी गईं और सम्पूर्ण राष्ट्र को एक निश्चित धर्मशास्त्र मिल गया। उनमें कठोर स्वतन्त्रता के भाव थे, जिनका आभास उनके नियमों और उनके विद्रोहों से होता है। उनको मृत्यु के पश्चात आनन्द की अपेक्षा इस जीवन के सुख के लिये अधिक चिन्ता थी। उनको रोमन साम्राज्यवाद के प्रति आत्म बलिदान करके आग्रह-शहीद बनने का सम्मान प्राप्त हुआ था। जिस समय एशिया की लगभग अन्य सभी जातियां रोमनों के जूए के नीचे झुकी हुई थीं तो इबरानी लोगों ने उस प्रजापीड़कों से कई २ बार युद्ध करके अपने स्वातन्त्र्य--प्रेम का मूल्य चुकाया। उन्होंने ईसा, अमोस, तथा अन्य अनेक सुन्दर वक्ता धर्मचार्यों के ऐसे समूह को उत्पन्न किया, जिनकी रचनाओं को (उनके ईश्वरवाद के शब्दों में लिपटी होने पर भी) पढ़ने से अब भी लाभ ही होता है। उच्च कोटि के इबरानी विद्वानों के द्वारा ही सार्वभौम समाज और विश्वशान्ति के विचार का विकास किया गया था। सभी दिखावटी रीति रिवाजों और उत्सवों की व्यर्थता का सिद्धान्त भी इन्होंने ही चलाया था। किन्तु साथ ही साथ असहिष्णु एकेश्वरवाद और उसके भयंकर परिणामों का उत्तरदायित्व भी इबरानियों पर ही है। उन्होंने ईरानियों और बैबीलोनिया वासियों से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण करके उसकी

शिक्षा ईसाइयों को दी। रविवार की छुट्टी, ईसा और पाल के उत्तम कार्यों, टालमुड * (Talmud) के उत्तम आचरणशास्त्र का का श्रेय इसी जाति को प्राप्त है। उनका धर्म उनको दान और पवित्रता की शिक्षा देता है। पृथ्वी के अनेक भागों में त्रिखर जाने, बड़ी २ संख्याओं में मारे जाने, सबसे प्रथक् किये जाने और बड़े २ कष्ट भोगने पर भी इब्रानी लोग अब भी जीवित और परिश्रमी हैं। वर्तमान संगीत, विज्ञान, और समाजवाद के बहुत कुछ वही प्रवर्तक हैं। दर्शनशास्त्र में उन्होंने स्पिनोज़ा जैसे अत्यंत प्रिय व्यक्ति को दिया है। मैमोनाइड्स्, मैंडलेसान, मार्कस और ईन्स्टीन इसी जाति ने पृथ्वी को उपहार में दिये हैं।

इब्रानियों का इतिहास प्रगट करता है कि अच्छे नेता, पूर्ण परिभाषाओं वाला आचरणशास्त्र, इह-लौकिक उद्देश्य (Creed) एक जीवित ऐतिहासिक दन्त कथा, और मौलिक विचारों की एकता एक जाति को बड़े २ कार्य करने योग्य बना देते हैं।

प्राचीन मेक्सिको

प्राचीन मेक्सिको वासी बड़े २ निर्दय अंधविश्वासों के दास बने हुए थे। वहां की युद्ध करने वाली जातियां अपने क़ैदियों को देवताओं पर भेंट चढ़ाया करती थीं। साम्राज्यवाद के कारण वहां सदा ही थोड़े बहुत झगड़े होते रहते थे। किसी परिमाण तक वहां भौतिक शिक्षा तथा सभ्यता का विकास भी हुआ था, और मंदिर, नहरें, तथा बांध भी बन गये थे।

---

* प्राचीन यहूदियों का धर्मशास्त्र।

ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन चित्रों द्वारा रक्खा जाता था। किंतु कोरटेज़ (Cortez) लोगों ने इनको सुगमता से पराजित कर दिया, क्योंकि यहां का ऐज़टेक समाज (Aztec Society) अंधविश्वासों और राजनीतिक अत्याचारों के कारण अत्यंत निर्बल हो गया था। यहां तक कि ट्लैक्सकैलैन (Tlaxcalans) लोगों ने तो कोरटेज़ लोगों को सहायता भी दी। पेरू (Peru) में इंकस (Incas) नाम की एक पहाड़ी जाति ने टिआहुआनोको (Tiahuanoco) लोगों की प्राचीन सभ्यता का विकास करके एक साम्राज्य की स्थापना की। वह सूर्य की पूजा किया करते थे और अपनी प्रजा को भी अपने ही धर्म का पालन करने को विवश किया करते थे। उन्होंने कुज़को (Cuzco) में सूर्य देव का एक बड़ा मंदिर बनाया था; आज इसी मंदिर की नींव पर वर्तमान गिर्जा बना हुआ है। मिश्रवासियों के समान यह भी अपने राजाओं के मृतक शरीरों को मसाले लगा कर यत्न पूर्वक रक्खा करते थे। यह मृतकों को सुरक्षित रखने के सिद्धान्त कोअत्यंत महत्त्व दिया करते थे। वह एक प्रकार के ऐसे समाजवादी शासन में रहते थे, जिसका प्रबन्ध नौकरशाही के हाथ में था। देश की समस्त उत्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति थी और प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ कार्य अवश्य करना पड़ता था। इस प्रकार राज्य के लिये आवश्यकता के अनुसार अन्न उत्पन्न कर लिया जाता था, और किसी को भी भूख और निर्धनता का कष्ट नहीं होता था। किन्तु उनमें राज्य का निरीक्षण

अत्यन्त कठोर था और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर वास्तव में बहुत कुछ बंधन लगा हुआ था। लड़ाई–झगड़ों और ईर्ष्या ने इस राज्य को निर्बल बना दिया, जिससे पिज़ारो (Pizarro) ने लाभ उठाया। इस राज्य की अवनति भी अंधविश्वास और स्वेच्छाचारिता से ही हुई।

चीन

चीन में एक ऐसी दृढ़ और उन्नतिशील सभ्यता का विकास हुआ, जो अभी तक जीवित है। चीन में वहां के निवासियों के सौभाग्यवश उनकी सभ्यता के विकास के आदि में ही कई एक बड़े २ नेता उत्पन्न हो गए। अंत में कॉनफ्यूसियस ने अपना धर्मशास्त्र (Ehtical Code) बनाकर चीन वासियों को दिया। वह अंधविश्वासी नहीं था। उसने केवल सामाजिक कर्तव्यों और व्यवहारिक आचरण की ही शिक्षा दी। उसने आर्थिक उन्नति और शिक्षा के महत्त्व पर विशेष बल दिया। वह उन थोड़े से धर्माचार्यों में से एक है, जो विद्वान् और विद्याप्रेमी थे। उसने एक वर्ग विद्वान् दार्शनिकों का बनाया, इनको राज्य के प्रबन्ध का भार दिया गया। यह विचार हमारे लिये चीनी सभ्यता का एक बड़ा भारी उपहार है। बुद्धि के साथ उच्च कोटि का आचरण भी होना चाहिये, इन दोनों का ही उपयोग राज्य की सेवा में किया जाना चाहिये। किन्तु कॉनफ्यूसियस ने प्रजातंत्र शासन की उपेक्षा की। उसने प्रजातंत्र सत्ता वाली संस्थाओं की स्थापना नहीं की। इस प्रकार उसके शासक दयालु किन्तु स्वेच्छा-

चारी थे। सार्वजनिक शासन प्रणाली के अभाव के कारण ही उनका पतन हुआ। चीन के समाज में प्रजातन्त्र शासन की भावना बहुत गहरी है। किन्तु वह भावना राजनीतिक संस्थाओं में नहीं आई। कॉनफ्यूसियस के सिद्धांत को स्वेच्छाचारिता ने खण्ड २ कर डाला। किन्तु चीन सुंग वंश के अंत तक उन्नति करता रहा। कॉनफ्यूसियस ने कुटुम्ब के महत्त्व को बहुत अधिक बतलाया था, इस कारण वहां की जनता में सार्वजनिक कार्य करने की मनोवृत्ति विकसित नहीं हुई। कुटुम्ब के प्रति कर्तव्य का भाव अत्यंत तेज है, किन्तु नागरिकता के आदर्श की वहां अधिक प्रशंसा नहीं की जाती। पूर्वजों की पूजा ने इस राष्ट्र को रूढ़ियों का उपासक बना दिया है। चीन ने भूतकाल में स्त्रियों के सम्बन्ध में बड़े २ साहसपूर्ण प्रयोग किये हैं। नाटक ने जनता पर स्थायी प्रभाव डाला। चीन की चित्रकारी संसार के लिये एक उच्चकोटि का उपहार है।

ताओवाद (Taoism) ने चीन में हानिप्रद रहस्यपूर्ण विचारों का प्रचार किया। किन्तु यह सम्प्रदाय कॉनफ्यूसियस-वाद की अपेक्षा अधिक मनुष्योचित (Humane) और सार्व भौमिक है। बाद में इसका जादू टोने के रूप में पतन हो गया। कॉनफ्यूसियस-वाद मुख्यरूप में बुद्धिमत्तापूर्ण और योग्य धर्म है, किन्तु इसमें ऐसे नैतिक उत्साह और जोश की कमी है, जिससे धर्माचार्य और महात्मा बना करते हैं। इसके अतिरिक्त यह सार्वभौम सिद्धांत नहीं है; वास्तव में यह चीन का राष्ट्रीयवाद है, जो एक

सम्प्रदाय के रूप में सुसंगठित है।

चीन का इतिहास हमको शिक्षा देता है कि समाज के लिये बुद्धिमान् धर्माचार्य द्वारा स्थापित किये हुए सुसंगठित सार्वभौम धर्म का होना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। व्यक्तित्व जनता को एकता के सूत्र में बांध कर उसको अपने व्यापक प्रभाव के द्वारा उच्च आसन पर स्थापित करता है। कुटुम्ब की एकता और स्थिरता भी अवनति और अनियम के विरुद्ध रक्षक है। सामाजिक उद्देश्यों के लिये स्वयं ही अपनी इच्छा से एक होकर कार्य करना अनेक गुणों का मूल कारण है। उन्नति का आवश्यक साधन होने के कारण सभाओं के विषय में इस स्वतन्त्रता की सदा ही रक्षा की जानी चाहिये। अंधविश्वास ने विशेषरूप से बौद्ध धर्म और ताओवाद से उत्पन्न होकर चीन में पैर जमा लिये, इसी के कारण उसकी प्राचीन सभ्यता का पतन हुआ। अन्य उन्नतिशील सभ्यताओं से सम्बन्ध स्थापित न करने से भी चीनी शिक्षा और सभ्यता की उन्नति न हो सकी। एकान्त सेवन से अवनति शीघ्र होकर समाज में जड़ता उत्पन्न होती है। यद्यपि समाज विरोधी और विदेशी धर्म होने के कारण यहां बौद्ध धर्म पर सन् ४२६-५१, ५६०, और ७१४ में बड़े २ अत्याचार किये गये, तौभी वहां धार्मिक स्वतन्त्रता और सहिष्णुता का प्रचार हो ही गया। वहां एक ऐसी प्रशंसनीय विद्युत जैसी भावना की लहर फैल गई है जिसके कारण एक चीनवासी कॉनफ्यूसियनवाद, बौद्ध धर्म और ताओवाद सभी से पूर्ण लाभ उठा

सकता है। कुछ अन्य धर्मों वाले विदेशियों का कहना है कि चीन का धर्म 'कनफ्यूसियनवाद' है। विभिन्न आत्मिक सिद्धान्तों में से किसी एक सिद्धान्त को चुनने के अधिकार का चीन एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

भारतवर्ष

भारतवर्ष में हिन्दू जनता की शक्ति और वीरता के कारण एक उन्नतिशील सभ्यता का विकास हुआ। हिन्दू लोग दो गुणों-वीरता और सत्य—की विशेष मात्रा में प्रशंसा किया करते थे। उन्होंने दो युग काव्यों में अपने महा पुरुषों के जीवन-चरित्रों को सुरक्षित रखा है। यह दोनों युग काव्य अभी तक नैतिक शिक्षा के बड़े भारी साधन हैं। उन्होंने राम को आदर्श मनुष्य के रूप में उपस्थित करके जनता की प्रशंसा का पात्र बनाया है। उसको सभी विषयों में पूर्ण विकसित व्यक्तित्व वाला अत्यंत पराक्रमी, अत्यंत सुन्दर, महान् मेधावी और उज्वल तथा प्रतापी आचरण वाला वर्णन किया गया है। प्राचीन हिंदुओं का आदर्श भी वही था जो यूनानी लोगों का था। राम के चरित्र से गार्हस्थ्य कर्तव्य दृढ़चित्तता के उच्च आदर्श की शिक्षा दी गई है। हिन्दुओं ने धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धान्त का भी विकास किया था। सम्राट अशोक ने उसको अपने धर्मलेखों में स्थान २ पर वर्णन किया है। ईसा पूर्व दो सौ वर्ष और उस समय के पश्चात् हिन्दुओं और बौद्धों ने किसी को भी उसके सिद्धान्तों और पूजन के लिये कष्ट नहीं दिया। अपनी इसी सहनशील

प्रवृत्ति के कारण वह सातवीं शताब्दी में ईरान से भाग कर भारत आने वाले पारसियों को शरण दे सके थे। इस समय ज़ोरोस्ट्रियन धर्म जीवित धर्म के रूप में ईरान की अपेक्षा भारत में अधिक फैला हुआ है। जातिभेद की प्रथा, बहुत समय तक देश में आन्तरिक शान्ति, धन के बढ़ जाने, उच्च जाति वालों तथा पुरोहितों के भोग विलास तथा दुराचरण, स्वेच्छाचारी शासन-प्रणाली, और केन्द्रीय शासन प्रथा के अभाव के कारण ईसा की तेरहवीं शताब्दी में हिन्दू राज्य प्रणाली का कुछ पतन हुआ, इस समय अफ़ग़ानों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करके मुसलिम राज्यों की स्थापना की। मुसलमानी राज्य में, विभिन्न धार्मिक सुधार के अनेक आन्दोलन हुए, जिनका उद्देश्य जातिवाद तथा पुरोहित वर्ग को उखाड़ फेंकना था। इस समय बड़ी २ विशाल इमारतों ने देश को सजा दिया था। यह अफ़ग़ानों और मुग़लों की निर्माण विद्या भारत को सभ्यता के लिये बड़ा भारी उपहार है। मुग़ल सम्राटों के अत्याचारों के विरोध स्वरूप विदेशी राज्य के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन किया गया, जिससे देश के एक बड़े भाग पर सिक्खों और मरहटों के आन्दोलन ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की स्थापना कर दी। सिक्ख आन्दोलन में राजनीतिक क्रांन्ति के साथ २ धार्मिक तथा सामाजिक सुधार भी थे, इस विषय में यह धर्म पूरीटन सम्प्रदाय (Puritanism) से मिलता जुलता है। पिछले दिनों भारत पर ब्रिटिश सभ्यता के धक्के ने नये २ आन्दोलन और विचार धाराओं को उत्पन्न कर दिया। भारतवर्ष सदा से ही

भक्ती योग और अध्यात्मिक अद्वैतवाद का घर रहा है। यह अद्वैतवाद सहिष्णु किन्तु आलसी और समाज विरोधी सिद्धान्त है। इस दर्शनशास्त्र द्वारा प्रचार किया हुआ आलसी 'अध्यात्मवाद' भारत के मध्य युग तथा वर्तमान युग में पतन का एक मुख्य कारण है। पुरोहित वर्ग तथा स्वेच्छाचारिता पूर्ण शासन प्रणाली ने जनता को अनेक शताब्दियों से अपने बन्धन में बांधा हुआ है। भारतीय जनता का एक बहुत बड़ा भाग शाकाहारी है। यद्यपि नगरवासियों को शाक भोजन से संभवतः लाभ ही लाभ नहीं हुआ है तौभी इसने जनता को कोमल, नम्र और दयालु बना दिया है।

यूनानी लोग

प्राचीन संसार में यूनानियों का इतिहास अत्यन्त कौतुकमय और महत्त्वपूर्ण है। यूनान ने मनुष्य जाति को सब से उत्तम युग काव्य और नाटक, सब से उत्तम आलेख्य विद्या, और सब से उत्तम दर्शन शास्त्र दिया है। उन्होंने बड़े २ उत्तम महल, वत, गीत्कृत्व कला तथा इतिहास की रचना की। उन्होंने रेखा गणित, चिकित्सा विज्ञान और यंत्र विद्या का विकास किया। उसका दर्शन शास्त्र विश्वभ्रातृत्व, न्याय, स्वतंत्रता और विज्ञान के महत्त्व पर विशेष बल देता है। उसने विश्वभ्रातृत्व के विचार वाली नागरिकता के विचार को भी पूर्ण कर लिया है। यद्यपि यूनानी लोग संकट के समय कुछ संघ शासन बना लिया करते थे, किन्तु वह राजनीति में नगर-राज्यों से आगे नहीं बढ़े। उनके नगर

सदा ही एक दूसरे के साथ युद्ध करते रहते थे; उनक युद्ध के नियम निर्दयी और बर्बर थे। दासप्रथा को सार्वजनिक रूप में स्वीकार किया जाता था। यहां तक कि एक वार प्लेटो भी दास के समान बेच दिया गया था। वह लोग धनी और निर्धनों के वर्ग युद्ध की समस्याओं को अच्छी तरह समझते थे। उनमें समाजवाद और साम्यवाद के सिद्धांतों पर स्वतन्त्रता पूर्वक वाद विवाद किया जाता था। चीन के समान, संगीत को शिक्षा के विषय के रूप में बड़ा महत्त्व दिया जाता था। दास प्रथा, आंतरिक युद्ध, अस्वाभाविक मैथुन (Homosexuality), तथा निर्बल और पीड़ित के लिये दया का अभाव यूनानी सभ्यता के दोष थे। किन्तु यूनानी सभ्यता वास्तविक सभ्यता का मेरु दंड है। इसको बौद्धधर्म, ईसाई धर्म, और वर्तमान विश्वभ्रातृत्व के भाव की सहायता से केवल विकसित और पूर्ण किया जा सकता है, जिससे इसको भावी सभ्यता का ज्ञान तथा आचरण सम्बन्धी आधार बनाया जा सके।

रोमन लोग

रोमन लोग वास्तव में निर्दयी डाकुओं का एक सुसंगठित समूह ही थे। रोमन 'सभ्यता' केवल निर्दय और उन्मत्त पराक्रमियों और इन्द्रियलोलुप्तों के उजड्ड और घृणापूर्ण ढांच पर यूनानी शिक्षा तथा सभ्यता का हल्का पत्तर मात्र ही थी। किन्तु उन्होंने राजनीतिक संगठन की घटना और विचार को संसार के सन्मुख उपस्थित किया। उन्होंने राष्ट्र के हित के लिये व्यक्ति के हित की आवश्यक आधीनता की शिक्षा भी दी। रोमन साम्राज्य की

एकता इटली की जनता का वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण कार्य थी। स्टोइक्स (Stoicks) तथा ईसाइयों के प्रचार किये हुए विश्वभ्रातृत्व के आदर्श को केवल इस प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय राज्य के विधान में ही कार्य रूप में परिणित होता हुआ देखा जा सकता था, जैसा कि यह साम्राज्य अपने विकासकाल में हो गया था। जिस समय सीनेट में गाल लोगों को स्थान दिया गया तो संसार में एक नये राजनीतिक सिद्धांत को लागू किया गया। नागरिकता को जाति तथा राष्ट्रीयता की सीमा को तोड़ने वाला समझा गया। रोमन लोगों ने भूमध्यसागर के पूर्व की जातियों का भी एक राज्य बना दिया, जब कि ईसाई लोग उनको सामाजिक रूप से एक जाति बना रहे थे। इस प्रकार बैज़नटाइन राज्य का जन्म हुआ, जो भद्दा और विषैला होते हुए भी यूनानी साहित्य और दर्शनशास्त्र के अमूल्य रत्न को अपनी राजधानी कुस्तुनतुनिया में धारण किये हुए था। सन् ५२६ ई० में एथेन्स की शिक्षा संस्थाओं के बंद हो जाने पर यूनानी शिक्षा केवल कुस्तुनतुनिया विश्वविद्यालय और थोड़ी सी नेस्टोरियन लोगों द्वारा एडेसा में ही जीवित रखी जा सकी थी। कुस्तुनतुनिया से यूनानी शिक्षा के उपहार को इटली ने चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में लिया, और वर्तमान सभ्यता आरंभ हो गई। इस प्रकार फ्लोरेंस कुस्तुनतुनिया के द्वारा रोम और एथेन्स से जुड़ा हुआ है। लैटिन भाषा को ल्यूक्रेटियस (Lucratius) के बड़े२ ग्रंथों का अभिमान है, युक्तिवाद (Rationalism) का केवल एक यही उत्तम काव्य है। राजनी-

तिक अत्याचार, आर्थिक शोषण, शासन सम्बंधी लूट, उजड्ड तथा निर्दय आमोद प्रमोद, अदम्य सैनिकवाद और सार्वजनिक अंधविश्वास रोमन 'सभ्यता' के दोष थे। ट्यूटोन लोगों द्वारा (जो बर्बर नहीं थे) पश्चिमी साम्राज्य का विध्वंस किया जाना एक शुभ लक्षण तथा उन्नति का चिन्ह था।

पूर्वीय रोमन साम्राज्य

पूर्वीय रोमन साम्राज्य यूनानी सभ्यता का बेपर्वाह संरक्षक था। किन्तु यह अनेक शताब्दियों तक * सैरासीन (Saracens) और तुर्क लोगों के विरुद्ध यूरोप का गढ़ बना रहा। यदि एशिया के मुसलमान यूरोप में धर्म प्रचार करने वाले व्यापारिक मध्यवर्ग के उत्पन्न होने से पूर्व ही कुस्तुस्तुनिया पर अधिकार कर लेते तो संभवतः यूनानी हस्तलिखित ग्रंथ नष्ट हो जाते। उस समय यूनानी शिक्षा का उसी प्रकार लोप हो जाता, जिस प्रकार ईरान में जोरोस्ट्रियन साहित्य का लोप होगया। इस प्रकार बाइज़ैनटियन राज्य ने इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, जिसके लिये हमको उसका कृतज्ञ होना चाहिये। बाइज़ैनटाइन के ईसाई प्रचारकों ने रूस और स्लैव लोगों को ईसाई बनाया, जिससे यह बर्बर जातियां अन्य यूरोपीय राष्ट्रों के साथ एक पंक्ति में लाई जा

---

* सेरासीन लोग अरब का एक कबीला था मध्ययुग में पूर्वीय रोमन साम्राज्य की ओर से वह लोगों के विरुद्ध यूरोप के गढ़ का काम देते थे। छटी शताब्दी में यह लोग मुसलमान होगये।

सकीं। रूस के ईसाई गिर्जे ने जनता को नम्रता तथा दान के साधारण गुणों की और मनुष्य जाति की भलाई के लिये धर्म पर प्राण त्याग करने और आत्म-निषेध के उच्च गुणों की शिक्षा दी। ईसाई धर्म ने ही हर्जेन, टालस्टाय तथा क्रांति के अन्य समाजवादी नेताओं के लिये मार्ग साफ किया। इस प्रकार रक्त मास्को बाइज़ैनटाइन साम्राज्यवाद से संबधित है। इटली में कल के आरंभ का भी बाइज़ैनटाइन के आदर्शों से (उदाहरणार्थ सिमैब्यू की मरियम की मूर्ति) घनिष्ट संबन्ध है। कुस्तुन्तुनिया ने ही बग़दाद के अरब शासकों को यूनानी विद्वान् दिये थे, और इस प्रकार यूनानी पुस्तकों का अरबी में अनुवाद हुआ। बाइज़ैनटाइन वासियों ने इस्लामी देशों में भी ईसाई धर्म का प्रचार किया था, किन्तु कट्टर मुसलमानों ने यूनानियों के इस आन्दोलन का दमन कर दिया, जिससे यह इस्लाम समाज में अपना कुछ फल प्रगट न कर सका। स्वेच्छाचारिता, नौकरशाही, जमींदारी प्रथा, असहिष्णुता, ईश्वरवाद पर अत्यधिक बल देना और मूर्ख मठवाद बाइज़ैनटाइन सभ्या के दोष थे।

मध्यकालीन यूरोप

मध्यकालीन यूरोप के इतिहास को 'अन्धकार युग' और 'बिना स्नान के सहस्र वर्ष' कहा जाता है। किन्तु पाश्चात्य साम्राज्य के पतन और इटली के विद्या प्रचार काल के बीच के समय को बड़े २ आश्चर्य जनक कार्य करने का श्रेय दिया जाता है। उस समय एक नये ढंग के नैतिक सौन्दर्य का विकास हुआ था।

यह दोष पूर्ण होते हुए भी अपने ढंग पर बड़ा सुन्दर था। सन् ५२६ में सेंट बेनीडिक्ट ने मौंटे कैसिनो में अपने मठ की स्थापना की। अब बेनीडिक्ट का अनुयायी प्रत्येक साधू अपने जीवन को सरलता, शारीरिक श्रम, अध्ययन और शिक्षा का उदाहरण बनाने लगा। वह यूनानीवाद और ईसाईवाद की कुछ सब से अच्छी बातों को भी सम्मिलित कर लेते थे। उनके हाथ में ईसाई वाद एक उन्नतिशील आन्दोलन था, उसी समय उन्होंने उत्तरी यूरोप के राष्ट्रों को ईसाई धर्म में दीक्षित किया था। उस निर्दयता के युग में उनके आश्रयस्थान और अस्पताल सामाजिक दया के नये भावों को जागृत करते थे। उस युग में सन्तान निग्रह के वर्तमान कृत्रिम साधनों के अज्ञात होने से निःस्वार्थी दार्शनिकों को ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करना पड़ता था। कुछ निर्धन स्त्री पुरुषों को सर्व साधारण प्रति दिन के परिश्रम के कष्ट से बच कर मठों में शरण मिल जाती थी, जहां वह साहित्य, कला और विज्ञान की उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करते थे। मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में ईसाई सम्प्रदाय एक प्रजातंत्र संस्था थी। क्यों कि उस समय जनता का संगठन राजाओं और ज़मींदार सैनिक वीरों का विरोधी था। उस समय एक निर्धन किसान का लड़का भी पोप के उस उच्चतम पद को प्राप्त कर सकता था, जो बड़े २ धनी व्यक्तियों पर नियंत्रण रखता था। उसके कुछ समय के पश्चात् गिर्जे के अधिकारी महन्तों ने अत्याचारी वर्ग से मित्रता कर ली। किन्तु कैनोसा नगर का निर्माण प्रजातंत्र प्रणाली की विजय थी,

क्लर्क लोगों की नहीं। उस समय प्रजातंत्र प्रणाली को धार्मिक संस्थाओं और पूर्वजों की नौकरशाही संस्थाओं में ही लागू किया जा सकता था। उस प्रजातंत्र तथा सामाजिक एकता वाली जनता के दृश्यमान् अन्तिम स्मृतिचिन्हों के रूप में गोथों के बड़े गिर्जों को देखा जा सकता है, जिनकी अनिद्य सुन्दरता और शान का मुकाबला कोई वर्तमान इमारतें नहीं कर सकतीं। उनकी सुन्दरता और शक्ति का रहस्य यह है कि वह नागरिकों के प्रजातंत्र और आचारशास्त्र सम्बन्धी आदर्श का प्रतिनिधित्व करते थे। श्रद्धा, आशा और प्रेम उस का सारांश थे। जिस समय कोई नगर बड़ा होकर उन्नति करता था तो वह अपने को सैनिक जमीदारी प्रथा के अत्याचारों से छुड़ा कर अपने यहां एक विशाल गिर्जा बनाता था। इस गिर्जे में ही नगर को सामाजिक क्लब, उपासना मंदिर, संगीत गृह, चित्रशाला, स्कूल और कालेज सब एक स्थान में होते थे। इन गिर्जों को मेथाडिस्ट छोटे गिर्जों (Methodist Chapel) के समान केवल धार्मिक इमारत ही समझना बड़ी भारी भूल है। वह सामाजिक इमारतें थीं, जिनमें जाति के सम्पूर्ण जीवन का केन्द्र था। उन्होंने उस सामाजिक ऐक्यता प्राप्त करली थी, जिसकी, खेद है कि हमारे में आजकल बड़ी भारी कमी है। नगरों के मध्यवर्ग ने भी पैरिस और आक्सफोर्ड में जनतंत्र विश्वविद्यालयों की स्थापना की। इन संस्थाओं में निर्धन विद्वानों को प्राचीन यूनानी ग्रन्थों के उस लैटिन अनुवाद को पढ़ाया जाता था, जो अरबी

अनुवाद से कारडोवा (Cordova) में किया गया था। इस प्रकार यूरोप में प्रथमवार थोड़ासा जागृति प्रचार किया गया। आक्सफोर्ड और पेरिस कोरडोवा, बग़दाद, कुस्तुनिया और रोम के द्वारा ऐथेन्स से सम्बन्धित हैं। शान्ति के उस बड़े भारी प्रचारक सेंट फ्रांसिस के द्वारा जिस जनतन्त्र प्रणाली और सामाजिक आन्दोलन का प्रचार किया गया था, उसका कुछ समय के लिये अत्याचारी वर्ग के हृदय में आतंक छा गया। किन्तु उनको अपने आर्थिक कार्यक्रम को छोड़ने के लिये विवश होना पड़ा। मध्यकालीन समाज में धन और कार्य को पूजा का पवित्र विषय नहीं समझा जाता था। जनता अपने पास सुख सामग्री कम होने पर भी बहुत सी छुट्टियां मनाया करती थी।

स्वेच्छाचारिता, सैनिक जमींदारीप्रथा, दासप्रथा, युद्ध, विज्ञान का अज्ञान, अन्धविश्वास, गन्दगी, महामारी, असहिष्णुता अत्यधिक अधिकार, और पतित मठ प्रथा मध्यकालीन सभ्यता के दोष थे।

इस्लामी सभ्यता

इस्लामी सभ्यता, जिसका आरम्भ सातवीं शताब्दी में अरबों की विजय के साथ हुआ, धर्म तथा पूजन की एकता के आधार पर निर्माण की गई थी। इसी कारण इस सभ्यता का धर्म असहिष्णुता है। वह ख़लीफ़ा अल-मामून के आरम्भ किये हुए यूनानी जागृति प्रचार को भी न अपना सकी। कट्टरता ने स्वतंत्र विचार के ऊपर विजय प्राप्त की और इस्लामी राष्ट्र

अनुद्योगी ही बने रहें। इस समाज में भी चीन के समान थोड़े से प्रजातन्त्र भावों का उदय हुआ। किन्तु राजनीतिक प्रजातन्त्र का इनको पिछले दिनों तक पता नहीं था। पैग़म्बर मुहम्मद की मूर्तिपूजा को फिर न होने देने की अभिलाषा तथा एकेश्वरवाद के कारण इन लोगों को आलेख्य कला (Sculpture) और चित्रकारी भी न आ सकीं। मद्यपान के निषेध ने इस सभ्यता की साधारण जनता को संयमी और मितव्ययी बना दिया। यदि मुसलमान लोग अपने लिये उतनी ही चिन्ता कर लेते, जितनी वह "खुदा" के 'प्रताप' और 'सम्मान' की करते हैं तो वह एक अत्यन्त सुन्दर सभ्यता का निर्माण कर सकते थे; क्योंकि उनमें सरलता, भ्रातृभाव और दान शीलता विद्यमान हैं। स्त्रियों के कठोर पर्दे के कारण इस्लामी समाज का बहुत कुछ पतन हो चुका है। वहां बड़े २ क्षेत्रों में प्रेम का केवल इन्द्रिय सम्बन्धी रूप ही है। अनेक शताब्दियों तक वैज्ञानिक अध्ययन में बाधायें पहुँचाई गईं और कला तथा शिल्पविद्या मंदी पड़ी रहीं। ईरान में बहाई सम्प्रदाय इस्लाम का कट्टर प्रतिपक्षी प्रमाणित हुआ। यहां फ्रांसिसी साहित्य और दर्शनशास्त्र ने इस्लाम के विरुद्ध विद्रोह की भावना को सहायता दी। टर्की ने प्राचीन ख़िलाफ़त को तोड़ डाला और मुस्लिम कानून को जो मध्यकाल का वास्तव में स्मारक चिन्ह था, बंद कर दिया। इस समय मुसलमानी राष्ट्रों में बड़ी शीघ्रता से युक्तिवाद (Rationalism) उन्नति कर रहा है। अन्धविश्वास, असहिष्णुता, स्वेच्छाचारिता, ज़मींदारी प्रथा,

नौकरशाही, जातिवाद और सार्वजनिक शिक्षा का अभाव मुस्लिम सभ्यता के दोष हैं।

वर्तमान युग

वर्तमान सभ्यता का आरम्भ इटली में पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में जागृति प्रचार के आन्दोलन से हुआ। इसका आरम्भ हेलेनिक सभ्यता (Hellenic culture) कला, साहित्य, इतिहास और यूनान के दर्शनशास्त्र के अध्ययन के पुनः प्रचार से हुआ। इस प्रकार हेलस (Hellas) ने इस ईसाई चर्च से अपना बदला ले लिया, जिसके नेताओं का विश्वास था कि उन्होंने हेलेनवाद (Hellenism) को सदा के लिये नष्ट कर दिया। किन्तु हेलस (Hellas) कभी नहीं मर सकता। फ्लोरेंस की जनता और विशेष कर नये व्यापारिक और धनिकवर्ग ने यूनानी भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। इस समय उत्तरी यूरोप के राष्ट्रों के लिये नये संदेश का देवदूत एरेस्मस (Erasmus) था। इस समय शिक्षा में सुधार किया गया, नये स्कूल और कालेजों की स्थापना की गई, कला का पुनः प्रचार किया गया। साहित्य और विज्ञान की रचना एवं उन्नति की गई, और राजनीतिक प्रश्नों के ऊपर निष्पक्षता की युक्ति से वादविवाद किया जाने लगा। उस समय से वर्तमान सभ्यता बराबर प्रबल होती गई। राज्य तो पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक प्रजातन्त्र सत्ता वाले और सांसारिक दृष्टिकोण वाले बन गये हैं। राजाओं का सम्मान और उनकी ख्याति कम हो रही है। शिक्षा सबके प्राप्त करने योग्य

हो गई है। सफाई में भी अधिक उन्नति हुई है। वैज्ञानिक शोध और आविष्कारों से समाज अब अधिक धनी हो गया है। निश्चित सिद्धान्तों और अन्धविश्वासों का स्थान युक्तिवाद (Rationalism) और युक्तिवादी आचार शास्त्र लेते जा रहे हैं। जाग्रति प्रचार का आंदोलन अभी तक उच्च तथा मध्यमवर्गों ही में सीमिति था; उसके मुकाबिले में धर्म सुधार के आन्दोलन का कहीं अधिक प्रचार हुआ। प्रोटेस्टैंट लोगों में कुछ अन्धविश्वास तो प्राचीन कैथोलिक सम्प्रदाय के थे ही, कुछ उन्होंने स्वयं अपने भी मिला लिये। किन्हीं रीतियों में उन्होंने उलटा आन्दोलन चलाया, किन्तु कुल मिला कर उन्नति प्रोटेस्टैंट लोगों की हुई। इस आन्दोलन ने पुरोहितों और साधुओं के सहस्र वर्ष प्राचीन ठेका को तोड़ डाला। इस ने साधु बनाने की संगठित प्रथा और पादरियों की सुविधाओं और उनके विशेष अधिकारों को बंद कर दिया। इसने जनता को इससे अधिक लगनवाली और ईमानदार बना दिया, जितनी वह एक आडम्बर पूर्ण संस्था की आधीनता में हो सकती थी। इसने ईसाई धर्म को सम्प्रदायों में बांट कर पूर्णतया अप्रतिष्ठित बना दिया। मध्यवर्ग और साधारण जनता का संगठन करके इसने प्रजातंत्र की भावना को पुष्ट किया। प्रोटेस्टैंटवाद की विभाग करने की प्रकृति के कारण संयुक्त राज्य अमरीका की शासन और शिक्षाप्रणाली में लौकिक दृष्टिकोण की विजय हुई। यह घटना संसार के इतिहास में इतनी ही मह-

त्वपूर्ण है जितना ईसाईयत के इतिहास में ईसामसीह का क्रास पर चढ़ना है। प्रोटेस्टैंटवाद ईसाइयों को विभक्त करके उनकी अपना बचाव करने वाली सभी बातों को दूर कर देता है, वह केवल बुद्धि में न आने योग्य बाइबिल को ही उनके पास रहने देता है। यद्यपि प्रोटेस्टैंटवाद की आंशिक रूप में सुन्दर युक्ति ने आरम्भ में वैज्ञानिक युक्तिवाद में बाधा पहुंचाई किन्तु तो भी इससे आगे चल कर युक्तिवाद का कार्य बहुत सुगम हो गया। किन्तु प्रोटेस्टैंट सम्प्रदाय कला अथवा ऐतिहासिक दंतकथा और क्रम के मूल्य, अवथा आचार विषयक गूढ़ अनुभव, अथवा विज्ञान के महत्व को पसंद नहीं करता। कैल्विन के हाथों उसने राजनीतिक प्रजातंत्र के सिद्धान्त का प्रचार किया और अमरीका में सार्वजनिक सरकार स्थापित करने में सहायता दी। इसने सार्वजनिक सामान्य शिक्षा पर (सार्वजनिक उच्चकोटि की शिक्षा पर नहीं) विशेष बल दिया। कैल्विन के सम्प्रदाय ने यद्यपि जादूगरनियों को जला डालने जैसी भयंकर भूलें की हैं, किन्तु यह प्रोटेस्टैंटवाद में कम से कम विनाशात्मक था। जाग्रति आन्दोलन का उस समय जनता के लिये कोई सन्देश नहीं था, और हम देखते हैं कि अनेक बातों में प्रचार और धर्म संशोधन के आन्दोलन एक दूसरे में लिपट कर गड़ बड़ हो जाते थे। मेलैंचथन (Melanchthon), एरैस्मस (Erasmus), डोलेट तथा अन्य प्रसिद्ध नेताओं ने दोनों ही आन्दोलनों में बहुत कार्य किया।

इंगलैण्ड में पहिले पहल बैप्टिस्ट नाम की ईसाई सम्प्रदाय ने सहिष्णुता के सिद्धान्त का प्रचार किया। प्रोटेस्टैंटों के भी अनेक सम्प्रदायों में बंट जाने पर लूथर के अनुयायी लोगों की असहिष्णुता को असम्भव और अव्यवहारिक बना दिया। धर्म सुधार के उन्नतिशील आन्दोलन के निर्बल हो जाने पर उस स्थल पर फ्रांस की राज्यक्रांति के पूर्व चिन्ह प्रगट हुए, उसी समय पूंजीवाद का विकास आरम्भ हुआ। फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने सैनिक सेवा करने वाले जमींदारों और पुरोहितों के शासन को समाप्त करके मध्यवर्ग के हाथ में शासन की बागडोर सौंप दी। इस समय मध्यमवर्ग और श्रमिक-वर्ग एक दूसरे के मित्र बन गये। इस आन्दोलन ने व्यक्तियों के लिये व्याख्यान और सभाओं की स्वतन्त्रता की घोषणा की और राज्य में उत्तराधिकार की निंदा की। इसने समाज में आस्तिकवाद (Deism) और नास्तिकवाद (Atheism) की दो संगठित शक्तियों की स्थापना कर दी। इस आन्दोलन ने प्रजा तन्त्र की स्थापना होने पर सार्वजनिक शिक्षा की नीव डाली। कुछ अधिक जागृति होने पर स्कूलों में जाना सार्वजनिक कर दिया गया। इसने अर्थशास्त्र और राजनीति के अध्ययन को प्रोत्साहित किया, और उसके भाव को फिलिस्तीन से न लेकर सीधे यूनान और रोम से लिया। इसको जागृति काल की राजनीतिक पूर्णता कहा जा सकता है। किन्तु इसने पृथ्वी पर राष्ट्रीयता (Nationalism) को जन्म दिया। राष्ट्रीयता ने कैथोलिक सम्प्रदाय को शक्तिहीन बनाने और

राष्ट्रों की साम्राज्यलिप्सा और आक्रमण के चंगुल से रक्षा करनेका उपयोगी कार्य किया। किन्तु अब उसकी उपयोगिता भी नष्ट हो चुकी है। फ्रांस की राज्यक्रान्ति से पूंजीवाद को भी एक कानूनी लैसन्स मिल गया। क्योंकि उक्त क्रान्ति से व्यक्तित्व तथा प्रतीयोगिता चमक उठे। गत शताब्दी में संसार की उन्नति करने वाली दोनों शक्तियों-पूंजीवाद और राष्ट्रीयवाद-ने अब उसको युद्ध और दरिद्रता के गहरे गड्ढे में पटक रखा है।

मेरा सिद्धान्त है कि जागृति आन्दोलन विश्व इतिहास का बड़ा भारी विभाजक है। यह अन्धविश्वास के आधार वाली सभी सभ्यताओं को उस अपूर्ण और अधूरी वर्तमान सभ्यता से पृथक करता है, जो युक्तिवाद और उसके साथी विज्ञान के आधार पर स्थापित है। हेलेनवाद (Hellenism) इतिहास का मुख्य राजमार्ग है; दूसरे आन्दोलन अन्य सहायक मार्गों अथवा आगे चलकर समाप्त हो जाने वाली गलियों के समान हैं। इङ्गलिश और फ्रांसीसी अध्यापकों के द्वारा यह सुक्ष्म रूप में ईरान, भारत, चीन और अफ्रीका तक में फैल गया और इसने उन स्थिर तथा मृतप्राय सभ्यताओं के प्राचीन सिद्धान्तों और आदर्शों को हिला दिया। इस प्रकार ऐथेन्स के अविनाशी साम्राज्य का विस्तार होता जा रहा है। किन्तु जागृति प्रचार की पूर्ण होने की आवश्यकता है, हेलेनवाद (Hellenism) को अपने अन्दर कुछ ऐसे सिद्धान्तों का समावेश करना चाहिये, जिनका आस्तित्वतो उसके अन्दर गुप्तरूप से था किन्तु जिनको ईसाईमत और बौद्धमत

में स्पष्ठ किया गया है। जाग्रति आन्दोलन (Renaissance) अपनी आचारसम्बन्धी और सामाजिक पूर्णता के लिये अभी प्रतीक्षा कर रहा है। हेलेनवाद (Hellism) अपने नये नये प्लैटोओं, अरस्तुओं, जेनाओं, अपनी नयी २ ऐकडैमियों, व्याख्यान कक्षाओं, अपने तालाबों और बगीचों, तथा अपने पूर्ण राज्य में पूर्ण नागरिक के नये स्वप्नों के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। जाग्रति प्रचार का कार्य (Renaissance) अभी समाप्त नहीं हुआ। यह अभी तक अपने वास्तविक रूप में नहीं आया। इसको आचारण सम्बन्धी तथा सामाजिक दृष्टिकोण से उसी प्रकार पूर्ण करना चाहिये, जिस प्रकार यह कला, विज्ञान और साहित्य में अपने फल दिखला रहा है। अब इसको युक्ति और स्वतन्त्रता के नये दर्शनशास्त्र, राजनीति और अर्थशास्त्र की आवश्यकता है। वर्तमान संकट से छुटकारा पाने का यही उपाय है। हेलेनवाद (Hellism) ने आचारशास्त्र की ईश्वरवाद और आत्मवाद वाली पुरानी नींव को खोखला कर दिया है और अब उसको युक्तिवाद के आधार पर नये आचारशास्त्र और नये राज्य के निर्माण करने का कार्य दिया जा रहा है।

परिणाम

मैं यह दिखला चुका हूं कि इतिहास क्रमबद्ध अबाधित उन्नति का वर्णन नहीं करता, वरन् सभी देशों में उन्नति और अवनति के अनिश्चित और बेठिकाने युगों का वर्णन करता है। सभ्यता इंगलैण्ड के जलवायु में बैरोमीटर

के समान चढ़ती है, गिरती है और अवनति करती तथा फिर उन्नति करती है, अतएव ऐसी अवस्था में आपका इतिहास का तत्त्वज्ञान क्या होना चाहिये ? आपको न तो उदास निराशावादी और न अज्ञानी आशावादी ही बनना चाहिये। आपको सुधारवादी बनना चाहिये। सुधारवाद ही आपका उद्देश्य होना चाहिये।

इतिहास प्रकृति और मनुष्य में दो परस्पर विरोधी *सिद्धान्तों के भेद को खोलता है। इन सिद्धान्तों में सदा ही झगड़ा होता रहता है। भलाई (अथवा उन्नति) और बुराई (अथवा अवनति) के सिद्धान्तों का व्यक्ति और समाज दोनों में ही सदा युद्ध होता रहता है। इस समय उन्नति अथवा भलाई की विजय परिस्थिती, विकास, परमात्मा, जीव-शक्ति, ब्रह्म, आर्थिक शक्तियों, किसी आंतरिक योग्यता अथवा प्रकृति के नियम पर निर्भर नहीं। इनमें से किसी बात से उन्नति के कारण को निश्चित नहीं किया जा सकता। भलाई की विजय पूर्णतया व्यक्तित्त्व—तुम और मुझ पर निर्भर है। उन्नति का नियम आपके मस्तिष्क और हृदय में है। उसको किसी और स्थान पर मत खोजो। सामाजिक उन्नति सीधे और अनुवाहिक रूप से व्यक्तिगत उन्नति के अनुसार होती अथवा नहीं होती है। व्यक्ति समाज का दर्पण है। व्यापक

---

*भारतीय दर्शनों में भी शरीर के अन्दर सदा ही देवासुर संग्राम होते रहने के रूपक का वर्णन आता है।

रूप में मनुष्यजाति का एक व्यक्तित्व है। इतिहास तुम्हारी अपनी ही टूटी हुई परछाईं है जिसेको आपके देखने के लिये बड़ा करके दिखलाया जाता है। मनुष्य जाति एक निराकार गूढ़ तत्व है। आप, मैं तथा अन्य पुरुष साकार वास्तविकता हैं। इस प्रकार केवल व्यक्तित्व ही उन्नति का निर्माता है। आप जातियों की पूर्णता की ओर दौड़ में फुर्ती अथवा सुस्ती कर सकते हैं; आप शीघ्र उन्नति और विकास के प्रतापी युगों अथवा अवनती और पतन के ऊजड़ युगों का निर्माण करने में सहायता दे सकते हैं। आप चाहे भलाई के लिये परिश्रम और युद्ध कर सकते हैं, अथवा आप अपनी पूर्ण जीवन शक्ति को ओछेपन और आलस्य में नष्ट करके इतिहास में बुरे कार्य को प्रोत्साहित करने वाले बन सकते हैं। आप इस बात का निश्चय कर सकते हैं कि आप अपने जीवन का अधिक से अधिक उत्तम उपयोग ऊच्च आदर्शों की सेवा में करके उन्नति के सहचारी बनें; अथवा आप एक आलसी और स्वार्थी इन्द्रियलुप्त बनना पसंद करके बुराई का काम करने वाले बनें। आप स्वास्थ्य, सुन्दरता, ज्ञान, गुण, प्रेम और शान्ति के लिये उत्साह और शक्ति से कार्य करके उन्नति के मार्ग को प्राप्त करने का निश्चय कर सकते हो; अथवा आप स्वयं ही अथवा अन्य साधनों से अस्वास्थ्य, कुरूपता, अज्ञान, दुर्गुण, घृणा, और अशान्ति को बढ़ा कर इतिहास में अवनति करने के उत्तरदायी बन सकते हो। आप अपने जीवन के प्रत्येक मिनट और प्रत्येक सेकिन्ड में इतिहास का निर्माण करते हो, आपका दैनिक जीवन

ही इतिहास है। इसके अतिरिक्त वह और क्या है? अतएव आपको भलाई और बुराई में से एक को चुन कर उन्नति अथवा अवनति दोनों में से एक के झंडे के नीचे आ जाना चाहिये। आप जिस प्रकार का बनने का निश्चय करेंगे उसी प्रकार इतिहास भी बनेगा। उन्नति आपसे प्रतिक्षण उत्सुकता पूर्वक पूछ रही है, "आप मेरे पक्ष में कार्य कर रहे हो अथवा विपक्ष में?" जो कुछ आह का उत्तर होगा, वैसा ही इतिहास बनेगा। लोंगफेलो (Longfellow) ने हम को ठीक ही चेतावनी देकर सम्मति दी है:—

"सभी स्त्री पुरुष भाग्य के निर्माता वह हैं जो समय की इन दीवारों के अन्दर काम कर रहे हैं;

जिस भवन का हम निर्माण करते हैं उसकी रचना के लिये समय उपादान सामग्री से भरा हुआ है;

हमारे आज और कल वह पत्थर हैं, जिनसे हम बनाते हैं;

अवश्य, आज 'को सुदृढ़ और निश्चित रूप से निर्माण करो जिसकी नींव सुदृढ़ और विशाल हो;

और कल सुरक्षित रूप से ऊपर को चढ़ता हुआ अपना स्थान प्रात कर लेगा।"

तृतीय अध्याय

मनोविज्ञान

इस महत्त्वपूर्ण विज्ञान का आपको पुस्तकों तथा प्रयोगशाला दोनों से ही अध्ययन करना चाहिये। इससे आपको अनेक बहुमूल्य शिक्षाएं मिलेंगी।

(१) आपको इस बात का अनुभव होने लगेगा कि मनोविज्ञान और शरीरतत्त्व विज्ञान अन्योन्याश्रित हैं। मस्तिष्क का शरीर पर प्रभाव पड़ता है। जैसा कि स्पेंसर ने कहा है, “आत्मा से ही शरीर आकार धारण करता है।” किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि शरीर मस्तिष्क को ढाल कर बनाता और शासन में रखता है। ऐसा कोई विचार अथवा भाव नहीं हो सकता, जिससे शरीर और मस्तिष्क में साथ ही साथ परिवर्तन न हो।

इस प्रकार बिना शरीर वाले ऐसे 'आत्मा' का विचार, जो बिना मस्तिष्क और शरीर के विचार तथा अनुभव कर सकता है, आपके लिये उतना ही बुद्धि से परे हो जावेगा, जितना नेत्रों के बिना देखना, दांतों के बिना चबाना और आमाशय के बिना भोजन को पचाना। बिना शरीर तत्त्व विज्ञान के कोई मनोविज्ञान नहीं हो सकता। मैं यह भी कह सकता हूं कि मनोविज्ञान के बिना कोई शरीरतत्त्व विज्ञान नहीं हो सकता। अनेक वैज्ञानिकों ने इस बात के तत्त्व पर पर्याप्त बल नहीं दिया।

(२) 'पदार्थवाद' (Substantialism) और 'यथार्थवाद' (Actualism) के झगड़े आपके सामने आयेंगे। क्या समझ, विचारों, भावों और उद्देश्यों जैसे मनोभाव सम्बन्धी तत्वों को उस एक मात्र अपौद्गलिक (Immaterial) आत्मा अथवा जीव की दशायें अथवा पर्यायें माना जावे, जो उनको 'रखता' अथवा "अनुभव करता है", अथवा जिसमें वह व्यापक हैं? अथवा वह उस आत्मा के ही अवयव (आवश्यक भाग) हैं, जो केवल इन मनोभाव सम्बन्धी तत्त्वों के संग्रह का ही नाम है? यथार्थवादी एक स्थायी "आत्मिक" वास्तविकता अथवा मनोभावों सम्बन्धी दशाओं के पीछे वा ऊपर किसी पदार्थ के अस्तित्व को नहीं मानता। आरंभिक बौद्ध भी इसी सिद्धांत का प्रतिपादन करते थे। आपको इन दोनों विरोधी सिद्धांतों में मध्यमार्ग का अवलम्बन करना चाहिये। यह स्पष्ट है मनोभाव सम्बन्धी दशाओं से पृथक् अस्तित्व वाला आत्मा नाम का अपौद्गलिक (Immaterial) यथार्थ अस्तित्व मानो

बजाने वाले संगीतज्ञ के समान नहीं होता। इस प्रकार के काल्पनिक अध्यात्मिक आस्तित्व को मान लेने की आवश्यकता नहीं है। 'पदार्थवाद' का सिद्धांत कुछ भी व्याख्या न करके नई कठिनाइयों को उत्पन्न कर देता है। द्वैत अथवा प्रगुणित व्यक्तित्व और स्मृति नाश के तत्त्व से भी इसका समझौता नहीं किया जा सकता। किन्तु आपको हास्य जनक और असत्य जैसे उस सिद्धांत को भी नहीं मानना चाहिये कि मनोभाव सम्बन्धी घटनाओं के परिणाम स्वरूप केवल मनोभाव सम्बन्धी दशाओं का ही अस्तित्व होता है और विचारों तथा संवेदनाओं का तो अस्तित्व है किन्तु सोचने और संवेदन करने वाले का अस्तित्व नहीं है। मानसिक अनुभव और पदार्थ उस एक केन्द्र से संगठित हैं, जो संवेदन अथवा 'अहमत्त्व' रूप हैं। वह वैज्ञानिकों की सहायता अथवा स्वीकृति के बिना स्वयं ही जानता और प्रतिज्ञा करता है। स्व-संवेदन की घटना सभी ज्ञान और जीवन का आवश्यक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है। अहमत्त्व सोचता है, "मैं सोचता हूं, मैं अनुभव करता हूं, मैं कार्य करता हूं, मैं हूं।" इसके लिये और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। अहमत्त्व प्रकाश के समान है। प्रकाश हमारे नेत्रों के सन्मुख सभी वस्तुओं को खोल कर रख देता है, किन्तु वह अदृश्य होता है। स्वयं प्रकाश को हमें कौन दिखलावेगा? आप स्वयं अपने अहमत्त्व के अस्तित्व को युक्तियों से सिद्ध करने की चेष्टा कर सकते हो; आप अपने अस्तित्व के विषय में भी तब तक विश्वास करने से इंकार कर

सकते हैं जब तक उसके विषय में 'किस प्रकार' और 'क्यों' के * उत्तर तर्क द्वारा प्रमाणित न किये जा सकें। किन्तु उस अवस्था में आप उस ईमानदार राज कर्मचारी के समान आचरण करोगे, जिसने एक यात्री के जन्म प्रमाण पत्र के खो जाने से उसके जन्म को स्वीकार करने से इंकार कर दिया था। उसने कहा था, "श्रीमान् ! क्या आप अपने जन्म लेने को एक दस्तावेज़ से सिद्ध कर सकते हो ? एक सामान्य व्यक्ति के रूप में मैं इस बात को जानता हूं कि कभी न कभी अवश्य ही उत्पन्न हुये होंगे। किन्तु एक राज्याधिकारी के रूप में मैं उसको नहीं जानता।" यदि विश्लेषणशील वैज्ञानिक लोग उसको विचारों अनुभवों के क्रमबद्ध प्रवाह में न भी पा सकें तौ भी आपको उसी प्रकार अहमत्त्व के अस्तित्व और कार्य को व्यक्तित्व का आधार और केन्द्र मान लेना चाहिये। मैं सब बातों को अहमत्त्व के द्वारा ही सिद्ध करता हूं; किन्तु मुझको बाहिर की कोई वस्तु मुझको मेरे अस्तित्व का प्रमाण नहीं दे सकती। इस बात की छानबीन करना अनावश्यक है कि स्व-संवेदन किस प्रकार और किस प्रणाली से उत्पन्न होता है और मनोभाव सम्बन्धी दशाओं में व्यापक रहता है। यह एक अन्तिम घटना है, जिसके आगे हम जांच नहीं कर सकते।

---

* पाश्चात्य देशों में उत्तराधिकार आदि के क़ानूनी प्रश्न जन्म प्रमाण पत्र (Birth Certificate) से तय होते हैं। क्योंकि वहां जन्म पत्री नहीं बनाई जाती।

(३) आपको मनोविज्ञान सम्बन्धी विश्लेषण की घटनाओं और सिद्धांतों के सम्बन्ध में नवीन २ आविष्कारों का नियमित ज्ञान रखना चाहिये, किन्तु उन से दब न जाओ । एस० फ्रेउद (S. Freud) ऐल्फ्रेड ऐडलर, कार्ल गुस्तेव जंग, तथा अन्य विद्वान् मार्कस और कोम्टे के समान एकांगी तत्वज्ञानी हैं। वह मानवी प्रकृति में व्यमिश्रित और भिन्न २ प्रकार के तत्व की व्याख्या उस एक सामान्य सिद्धान्त से ही करना चाहते हैं, जो मृत्यु को प्राप्त करके फिर साधारण परिहास में समाप्त हो जाता है ।

(४) 'मनोवैज्ञानिक' तत्व (यह 'आत्मिक' भी कहलाता है) में ठीक रुचि बनाये रखो, और चार्ल्स रचेट, एच. प्राइस तथा अन्य विद्वानों के नवीन आविष्कारों के विषय में पढ़ते रहा करो। अपनी प्रकृति को वैज्ञानिकों जैसी बनालो। किसी पुरुष अथवा व्यक्तित्व के पक्ष या विषय में पक्षपात मत करो। घटनाओं और केवल घटनाओं को ही ध्यान पूर्वक देखना और मन में एकत्रित करते रहना आवश्यक है। तब विज्ञान व्याख्या करने और उनमें सम्बन्ध स्थापित करने का उद्योग करेगा। धर्म विषयक बाहय आलोचना करने वालों से जो अन्तर्यामित्व, परोक्षदर्शिता, भारी वस्तुओं के उड़ाये जाने तथा अन्य इसी प्रकार विचित्र कार्यों के अस्तित्व से निषेध करते हैं, आपको हैमलेट के निम्न लिखित शब्द कह देने चाहियें—

"हे हैरेशियो ! आकाश और पृथ्वी में उससे भी अधिक वस्तुएं हैं,

जितनी तुम्हारे तत्व ज्ञान के स्वप्न में आई हैं।"

यदि यह आश्चार्य जनक पदार्थ भौतिक हैं तो भी यह बिजली और बेतार के तार से अधिक आश्चर्य जनक और रहस्य पूर्ण नहीं हो सकते, आप खुले मस्तिष्क वाले तथा जिज्ञासु बने रहो, किन्तु सहजविश्वास और अंधविश्वास से सदा सावधान रहो। विज्ञान इस में भी प्रवेश करने का दावा करता है। सुशिक्षित वैज्ञानिकों को उसके सम्बन्ध में अनुसंधान करना चाहिये। इसका धर्म अथवा अध्यात्म शास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है।

स्वभाव का अध्ययन (Behaviorism) भी व्यक्तित्व की या तो उपेक्षा करता अथवा उसका निषेध करता है। कुछ तत्वों का अध्ययन करने के लिये यह ठीक और प्रभाव पूर्ण है, किन्तु यही सम्पूर्ण मनोविज्ञान नहीं है। वास्तव में तो यह मनोविज्ञान बिलकुल ही नहीं है। इसको पशुचिकित्सा विज्ञान की एक शाखा कहा जाना चाहिये, एक राजनैतिक ने अपने डाक्टर से कहा, "कृपा कर मेरी स्वास्थ्य परीक्षा कर लीजिये, किन्तु मुझसे प्रश्न कोई न पूछना।" चिकित्सक ने उत्तर दिया, "महाशय ! मैं पशुचिकित्सा का डाक्टर नहीं हूं।" आपको इस विद्या के वैज्ञानिकों की सेवा की प्रशंसा करनी चाहिये, किन्तु उनके अतिशयोक्ति पूर्ण दावों को नहीं मानना चाहिये। वह वैज्ञानिक वहीं तक अच्छे हैं जहां तक वह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु वह बहुत दूर तक नहीं जा सकते।

(६) जिस प्रकार आपको अपने अहमत्त्व का ज्ञान है

उसी प्रकार आपको यह स्वीकार और घोषित करना चाहिये कि मानवी मस्तिष्क में रचनात्मक शक्ति है, जो विकास प्रणाली को आगे बढ़ने में सहायता देती है। मस्तिष्क अनुभवों और प्रभावों को केवल प्राप्त ही नहीं करता, वरन् वह ऐसे नये २ भावों को भी उत्पन्न कर सकता है, जिनका कभी और कहीं भी अस्तित्व नहीं था। यह केवल पहिले से अस्तित्व वाले भावों का हीं पता लगा कर उनको नहीं बतलाता, जिस प्रकार कोलम्बस ने अमरीका का पता लगाया था, किन्तु उसका निर्माण नहीं किया था। यह वास्तव में ऐसे भावों का निर्माण करता है कि जिनका कभी अस्तित्व भी नहीं था। यह केवल संसार में पहिले से अस्तित्व वाले तत्वों, अनुभवों और घटनाओं को दोबारा क्रम देकर ही उपस्थित नहीं करता। इस नवीन युग में जब कि विज्ञान मनोविज्ञान में भौतिक--रसायन और प्राणिविज्ञान सम्बन्धी भावों को सम्मिलित कर रहा है इस महान् सत्य का नये सिरे से प्रचार करना चाहिये। किन्तु मनोविज्ञान को स्वयं अपने घर में ही शासन करना चाहिये।

चतुर्थ अध्याय

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र के मनन पर आपको अधिक समय देना चाहिये। यह आधारभूत विज्ञानों में से एक है। भोजन, वस्त्र और आश्रय को प्राप्त करने का कार्य अब भी मनुष्यजाति की शक्ति के अधिक भाग का उपयोग कर लेता है। बाह्यप्रकृति और मस्तिष्क सम्बन्धी आश्चर्यजनक घटनाओं के समान योग्य सामग्री की उत्पत्ति, बटवारे और उपभोग (खपत) के विषय में भी गंभीर अध्ययन करना चाहिये। अर्थशास्त्र आपकी इतिहास, राजनीति और समाजविज्ञान में भी गहन अन्तर्दृष्टि बना देगा। यह अनेक युद्धों, क्रांतियों, धर्मों और दलों के आरम्भ होने की व्याख्या करेगा। यह समकालीन राजनीतिज्ञों और व्यापारिक नेताओं के उद्देश्यों और कार्यप्रणालियों को बिजली के प्रकाश के समान आपके सन्मुख खोल कर रख देगा। यह आपके

मस्तिष्क को कपट की बातचीत शुद्ध करने में सहायता देगा। मैं एक ऐसी सभा में उपस्थित था, जिसमें किसी ने पूछा— "इङ्गलैण्ड पर शासन कौन करता है ?" इस प्रश्न के विभिन्न प्रकार के निम्न लिखित अनेक उत्तर दिये गये। 'पार्लमेंट', 'ईसाई धर्म', 'जनमत', 'समाचार पत्र', 'स्कूल के अध्यापक' इत्यादि। जब उत्तर देने के लिये मेरी बारी आई तो मैंने कहा, "इङ्गलैण्ड और यूरोप पर भी धन शासन करता है।" सम्मानित स्त्री पुरुषों को स्पष्ट ही इस उत्तर से चोट लगी और घृणा हुई, क्योंकि वह अर्थशास्त्र से अनभिज्ञ थे। जिस प्रकार आप बिना गणित के भौतिक विज्ञान का अध्ययन नहीं कर सकते उसी प्रकार आप बिना राजनीति और समाजविज्ञान के अर्थशास्त्र का अध्ययन नहीं कर सकते। यदि उस सभा की उपस्थित जनता अर्थशास्त्र को जानती होती तो उसको यह पता होता कि गत यूरोपीय महायुद्ध स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र, न्याय अथवा शान्ति के लिये न किया जाकर धन के लिये किया गया था, उस समय उनमें से अनेक अपने घर पर ही ठहरे होते। किन्तु अब वह कहीं न कहीं फ्रांस अथवा मेसोपोटमिया में दबे पड़े थे।

अर्थशास्त्र का अध्ययन आपको राज्य में धन के कार्य के सम्बन्ध पर विचार करने का अवसर देगा। आप उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार करोगे, जो खपत (उपभोग्य सामग्री) पर निर्भर है। अनेक अर्थशास्त्री उपभोग्य सामग्री के विषय में ठीक २ रूप में वादविवाद नहीं करते, किन्तु आपको इस गलती

से बचना चाहिये। अर्थशास्त्र एक वर्णनात्मक और मान स्थिर करने वाला दोनों ही प्रकार का विज्ञान है। इसको यह प्रश्न करना ही चाहिये, "हमको किस वस्तु का उपभोग करना चाहिये ? और कितना ?" अर्थशास्त्र से आचारशास्त्र और मनोविज्ञान को बिल्कुल प्रथक् न करना चाहिये अन्यथा इसका अंकों और टेढ़े मेढ़े मामलों के एक ऐसे गहन जंगल में पतन हो जावेगा कि जिसमें मस्तिष्क का पता भी नहीं चलेगा। धन परिणाम को प्राप्त करने का साधन है; यह व्यक्ति अथवा राज्य के लिये स्वयं परिणाम नहीं है। इससे आपको शासन और सम्मति के आधीन व्यक्तित्व के साधन के रूप में काम लेना चाहिये। किसी विशेष समय पर काम में लाये जाने वाले उद्देश्य के अनुसार इसके परिणाम को सीमित कर देना चाहिये। यह सत्य नहीं है कि यदि राज्य यथाशक्ति अधिक से अधिक उपभोग्य सामग्री को उत्पन्न करे तो वह बड़ी से बड़ी पूर्णता और प्रसन्नता को प्राप्त करेगा। अनेक बातें ऐसी हैं, जो उपभोग्य सामग्री से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यह तथ्य आपका उस एकांगी अर्थशास्त्री से रक्षा कर लेगा जिसका मस्तिष्क केवल अपने विषय में ही गहनता से इस प्रकार रँगा हुआ है जिस प्रकार एक खान के मज़दूर का मस्तिष्क कोयले की धूल से रँगा रहता है। अर्थशास्त्र का अध्ययन करो, किन्तु "अर्थवाद" के उस वर्तमान सिद्धांत की निन्दा करो, जो उपभोग की सामग्री और भौतिक वस्तुओं को अधिक से अधिक बढ़ाने से ही देश के

आनन्दित होने की शिक्षा देता है। यह उपदेश परिश्रमी चींटी और सदा व्यस्त मधुमक्खी का हो सकता है; मनुष्य जाति के लिये यह उद्देश्य मिथ्या और पाप पूर्ण है। इसके विरुद्ध, आप इस बात का अनुभव करोगे कि अत्यंत अधिक वस्तुएं मनुष्य के व्यक्तित्व को उसी प्रकार कुचल और गला घोंट कर मार डालती हैं जिस प्रकार भारी बोझा एक कुली की पीठ को तोड़ देता है। अतएव अर्थशास्त्र का एक विज्ञान के रूप में पूर्ण अध्ययन करो, किन्तु 'अर्थवाद' से सावधान रहो, जो मनुष्य जाति के लिये, विशेषकर अपनी अमरीकन व्याख्या में एक विपत्ति है।

जब आप बटवारे की समस्या का अध्ययन करोगे तो आप समझ जाओगे कि सभ्यता का आधार अन्याय और डाकाज़नी है। आपका हृदय उन करोड़ों पीड़ित मृत और जीवित दासों, सेवकों और कुलियों के लिये सहानुभूति और दया से भर जावेगा जिनके दावे को चारटिस्ट (Chartist) नेता, अर्नेस्ट जोन्स ने निम्न शब्दों में प्रगट किया है—

> "यह पृथ्वी ज़मींदार की है।,
> समुद्र पर व्यापारी का अधिकार है।
> धातु के सिक्के ब्याजखाने वालों के खज़ाने भरते हैं फिर मेरे लिये क्या बचता है ?

समाज में इस प्रकार फैलाये जाने वाले अन्याय और कष्ट के विचार से आपका रक्त घृणा पूर्वक क्रोध से उबलने लगेगा। आप निर्धनों और पीड़ितों के कष्टों को दूर करने के लिये और

समान्ता के पवित्र उपदेश की शिक्षा देने के लिये कटिवद्ध हो जाओगे। अर्थशास्त्र का अध्ययन आपको समाजवाद (Socialism) में दीक्षित कर देगा। आप इस प्रकार की अध्यात्मिक इच्छा भी प्रकट करोगे कि यदि संभव हो तो पीडित मज़दूर भावी समाजवादी पंचायत राज्य में दोबारा जन्म लें, और अपने निराशापूर्ण जीवन को वहां व्यतीत करें। उन 'विद्वत्तापूर्ण' और पूंजीवाद अर्थशास्त्रियों से सावधान रहो, जो प्रलोभन वा बहकाने में आकर पूंजीवाद के लिये क्षमा प्रार्थना करने वाले हैं। अर्थशास्त्र का शीतल तथा निष्पक्ष कोई 'विज्ञान' नहीं। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक भौतिक विज्ञान और रसायनविज्ञान को पढ़ाता है उस प्रकार कोई भी प्रोफेसर अर्थशास्त्र को नहीं पढ़ा सकता। उसको किराये, ब्याज, और लाभ की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से-चाहे वह कितना भी तटस्थ रहे प्रशंसा अथवा निंदा करनी ही पड़ती है। कितना ही छिपाने पर भी इस भेद का कभी न कभी भण्डाफोड़ हो ही जाता है। प्रेम और राजनीतिक सम्मति को नहीं छिपाया जा सकता। अतएव यदि आप पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों के ग्रन्थ पढ़ो अथवा उनके व्याख्यान सुनो, तो इस बात को स्मरण रखो कि वह जान बूझ कर अथवा बिना जाने भी पूंजीवाद का पक्षपात अवश्य करेंगे। वह "मजदूरी के लोह कानून" (Laissez Faire) "व्यक्तिगत पूंजी का सामाजिक कार्य" आदि जैसी मिथ्यावादपूर्ण युक्तियां देंगे। धन सदा ही अपने लिये ऐसे दास और किराये के मनुष्य प्राप्त कर लेता है, जिनका मस्तिष्क उनके पेट में रहता

है। आपको अपने दिन और रात्रि के समय का अधिक भाग फौरियर (Fourier) और मार्क्स के ग्रन्थों के अध्ययन में व्यतीत करना चाहिये, जिन्होंने आश्चर्यजनक बुद्धिमत्ता पूर्ण अन्तर्दृष्टि से पूंजीवाद समाज का विश्लेषण किया है। वह लोग समाजवादी अर्थशास्त्र के संस्थापकों में से हैं। ग्रे (Gray), ब्रे (Bray) टामसन, (Thampson) और हाग्स्किन (Hodgskin) के ग्रन्थों को भी पढ़ डालो, इन्हीं इङ्गलिश विद्वानों ने मार्क्स को नये २ विचार सुझाये थे। आप था (Th. Veblen) नाम के एक मात्र मौलिक अमेरीकन विद्वान् से भी अधिक शिक्षा ग्रहण करोगे, उसका शब्द प्रायः जंगल में रोने के समान है। मार्क्स के ग्रन्थों की बार २ आवृत्ति करते रहो और वास्तविक मार्क्सवाद की विशेषता और उपयोगिता की सराहना करो, यदि आप मार्क्सवाद को नहीं समझ सकते तो आप उन्नतिशील मनुष्य जाति की सैना के अग्रभाग में नहीं चल सकते।

पंचम अध्याय

दर्शनशास्त्र

दर्शनशास्त्र के अध्ययन और मनन में आप को अधिक समय लगाना चाहिये। दर्शनशास्त्र तत्त्वज्ञान से डरो मत, वह इतनी भयानक नहीं, जितना उसके विषय में कहा जाता है। वह केवल यूनानी वेष में बुद्धि का प्रेम है। यदि आप तनिक भी विचार करते हों तो आप दार्शनिक तत्त्वज्ञानी हो। प्रत्येक मनुष्य को या तो तत्त्वज्ञानी अथवा मूर्ख बनना ही पड़ता है।

दर्शनशास्त्र अनेक प्रश्नों और समस्याओं के विषय में वर्णन करता है, उनमें से कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और कुछ व्यर्थ तथा अनावश्यक हैं। आपको व्यर्थ और अनावश्यक विषयों को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। दर्शनशास्त्र बड़ा मकड़जाल है क्योंकि अनेक दर्शनशास्त्रियों ने ऐसी २ न समझने और न सुलझने योग्य पहेलियों पर अत्याधिक शक्ति नष्ट

की है, जो एक सामान्य नागरिक के किसी काम अथवा रुचि की नहीं होती। प्राचीन साधुओं की अपेक्षा आधुनिक विचारशील विद्वानों ने तो इस विषय में उनसे भी अधिक पाप किया है। जिन प्रश्नों को आप केवल शब्दाडम्बर पूर्ण, निरर्थक, व्यर्थ, अथवा असम्भव समझते हो उनको केवल थोड़ासा मुस्करा कर टाल दो। प्राचीन काल में इस प्रकार के झगड़ों में बुद्धि का अत्यन्त शोकजनक दुरुपयोग किया जा चुका है।

(१) 'पूर्ण', 'अकारण', 'नित्य', 'अपरिवर्तनीय', और 'अनन्त' का अन्वेषण सदा ही जंगली हंस का पीछा करने के समान सिद्ध हुआ है। इस पर अनेक दार्शनिकों ने अपना समय लगाया, किन्तु मिल्टन के गिरे हुए स्वर्गदूतों के समान 'वह' किसी परिणाम पर बिना पहुंचे गोरखधन्दे के जंगल में घूमघाम कर खोये गये। उनको दर्शनशास्त्र के विचित्र विद्वान् कहा जा सकता है। भारतीय उपनिषदों के अध्यात्मवेत्ताओं ने 'अपरिवर्तनीय' का अन्वेषण करके, 'सर्वज्ञापक' को जानने का उद्योग किया। प्लैटो और प्लोटीनस (Plotinus) ने भी अदृष्ट 'आत्मिक' साम्राज्य के रहस्यों को खोजने का उद्योग किया था। श्लेगेल (Schlegel), फिच (Fichte) और हेगेल (Hegel) जैसे आदर्शवादी जर्मन विद्वानों ने उस 'पूर्ण' के विषय में प्रत्येक बात की इस प्रकार व्याख्या की है, जिस प्रकार वह उनका घनिष्ट मित्र अथवा द्वार पर रहने वाला पड़ौसी ही हो। एफ० एच० ब्रैडले, बी० बोसैंके (B. Bosacpuet)

जे. एम, मैक टैगर्ट, जे. राएस (J. Royce) तथा अन्य विद्वानों ने भी इसी प्रणाली का अनुसरण किया।

आपको इस बात को स्पष्टतया समझ लेना चाहिये कि दर्शनशास्त्र को मनुष्य जाति पर ही केन्द्रित होना चाहिये। यह मनुष्य का ही बनाया हुआ है और यह मानवी मस्तिष्क की सीमा तक सीमित है। जैसा कि हमको विज्ञान से पता चलता है आकाश--काल, सकारणता, और प्रवाह से स्वतन्त्र कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य उस 'पूर्ण' पर विचार करने अथवा उसको ग्रहण करने योग्य नहीं है। उसका मस्तिष्क उसके सिर में से निकल कर नहीं उड़ सकता। मानवी व्यक्तित्व के विकास का कोई अंत न होने पर भी उसका व्यक्तित्व सीमित और परिस्थितियों में बंधा हुआ है। विश्व के सम्बन्ध में लंगूर की अपेक्षा मनुष्य अधिक समझता है, और एक पाषाण युग के बर्बर मनुष्य की अपेक्षा एक सभ्य मनुष्य अधिक विस्तृत और ठीक तत्वज्ञान रखता है। कुतुब मीनार की प्रत्येक मंजिल पर आगे २ चढ़ते जाने से आपको अधिकाधिक जमीन दिखलाई देती जावेगी और अन्तरिक्ष अधिकाधिक अन्तर तक पीछे हटता जावेगा। इसी प्रकार विकास के अंशों में बढ़ते २ उसकी बुद्धि वर्षों के बीतने के साथ ही साथ प्रकृति और जीवन के विषय में अधिकाधिक ही ग्रहण करती जावेगी। किन्तु प्रत्येक युग में उसकी बुद्धि की योग्यता और उसकी इन्द्रियां कुछ अपूर्ण सिद्धान्तों को ग्रहण करने के योग्य ही होती हैं। वह अनन्त समुद्र के समान विस्तृत

* समस्त को नहीं नाप सकता, क्यों कि दर्शनशास्त्र तो उस अनन्त जल में डाला हुआ मनुष्य का नापने का फीता ही है।

वर्तमान समय में हमारे नेत्र केवल बैंजनी से लगाकर लाल तक के सात रंगों को, ४३,७४४ गज (४००० दसवें मीटर) से ८२०.२० गज (७५०० दसवें मीटर तक) की लहरों की लम्बाई में देखते हैं। किन्तु यह कहना मूर्खता होगी कि अब से एक करोड़ वर्षों के पश्चात् होने वाले मनुष्य के अधिक विकसित नेत्रों में दूसरी लम्बाई की लहरें अन्य भिन्न २ प्रकार के रंगों को उत्पन्न न करेंगी। हम व्यर्थ ही इस कौतुक पूर्ण प्रश्न को करते हैं कि "लाल से भी अधिक (Infra-red), बैंजनी रंग से भी कम लम्बाई वाली (Ultra-violet) प्रकाश की लहरों में किस प्रकार का रंग दिखलाई देगा ? वैज्ञानिक लोग हमको बतलाते हैं कि "बैंजनो रंग से कम लम्बाई वाली लहरों (Ultra-violet) की लम्बाई १०६.३६ गज (१००० दसवें मीटर) से भी कम और लाल रंग से भी अधिक लहरों की लम्बाई ८२०.२ गज (७५०० दसवें मीटर) से ६५६१६०.२ (६००.००० दसवें मीटर) तक भिन्न २ प्रकार की पाई जाती हैं।" दूसरे प्रकार की लहरों का रंग दूसरे प्रकार का होता है। खेद है कि हम उन रंगों को नहीं देख सकते। हमारे कान संसार के केवल थोड़े से स्वरों को ही सुन सकते हैं। जे. डंकन (J. Duncan) और एस० जी० स्टारलिंग (S. G. Starling) का कहना है

---

* देखो फुटनोट पृष्ठ० १७

कि यदि बार २ होने वाली शीघ्र गति अधिक बढ़ जाती है तो स्वर अत्यंत बारीक और मंदा हो जाता है। १५००० की बार २ होने वाली शीघ्र गति (Frequency) पर स्वर साधारण सिस्कार से कुछ ही अधिक होता है, इस से कुछ अधिक शीघ्र गति पर वह बिल्कुल सुनाई नहीं देता। कुछ लोगों की सुनने की योग्यता की सीमा दूसरों की अपेक्षा अधिक होती है। वह लोग, २०,००० से २५,००० तक की शीघ्र गति के स्वर को सुन सकते हैं। अधिक अवस्था वालों की अपेक्षा कम अवस्था वालों की सुनने की शक्ति अधिक हुआ करती है। बहुत से पुरुष चुहिया की चिल्लाहट को उसकी उच्च शीघ्रगति होने के कारण नहीं सुन सकते।" एक लाख की शीघ्रगति के शब्द को कौन से कान सुन सकते हैं? वह स्वर किस प्रकार सुनाई देंगे? यह हम नहीं बतला सकते। हम एक ऐसे कैदी हैं जिसको अपने आंगन में एक निश्चित उद्देश्य तक ही टहलने की अनुमति है। यह शिक्षा मनुष्य को नम्र बनने का अभ्यास डाल देती है। हम नहीं जानते कि अब से लाखों और करोड़ों वर्षों के पश्चात् मनुष्य कितना देख, सुन और समझ सकेगा, न उस विषय में कुछ भविष्यवाणी ही की जा सकती है। किन्तु, आज तो उसका तत्वज्ञान उसके छोटे से आकार के अनुसार ही होना चाहिये। अतएव आपको उन सब दार्शनिकों की बात पर अविश्वास करके उनको अस्वीकृत कर देना चाहिये, जो सम्पूर्ण विश्व की 'व्याख्या' करने का दावा करते हैं और वास्तव में जानते कुछ भी नहीं। वह केवल

बकवास करने वाले और ठग हैं जो दार्शनिक का स्वांग भरे हुये हैं। बुद्धिमान् दार्शनिक को उससे कुछ प्रश्न पूछे जाने पर यह कहना सीखना चाहिये, "मैं नहीं जानता, मैं नहीं जान सकता।" चिकित्सा न होने योग्य और अनिवार्य अज्ञानता की यह स्पष्ट स्वीकृति बुद्धिमत्ता में प्रथम चरण है। गौतमबुद्ध ने इस प्रकार के दस या चौदह अध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर देने से इंकार कर दिया था। उसने अपने शिष्यों को उनके सम्बन्ध में वादविवाद करने से भी मना कर दिया। हबर्ट स्पेंसर ने विश्व को 'ज्ञेय' और 'अज्ञेय' नामक दो विभागों में विभक्त किया है। मैं इन शब्दों के लिये 'ज्ञात' और 'अज्ञात' नाम देना अधिक पसंद करूंगा, क्योंकि असीम भविष्य में मनुष्य के विकास की योग्यता के लिये कोई भी सीमा निर्धारित नहीं कर सकता। यह कोई नहीं कह सकता कि विश्व सदा ही 'अज्ञेय' बना रहेगा। वह समय अवश्य आवेगा जब मनुष्य बिना किसी अपवाद के प्रत्येक बात को जान और समझ कर उस सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेगा, जिसका वर्णन जैन और बोद्ध किया करते हैं। इस बीच में हमको अपना इस युग का दर्शनशास्त्र विज्ञान के आधार पर बनाना चाहिये।

दार्शनिक का एक मात्र मार्ग प्रदर्शक विज्ञान है। प्राचीन काल में दर्शनशास्त्र की विद्या विज्ञान को अनेक बार परित्याग कर चुकी है। दार्शनिक लोग केवल तार्किक और मनोराज्य में बिचरने वाले ही होते हैं। वैज्ञानिक लोगों में उस प्रकार की कल्पना और नैतिक उत्साह का अभाव रहा है जो दर्शनशास्त्र

की विद्या को उत्पन्न करता है। सभ्यता की सुन्दर कहानी में केवल दो या तीन बार ही विज्ञान और दर्शनशास्त्र की विद्या विवाह के पवित्र बंधन में बांधे गये हैं। यह बात अरस्तु (Aristotle) एपीक्युरस (Epicurus) स्पेंसर और कोम्टे के सिद्धान्तों में स्पष्ट दिखाई दे सकती है। बिना विज्ञान का दर्शनशास्त्र मृगतृष्णा और अफीमचियों का स्वप्न है, जब कि बिना दर्शनशास्त्र का विज्ञान अदीर्घदर्शी और शैतानी से भरा होता है। एक वैज्ञानिक जो दार्शनिक नहीं है जंगल को वृक्षों के लिये नहीं देख सकता, वह अनेक घटनाओं को एकत्रित करता है, किन्तु उनका समीकरण अथवा उनकी व्याख्या नहीं कर सकता। इस प्रकार का अर्द्ध-शिक्षित वैज्ञानिक छापेखाने के उस मुद्रक (प्रिंटर) के समान है जिसके पास शेक्सपीयर के नाटक के पात्रों के अभिनय किए जाने योग्य पत्र प्रथक-प्रथक होने पर भी वह उनको क्रमपूर्वक नहीं लगा सकता। आज संसार को ऐसे दार्शनिकों की बड़ी भारी आवश्यकया है जो दार्शनिक होने के साथ ही साथ प्रयोग करने वाले वैज्ञानिक भी हों। भौतिक विज्ञान और प्राणि विज्ञान की पर्याप्त शिक्षा न पाये हुए बाह्य आलोचना वाले हलके विद्वानों से सदा सावधान रहो। केवल भौतिक विज्ञान अथवा प्राणि विज्ञान का विद्वान होना ही पर्याप्त नहीं है, दार्शनिक को शेक्स्पीयर की बड़ी भारी मूर्ति के समान अपना एक २ पैर दोनों ओर रख कर खड़े होना चाहिये। किसी नये दार्शनिक की बात सुनने से पूर्व उसकी विद्या के प्रमाणपत्रों को सावधानता पूर्वक

जांचलो। यदि वह प्रयोग सम्बन्धी विज्ञान के लिये नवीन ही हैं तो उसकी शिक्षा पर विशेष ध्यान मत दो। इस प्रकार के अवैज्ञानिक सिद्धान्तवादी नियमानुसार धीरे २ होने वाले विज्ञान के परिश्रम को घृणा दृष्टि से देखते हैं। वह अन्तर्ज्ञान अथवा तर्क शास्त्र द्वारा दर्शनशास्त्र के तत्त्व के लिये सुगम और छोटा मार्ग निकालने का दावा करते हैं। यहां तक कि वह वैज्ञानिकों से भी बड़ा होने का दावा करते हैं। वह इस बात का दावा करते हैं कि उन्होंने विज्ञान की कल्पनाओं और प्रणाली की विधिपूर्वक परीक्षा करके भिन्न २ विज्ञानों द्वारा बनाये हुए नियमों से अत्यन्त सर्वसामान्य सिद्धान्त निकाले हैं। किन्तु यह दोनों ही कार्य केवल वैज्ञानिकों पर ही छोड़ देने चाहियें। यह कार्य इस प्रकार के किताबी-कीड़ों के हाथ में नहीं छोड़े जा सकते, जिन्होंने न कभी परीक्षानलिका (Test tube) को छुआ अथवा मेंढक को चीरा नहीं है। मैं कुछ विद्वानों के प्रस्ताव किये हुए वैज्ञानिकों और दार्शनिकों में श्रम के विभाग को स्वीकार नहीं कर सकता। दर्शनशास्त्र ही विज्ञान है। उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। दर्शनशास्त्र उसका सम्पूर्ण रूप और विभिन्न विज्ञान उसी प्रकार विभिन्न भाग हैं, जिस प्रकार पत्थरों से एक थम्भा बनता है। इस प्रकार की शिक्षा वाले व्यक्तियों को ही दर्शनशास्त्र और विज्ञान दोनों का निर्माण करना चाहिये, अन्यथा बुद्धिमान मनुष्य भी मूर्ख बन जावेंगे, क्यों कि वह लोग अब तक सभी ऐतिहासिक धार्मिक सिद्धान्तों की हवा खाये हैं। हम को अरस्तु (Aristotle), थिओफ्रैस्टस (Theophrastus),

ऐल्बर्टस मैगनस, और हर्बर्ट स्पेंसर जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो प्रकृति का बिस्तार से अध्ययन कर सकें, और साथ ही विश्व के साधारण रूप और बाह्य आकार को विचार भी दे सकें। प्रयोगों सम्बन्धी विज्ञान को न जानने वाले अभागे वैज्ञानिक सत्य विचारों के वासते अपनी ही कल्पनाओं और विचारों में गलती कर जाते हैं। वह अपने प्रतापी सिद्धान्त का विकास अपने ही मस्तिष्क से उस प्रकार करते हैं, जिस प्रकार घोंघा अपने पायेदार घर को अपने ही अंदर से बनाता है। वह भारतीय, ईसाई, और ईरानी रहस्यवादियों के समान अन्दर को देख कर अपने नेत्र बंद कर लेते हैं; वह बाहिर को देख कर प्रकृति का अध्ययन नहीं करते। उनकी प्रणाली स्वयं कार्य न करने और अन्तर्दृष्टि की है, और उनके दर्शनशास्त्र में प्रायः अयथार्थ भाव और अयोग्य सर्व सामान्य नियम होते हैं। वह एक सूखे कुए अथवा खाली भोजन भंडार के समान होता है। इस प्रकार दार्शनिक बनने का बहाना करने वाले किसी भी बात और प्रत्येक बात की व्याख्या करने का उद्योग करते हैं; क्योंकि वह घटनाओं और प्रकृति के नियमों से बंधे हुए नहीं होते। हीन (Heine) ने इस प्रकार की प्रणाली के निर्माताओं का कौशलपूर्ण परिहास किया है-

> **"वह सभी टुकड़ों को खेंच कर और उनको एक साथ मिला कर**
> **सुविधाजनक और सुन्दर वस्तु बना देता है।**
> **जब कि वह अपनी रात्रि की टोपी और फटे हुए बस्त्रों से ही इस**
> **विशाल विश्व की दरार को रोक देगा।"**

अतएव आपको 'पूर्ण' और 'वास्तविकता' के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिये। विज्ञान केवल सकारण और सम्बन्ध वाले पदार्थों का ही वर्णन करता है। वह 'पूर्ण' के विषय में कुछ नहीं जानता। स्वेडेन के कवि गुस्टव फ्राडिंग (Gustav Frading) के शब्दों में इस प्रकार की सब प्रणालियों को अस्वीकृत कर दो—

"मैं 'ऊपर' और 'नीचे'
'आदर्शवाद' और 'यथार्थवाद' के इस मत भेद में थक गया हूं।
वह हमारे मस्तिष्कों को चीर २ कर टुकड़े २ कर
देते हैं और केवल पीट कर भूसा ही भूसा निकालते हैं।"

(२) आपको ज्ञान के सिद्धान्त पर भी अधिक समय देने की आवश्यकता नहीं है। इस बात की व्याख्या करना संभव नहीं है कि मनुष्य अपने चारों ओर की परिस्थिति का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करता है। न यह सिद्ध करना ही संभव है कि बाह्य जगत् का वास्तव में अस्तित्व है। इस प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इस बात की जांच करना भी व्यर्थ है कि हमारे विचार 'वास्तविकता' के अनुसार हैं अथवा नहीं। मनुष्य को अपने अनुभव के अनुसार ही प्रकृति की व्याख्या करनी चाहिये, उसके वास्ते कोई दूसरी प्रकृति नहीं है। जिसको दूसरे विचारक 'आकृति' कहते हैं, वही युक्तिवादियों (Rationalists) के लिये 'वास्तविकता' है। हमारा ज्ञान का सिद्धान्त पूर्ण नहीं हो सकता। वह अवश्य ही मनुष्यजाति पर केन्द्रित होना

चाहिये। आपके लिये इस का निश्चय करना भी आवश्यक नहीं है कि 'न्याय करने का मानसिक कार्य' किस प्रकार 'ग्रहण करने' 'विचार करने' और 'तर्क करने की' निश्चयात्मक प्रणालियों से सम्बन्धित है। इस प्रकार के ज्ञान के सिद्धान्त के सभी सूक्ष्म विचारों को दर्शनशास्त्र नियमित अभ्यास करनेवाले उन दार्शनिकों के लिये छोड़दो, जिनको शब्दों और वाक्यों के युद्ध में ही आनन्द आता है। इस प्रकार के झगड़े कभी समाप्त नहीं हो सकते। उस आश्चर्यजनक दार्शनिक की नकल करने का यत्न मत करो, जो बटलर (Butler) के कथनानुसार।

> "दक्षिण अथवा दक्षिण-पश्चिम की ओर को मुड़े हुये बाल को पहचान कर विभक्त कर सकता था।"

(३) आपको 'न्याय', उनके विभाग और उनके 'सत्य' और 'असत्य' की पहचान की समस्या के झमेले में नहीं पड़ना चाहिये। बाल की खाल निकालने वाले नैयायिक अपने 'प्रत्यक्ष' 'ढीठता अथवा उपयोगिता' 'समवाय' आदि के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सदा ही वादविवाद करते रहते हैं। यदि आप इस प्रकार की सिद्धान्त सम्बन्धी व्यर्थ समस्याओं पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें तो आपको दर्शनशास्त्र से घृणा हो जावेगी।

(४) "निश्चयवाद" और "अनिश्चयवाद अथवा स्वतन्त्र सम्मति" के विद्वानों ने एक और व्यर्थ का झगड़ा चलाया है। इस भूलभुलैयां में—जिससे निकलने का कोई मार्ग नहीं है—पड़ने के मोह से सावधान रहो। कैथोलिक सम्पदाय

ने इस प्रश्न को ठीक ही 'आवश्यक' विषयों में सम्मिलित किया है। इसके सम्बन्धी धार्मिक तर्क करने वालों को परस्पर विरुद्ध सम्मति रखने की स्वतन्त्रता है। युक्तिवादियों को आगे जाकर इस झगड़े को मूर्खता पूर्ण और व्यर्थ का वाग्जाल बतला कर रोकना चाहिये। जिस समस्या पर हमारे वादविवाद करने की संभावना है, उसका कभी भी समझ में आने योग्य शब्दों में वर्णन नहीं किया गया। क्या अनिश्चयवादियों का यह अभिप्राय है कि एक ईमानदार उत्तम नागरिक अचानक ही जेब कतर सकता है अथवा एक स्त्री पर आक्रमण कर सकता है? नहीं उनका यह अभिप्राय नहीं है। क्या निश्चयवादियों का यह अभिप्राय है कि मानवी मस्तिष्क को नियम के अनुसार बंधे हुये एक यन्त्र अथवा एक ग्रह के समान कार्य करना पड़ता है। उनका अभिप्राय यह नहीं है। वास्तव में यह जानना असम्भव है कि यह इतना शोर किस लिये मचाया जा रहा है। अतएव मेरा विश्वास है कि इस झगड़े में कोई गम्भीर विशेषता नहीं है। हमको मनोविज्ञान की घटनाओं का अध्ययन करना चाहिये, और इस प्रकार के अध्यात्मिक झगड़ों से बचना चाहिये, जैसे कि मध्यकाल के साम्प्रदायवादी पसंद करते थे। इस वादविवाद में आचारशास्त्र की तो गंध भी नहीं है। जनता को इस जन्म अथवा दूसरे जन्म में दण्ड देने अथवा पारितोषिक देने के 'उत्तरदायित्व' को स्थिर करने में हमको कोई रुचि नहीं है। वह न्यायविधान हमारे दर्शनशास्त्र का भाग नहीं है।

तब इस प्राचीन झगड़े में अपने २ समय को क्यों व्यर्थ खोते हो? मनोविज्ञान, उसकी घटनाओं और नियमों का अध्ययन करो।

(५) एक ओर समय का सम्मानित किन्तु निरर्थक वाद्विवाद 'मस्तिष्क' और 'पुद्गल' के सम्बन्ध के विषय में है। आप उसका शताब्दियों तक अनुकरण कर सकते हैं, किंतु आपको उसे कोई महत्व देने की आवश्यकता नहीं है। अन्योन्याश्रयिककार्यवाद (Interaction), समानन्तरवाद, प्रभुयीशु की जयन्ती और आकस्मिक वाद के सिद्धान्त सभी गलत हैं। डाक्टर सीं० डी० ब्रौड (Dr. C. D. Broad) का कहना कि ऐसे सिद्धांत गिनती में सतरह हैं और वह सभी ग़लत और ग़लत से भी बुरे हैं, जैसा कि प्रोफेसर जे० बी० पैट ने (जो स्वयं द्वैतवादी थे) उसका वर्णन किया है कि हम उस समस्या की 'बेपरवाह, कृत्रिम, और स्वतंत्र प्रकृति" पर ज़ोर देने के लिये ढीठतावाद के अत्यन्त कृतज्ञ और आभारी हैं। किंतु आपको ढीठतावादियों से भी आगे जाना चाहिये, आपको न तो अद्वैतवादी और न द्वैतवादी ही बनना चाहिये। आपको केवल वैज्ञानिक बनना चाहिये। 'पुद्गल' और 'मस्तिष्क' जैसे पुराने आध्यात्मिक चीथड़ों को सदा के लिये फेंक दो, न कोई 'पुद्गल' है और न कोई 'मस्तिष्क' है। केवल आश्चर्यजनक पदार्थ और उनके नियम हैं, 'पुद्गल' और 'मस्तिष्क' दोनों ही एक प्रकार के निराकार भाव रूप हैं। दोनों पुराने प्रश्नों और नये उत्तरों को

स्मरण रखो। 'मस्तिष्क क्या है?' 'इस विषय में मस्तिष्क को मत उलझाओ' पुद्गल (Matter) अथवा मैटर क्या है? यह 'यह कुछ बात नहीं है' (It does'nt matter.)। आप ऊंट की छाया को नाप कर और उसकी परीक्षा करके ऊँट के शरीर निर्माण का अध्ययन नहीं कर सकते, इसी प्रकार आप विचार करने, अनुभव करने, और इच्छा करने की प्रगतियों के विषय में एक काल्पनिक समस्या के ऊपर—जो वास्तव में ईश्वरवाद से उत्पन्न हुई है—लड़कर अधिक नहीं जान सकते। मध्यकाल के उस बनावटी दर्शनशास्त्र से बचो, जो आप को भी उतना ही कम लाभ प्रद सिद्ध होगा, जितना उमर ख़य्यास को सिद्ध हुआ था—

> जब मैं युवा था, हकीमों और सन्तों के पास बार २ जाकर प्रत्येक विषय में उनकी युक्तियां सुना करता था। किन्तु मैं सदा ही जिस द्वार से जाताथा उसी द्वार से वापिस निकल आता था।"

जब मनुष्य एक घर से दूसरे घर को जाता है तो वह फेर के रास्ते को छोड़ दिया करता है; उसी प्रकार दर्शनशास्त्र को भी अब अपने आप को सरलता तथा नवीनता के ढांचे में ढाल लेना चाहिये। उसे उस पुराने मकान को छोड़ देना चाहिये, जिसमें विद्याभिमान वाले भूत बार बार आया जाया करते हैं, उस मकान से उसको समस्त वैज्ञानिक सामग्रियों और प्रयोगशाला से सजे हुए नये मकान में आ जाना चाहिये। उसको उस प्रकार के समझ में न आने योग्य शब्दाडम्बर पूर्ण मस्तिष्क खपाने वाले

वादविवादों को छोड़ देना चाहिये, जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है। उसको न्याय तथा मनोविज्ञान जैसी बाह्य शाखाओं को इससे पहिले ही प्रथक् कर के स्वतन्त्र विज्ञान बना दिया गया है। उसको इस प्रकार विभाग करने के कार्यों का स्वागत करना चाहिये। उसको केवल दो विषयों के ऊपर ही विचार करना चाहिये और उन्हीं पर उसका अधिकार भी है। उन में प्रथम विज्ञान है, जिसका सर्व साधारण और विश्व सम्बन्धी दृष्टिकोण से अध्ययन करना चाहिये, और दूसरा आचारशास्त्र है। इन बहुमूल्य पदार्थों को हाथों में लिये हुए वह हमारी हानि और सहानुभूति की पात्र हो सकती है। हम को दर्शनशास्त्र को प्रधानता और व्यवहारिक महत्त्व के उस पद पर पहुंचा देना चाहिये, जिस पर वह यूनान और रोम में था। यह भौतिकज्ञान और गुण की शिक्षा दिया करता था, न कि केवल अध्यात्मिक व्यर्थ अभिमान की। यह अरस्तु के अनुयाइयों, वैरागियों और योगियों के समान विज्ञान और आचरणशास्त्र दोनों को अपनाया करता था। साधारण जनता से यह शुष्क स्वभाव वाले गुणियों के द्वारा बातचीत किया करता था। वर्तमान दर्शनशास्त्र निर्जीव और शुष्क बन गया है। उसकी चटखी हुई नसों में कोई उष्ण रक्त नहीं है, उसके बड़े २ नेत्रों में कोई मस्ती नहीं है। अपने प्राचीन रूप की तुलना में वह केवल अस्थिपंजर मात्र ही है; क्योंकि उसका मांस और वसा (चर्बी) उसके विरोधि ईश्वरीयज्ञान ने खा लिये हैं। अब ईश्वरीयज्ञान जनता की दृष्टि

में गिर गया है और दर्शनशास्त्र फिर अपने स्थान को ग्रहण कर सकता है। इसे वर्तमान युक्तिवादियों को पूर्ण और प्रतापी जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देनी चाहिये; इसको बिना अस्तित्व वाले पदार्थों के विषय में ग्रन्थ लिख २ कर ही संतुष्ट न होना चहिये। इसको विज्ञान का प्रचार और नवीन आचारशास्त्र का निर्माण करना चाहिये। इसको निकट भविष्य में स्थापित किये जाने वाले विश्व-साम्राज्य की नींव डालनी चाहिये। इस प्रकार का दर्शनशास्त्र ही आपका प्रेम, प्रकाश और जीवन होना चाहिये। मार्कस औरोलियस (Marcus Aurilius) और ल्यूक्रेटियस (Lucretius) का दर्शनशास्त्र इसी प्रकार का था।

दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने में आपको अरस्तू (Aristotle), एपीक्यूरस (Epicurus), स्पिनोज़ा (Spinoza), लोक (Locke), डाइडेरोट (Diderot), ला मेट्री (La Mettrie), डिहोल्बक (D'Holback), लुडविग-फ्यूरबक (Ludwig Feuerbach), टी० हक्सले (T. Huxley), आगस्टे कोम्टे (Auguste Comte), ई० हेकेल (E. Haeckel), हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spenser), डीजजेन (Dietzgen), थ० राइबट (Th. Ribot), पाइरे जैनेट (Pierre Janet), एमाइल डुरखीम (Emile Durkheim), ल्यूसिअन लेवी ब्रूल (Lucien Levy–Bruhl), विल्हेम ओस्टवल्ड (Wilhelm Ostwald), लुडविग बूचनर (Ludwig Buchner), बर्ट्रैंड रसेल (Bertrand Russel), जान

आर्थर टाम्सन (John Arthur Thomson), फ्रेडरिक सौडी (Frederick Soddy), कानवे लायड मर्गेन (Conway Lloyd Morgan), जूलियन हक्सले (Julian Huxley) तथा वैज्ञानिक दर्शनशास्त्र का अन्वेषण करने वाले अन्य विद्वानों के ग्रन्थों को विशेष ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये। उनकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व से आप में नवजीवन का संचार होगा और आपको एक नवीन प्रकाश का अनुभव होगा।

प्राचीन तथा नवीन दोनों ही प्रकार के अवैज्ञानिक अध्यात्मवादियों के ऊपर अपना समय नष्ट मत करो। वह नाम लेने योग्य भी नहीं है।

छटा अध्याय

समाज विज्ञान

समाज विज्ञान अध्ययन का बड़ा महत्वपूर्ण विषय है, इस से आपको शिक्षा मिलेगी कि प्राचीन काल में किस प्रकार सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं का जन्म तथा विकास हुआ, और किस प्रकार उन पर जल वायु, जातीय विशेषताओं, आर्थिक-शक्तियों, अन्धविश्वासों, तथा अन्य घटनाओं का प्रभाव पड़ा। यह आपके दृष्टिकोण को विस्तृत करके आपको नागरिकता के लिये तय्यार कर देगा। इससे आपको बहुत अधिक शिक्षा मिलेगी।

(१) आप उस ईश्वरीय सिद्धान्त में विश्वास करना छोड़ देंगे कि 'परमात्मा' ने कुछ संस्थाओं को सब समय के लिये स्थापित किया और पवित्र बना दिया। एक पूर्ण और नित्य व्यवस्थापक को किसी विशेष युग में सभी सामाजिक नियमों

का आरंभिक उपदेष्टा मानने के विचार से प्राचीन काल में बहुत अकर्मण्यता फैल चुकी है। ईश्वरीय ज्ञान का आदर्श सदा ही जड होता है, 'परमात्मा' ने अपनी इच्छा को एक बार हम सभी के मार्ग-प्रदर्शन के लिये प्रकाशित कर दिया। ईसाईयों का विश्वास है कि ईसामसीह के प्रगट होने के पश्चात् अब किसी पैग़म्बर की आवश्यकता नहीं है। मुसलमान लोग मुहम्मद को ही अन्तिम पैग़म्बर मानते हैं, कुछ बौद्धों की शिक्षा है कि किसी विशेष युग में तथा विशेष लोक में केवल एक ही पूर्ण बुद्ध होता है, और उसकी शिक्षा सभी को माननी चाहिये। किन्तु समाज विज्ञान सभी संस्थाओं की विशेषता और उनके मूल्य के सम्बन्ध में युक्तिवाद की भावना से वादविवाद करता है, वह इस के ईश्वरीय ज्ञान सम्बन्धी दावों की उपेक्षा करके उनको स्वीकार नहीं करता। इस प्रकार आपको यह विश्वास करने की शिक्षा दी गई थी कि रविवार को आराम करने के विषय में सिनाई पर्वत पर स्वयं परमात्मा ने अपने मुख से कहा था, किन्तु समाज विज्ञानवादी रविवार की छुट्टी के अस्तित्व को उनसे भी पूर्व बैबीलोनिया वासियों में भी बतलाते हैं। समाज-विज्ञान ने पता लगाया है कि इसी प्रकार की संस्थाओं का अस्तित्व अनेक भिन्न २ राष्ट्रों और जातियों में था। हर्बर्ट स्पेंसर का 'वर्णनात्मक समाज विज्ञान' (Descriptive Sociology) इस विषय की शिक्षा की खान है। प्रोफ़ेसर वेस्टरमार्क (Westermarck) के अनुसन्धानों से तो यह जान कर आपको आश्चर्य

होगा और धक्का लगेगा कि सभी प्रकार की विवाह रीतियां मनुष्य जाति में बराबर रही हैं और अब भी हैं, और भिन्न २ देशों में भिन्न २ कारणों से सदा ही पती पत्नी सम्बन्ध विच्छेद (तलाक) की स्वीकृत दी गई है। महिलाओं की समस्या में आपको विशेष रुचि होगी, जिसमें आप भिन्न २ समय में समाज में स्त्रियों के स्थान के विषय में प्रकाश डालने वाली घटनाओं का अध्ययन करेंगे। यदि आप अभी तक कूप मण्डूक ही बने हुए हैं तो समाज विज्ञान आपके अन्दर से अपने को बड़ा समझने की भावना और राष्ट्रीय अभिमान को दूर कर देगा। इस से आपको शिक्षा मिलेगी कि अन्य राष्ट्रों में आपसे भी अच्छी २ रीतियां हैं यह आपको कुछ उन विचित्र प्राचीन रीति रिवाजों के आरम्भ के विषय में बतलावेगा, जो सभ्य कहलाने वाले देशों में अब भी हैं। आप को इस बात का विश्वास हो जावेगा कि सब संस्थाएं स्त्री और पुरुषों की ही निर्माण की हुई हैं और किसी अंश में सभी का उन्नति से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है। कुछ समय के पश्चात् उनमें परिवर्तन और उन्नति होनी ही चाहिये। राजाओं के 'ईश्वरीय' अधिकार, चचेरे भाई के साथ चचेरी बहिन का विवाह न करने की 'ईश्वरीय' आज्ञा, बहुपत्नीत्व बहुपतित्व वा एक पतित्व और एक पत्नीत्व की स्वीकृति, स्त्रियों की पराधीनता के ईश्वरीय नियम आदि के मिथ्या सिद्धान्तों का भेद समाज विज्ञान आपके सन्मुख खोल कर रख देगा।

(२) समाज विज्ञान आपको बुद्धिमान् सामाजिक और

राजनीतिक सुधारक बना देगा। आप इस बात में विश्वास करना छोड़ देंगे कि कोई संस्था इतनी पूर्ण और लाभ प्रद है कि वह सदा ही चलनी चाहिये। आप कुछ विचार और रीति रिवाजों को अन्य देशों अथवा मुद्दत के भूले हुए भूत काल तक से लेने का यत्न करोगे। आप को इस बात का पता चलेगा कि कुछ रीति रिवाज, जो आपके देश में भयंकर और बुरे समझे जाते हैं दूसरे देशों में पसंद किये और अच्छे समझे जाते हैं। इस ज्ञान से आपके नेत्र खुल जावेंगे और आप इस बात की छानबीन करेंगे कि क्या वास्तव में ही अमुक रीति रिवाज भयंकर और बुरा है। समाजविज्ञान युक्तिवादियों को इस प्रकार नये सर्व साधारण विश्व—रीति रिवाजों की स्थापना करने में सहायता देगा, जिससे सारी पृथ्वी के एक समाज बनने की सम्भावना अधिक बढ़े। हम सबको ही अपने २ सब पुराने राष्ट्रीय अथवा धार्मिक प्रथाओं को छोड़ २ सभी पुराने रीति रिवाजों और प्राचीन संस्थाओं को एक रसायनिक पात्र में डाल देना चाहिये, और समाजविज्ञान को उससे उन नवीन लड़ियों का निर्माण करने देना चाहिये, जो हमको भविष्य के नये समाज के रूप में एक करदें। किन्तु प्रथम आप को इस विषय का बिना किसी धार्मिक अथवा राष्ट्रीय पक्षपात का अध्ययन करना चाहिये, इसके पश्चात् आप को सुधार की आपत्ति योजना और उपायों के साथ २ मैदान में आना चाहिये।

सप्तम अध्याय

भाषाएं

होश संभालने पर बच्चा बोलना सीखता है। भाषा का ठीक २ उपयोग करना आरंभिक बाल्यावस्था में ही सीखा जाता है। आपको अपनी मातृभाषा पर पूरा शासन होना चाहिये, आपको उसे अपनी स्वाभाविक योग्यता के अनुसार बोलने और लिखने योग्य बना देना चाहिये। भाषा का अध्ययन, प्रबंध रचना तथा वक्तृत्व शक्ति मानसिक शिक्षा के प्रथम अंग हैं, यह समझा जाता है कि हमारे आरंभिक (प्राईमरी) स्कूल हमको राष्ट्रीय भाषा का पर्याप्त ज्ञान करा देते हैं, किन्तु आप के देश में कितने व्यक्ति ठीक और मुहावरेदार भाषा में लेख लिख सकते हैं? अनेक किसान और मज़दूर तो भद्दी गलतियों के बिना एक पत्र तक नहीं लिख सकते। हमारे वार्तालाप में ही इतना भद्दापन इस लिये है कि भाषा के अध्ययन की उपेक्षा की जाती है, वार्ता

लाप करना एक ललित कला है और भाषण उसका साध्यम है, हम वस्त्रों के भद्देपन को पसंद नहीं करते, किन्तु हम अपनी भाषा की अशुद्धता और भद्देपन को सहन कर जाते हैं। आपको अपनी मातृ भाषा, अपने पूर्वजों, कवियों और व्याख्याताओं की भाषा पर गौरव होना चाहिये। फ्रांसीसियों और ईरानियों के उदाहरण से शिक्षा लो। वह अपनी सुन्दर भाषा से कितना प्रेम करते हैं।

आपको शिक्षा का आरंभ स्वभावतः ही मातृ भाषा से करना चाहिये, किन्तु आपको उस शिक्षा को वहीं न रोक देना चाहिये। आपको कम से कम एक और भी आधुनिक भाषा को सीखने का उद्योग करना चाहिये। आपकी पसंद आपके कार्य अथवा व्यापार आपके रुझान और आपके ज्ञान सम्बन्धी रुचि पर निर्भर होगी। यदि आप बहुत बुद्धिमान् नहीं हैं तो अपनी भाषा से मिलती जुलती एक विदेशी भाषा को सीख लीजिये। इस प्रकार एक फ्रांसीसी इटालियन भाषा को, एक बंगाली हिन्दी को, और जर्मन इंगलिश भाषा को सीखने का उद्योग कर सकता है, यदि आप में भाषा सम्बन्धी अध्ययन की विशेष बुद्धि है तो आपको एक कठिन विदेशी भाषा सीखनी चाहिये। एक विद्वान् अंग्रेज चीनी भाषा को और एक बुद्धिमान् जर्मन फारसी अथवा अरबी को सीख सकता है। यह आवश्यक है कि यथासंभव प्रत्येक देश में सभी जीवित भाषाओं के ज्ञान का प्रचार किया जावे। प्रत्येक देश में प्रत्येक भाषा के अनेक अच्छे विद्वान् हो

सकते हैं। आपको भाषाओं के अध्ययन पर केवल व्यवसायिक दृष्टि से ही विचार नहीं करना चाहिये। एक व्यापारिक यात्री, एक राजपूत, अथवा मात्रा संघ का क्लर्क अपनी आजीविका की दृष्टि से कई २ भाषाएं सीख सकता है, किन्तु आपको भाषा का अध्ययन सब से अधिक आत्मशिक्षा की दृष्टि से करना चाहिये। आप एक भाषा के स्थान में दो का अध्ययन करके अपने व्यक्तित्व का विकास करते हैं। यदि आपका विदेशी भाषा का ज्ञान धनोपार्जन करने में भी सहायता देता है, तो आपको दुगना लाभ होता है, किन्तु प्रथम अपने मस्तिष्क को विकसित करो।

कम से कम विदेशी भाषा के अध्ययन से आपको अनेक लाभ होंगे। यह जान कर कि विभिन्न राष्ट्र एक ही विचार को एक ही रूप में प्रगट नहीं करते आपकी बुद्धि तेज़ होगी। यह बात बड़ी विचित्र है कि 'आप अच्छे तो हैं ?' जैसा साधारण प्रश्न इङ्गलिश, फ्रेंच, जर्मन और स्वीदश में अनेक भिन्न २ रूप में पूछा जाता है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि संसार के अनेक राष्ट्र सौ तक गिनते भी नहीं और न घड़ी के डायल (नम्बर वाली घड़ी के मुख) को हमारे ढंग पर ही पढ़ते हैं। इस प्रकार आपका कोठरी में बन्द रहने वाला मस्तिष्क संसार की शिक्षा से एकदम जागृत हो जाता है। आपको संसार के देशों के अस्तित्व का अब ज्ञान होता है। आपका मस्तिष्क आपकी राष्ट्रीय भाषा और जीवन के जेलख़ाने में बंद नहीं रहता। आपके सामने विचार, रीतिरिवाज, कविता और

इतिहास का एक नया संसार उपस्थित होता है। अब आप तंग विचार वाले, अर्द्धशिक्षित 'राष्ट्रीय' नहीं रहते। आप संसार भर को अपना देष मानने वाले शिक्षित व्यक्ति बनने के लिये अपने मार्ग पर चल पड़ोगे। मैं दो सूक्तियां आपको स्मरण कराता हूं, "प्रत्येक नई अध्ययन की हुई भाषा से आप एक नया आत्मा प्राप्त करते हैं।" "दो भाषा जानने वाला व्यक्ति दो मनुष्यों के बराबर बन जाता है।" जब आप फ्रेंच जैसी एक विदेशी भाषा का अध्ययन कर लेते हो आपको उस भाषा को बोलने वाली जनता में यात्रा करने की इच्छा होती है। अंत में आप अपनी यात्रा पर रवाना हो जाते हो, आप अपने को एक विचित्र देश में पाकर कांपने लगते हैं। उस समय आपके चारों ओर फ्रेंच आकृतियों वाले, फ्रेंच नामों वाले, फ्रेंच तरीकों वाले, फ्रेंच वार्तालाप वाले, फ्रेंच चेष्टाओं वाले, फ्रेंच समानता वाले और फ्रेंच प्रखर गति वाले मनुष्य, फ्रेंच कहवा और दूध, यहां तक कि फ्रेंच गालियां और शपथें तक होती हैं। आपको इस बात का पता लगता है कि फ्रांसीसी लोग उससे आधे बुरे भी नहीं होते, जैसा उनको अठारहवीं शताब्दी तथा नेपोलियन कालके युद्धों के समय के अंग्रेज ऐतिहासिकों ने लिखा है। आप भूतकाल के रक्त रंजित दृश्यों को भूल जाते हो और उनको प्रेम करने योग्य मित्र और साथी समझते हो, नकि पाठ्य पुस्तकों में वर्णित 'राष्ट्रीयशत्रु'-आप इस बात का अनुभव करने लगते हो कि अंग्रेज जनता को 'वाटरलू' स्टेशन और 'ट्रैफलगर स्कायर' का नाम बदल देना

चाहिये; क्योंकि यह नाम केवल युद्ध और विपत्ति की खेदजनक स्मृति को जीवित रखने का ही काम देते हैं। पता लगता है कि पेरिस के नागरिकों ने अपनी कुछ सड़कों (Streets) का नाम विदेशी संगीतज्ञ और कवियों के नाम पर रखा हुआ है; इस प्रकार आप उनकी विस्तृत आधार वाली कलापूर्ण-शिक्षा और सभ्यता की प्रशंसा करते हो। आपको इस बात से प्रसन्नता (अथवा खेद) होता है कि फ्रेंच जनता के मस्तिष्क अयुक्त और बचपन भरे वर्ण-पक्षपात से नहीं बंधे हुए हैं। उसके विरुद्ध जर्मन, अंग्रेज, और उत्तरी अमरीका वाले इस दुर्गुण को एक बहुमूल्य राष्ट्रीय थाती के रूप में बराबर प्रोत्साहित कर रहे हैं। आप को इस बात पर आश्चर्य होगा कि फ्रांसीसी लोग एक प्रिंस आफ वेल्स के बिना किस प्रकार काम चलाते हैं, अथवा उनके प्रसिद्ध समाचार पत्र वहां के न्यायालय में पहिने हुए महिलाओं के वस्त्रों का विस्तृत वर्णन क्यों प्रकाशित नहीं करते। फ्रांस में कुछ मास का निवास ही चिकित्सा जैसा प्रभाव दिखलाता है, यह आपके मस्तिष्क में से कुछ ऐसे विषैले माद्दे को निकाल देगा, जो आपके मस्तिष्क केन्द्रों में अनेक वर्षों तक विशुद्ध अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजी समाज ने भर दिया है, आप के अन्दर अंग्रेज और फ्रांसीसियों की सम्मिलित मनोवृत्ति का विकास होगा और आप केवल इंगलिश और विशुद्ध इङ्गलिश मनोवृत्ति को छोड़ देंगे। आप अपने मन में कहेंगे, "अब मैं ने अधिक से अधिक मनुष्य और कम से कम अंग्रेज बनने का निश्चय कर लिया है।" इसी

प्रकार अंग्रेज़ी पढ़ने और इङ्गलैण्ड हो आने वाला फ्रांसीसी भी अपने भावी जीवन के लिये सुधर कर एक दम बदल जाता है। वह अंग्रेज़ों की प्रणाली, अंग्रेज़ों की स्वतंत्रता, अंग्रेज़ों की दया, अंग्रेज़ों की सच्चाई, अंग्रेज़ों की सार्वजनिक भावना, अंग्रेज़ों की किराये पर मकान देने की प्रणाली, अंग्रेज़ों के नैतिक साहस, अंग्रेज़ों के नवीन कार्यों में प्रेम, अंग्रेज़ों की वीरता, अंग्रेज़ों की समय की पाबंदी, अंग्रेज़ों की ईमानदारी और शुद्धता, अंग्रेज़ों के मैदानों के खेल, अंग्रेज़ों की गंभीरता, अंग्रेज़ों के मज़ाक, अंग्रेज़ों की सेब की मदिरा, अंग्रेज़ों की चाय और अंग्रेज़ी बगीचों की प्रशंसा करेगा। वह स्कूल में पढ़ाये हुए 'विश्वास घाती जाति,' और "दूकानदारों के राष्ट्र" के विषय की सारी बातों को भूल जावेगा। उसमें फ्रांस और इङ्गलैण्ड की सम्मिलित मनोवृत्ति का विकास होता है; उस का अर्द्धविक्षिप्त राष्ट्रीयवाद का रोग जाता रहता है। वह अपने मन में कहने लगता है, "अब मैं ने अधिक से अधिक मनुष्य बनने और कम से कम केवल फ्रांसीसी बनने का निश्चय कर लिया है।"

उसी प्रकार, यदि आप अंग्रेज़ हैं और फ्रांसीसी तथा जर्मन दोनों भाषाओं को पढ़ते हैं तो आपका मस्तिष्क अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी और जर्मन तीनों के मिश्रण से बने हुए शुद्ध करने के मसाले में भीग जाता है। उस समय राष्ट्रीयता का कुष्ट रोग आपका और भी अधिक अच्छा हो जाता है। यह अत्यंत खेद की बात है कि समय और बुद्धि के परिमित होने से संसार की सब जीवित

भाषाओं को कोई भी नहीं सीख सकता। किन्तु आपको यथाशक्ति अधिक से अधिक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। बहुत भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना वास्तवमें बड़ी अच्छी दिल्लगी है। तब आप अनेक पुस्तकों और समाचार पत्रों को पढ़ सकते हैं, अपने घरमें विदेशियों का स्वागत कर सकते हैं, अपने प्रिय सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन के लिये पत्रों और विज्ञप्तियों का अनुवाद कर सकते हैं, छोटी और बड़ी २ सभाओं में दुभाषिये का काम कर सकते हैं। तथा आप अन्य भी अनेक ऐसे कार्य कर सकते हैं जिनको केवल अनेक भाषाओं को जानने वाला ही कर सकता है। मैं आपको सम्मति दूंगा कि तीस वर्ष की अवस्था होने से पूर्व ही आप कई एक विदेशी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लो। यह ज्ञानप्राप्ति आरम्भिक जीवन में ही कर लेनी चाहिये। बड़ी अवस्था में इस प्रकार के अध्ययन में न तो आपकी रुचि ही रहेगी और न आपको समय ही मिलेगा। अपने नव यौवन और जीवन के आरम्भ में ही अच्छी नींव डाल दो, उसका आपको ज्ञान, आचरण और कार्यकारी लाभों से सहस्रों गुना बदला मिलेगा कि आप उसका आनन्द जीवन भर उठाते रहोगे।

सहायक विश्वभाषा की आवश्यकता

एस्पेरैंटो भाषा

अनेक भाषाओं का अध्ययन करने पर आपको अनुभव होता है कि संसार की सभी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना संभव

नहीं है। आप इस बात को भी समझने लगते हो कि भाषाओं की यह विभिन्नता ही राष्ट्रों को एक दूसरे से दूर रख कर संदेह और अविश्वास उत्पन्न कराती रहती है। आप विभिन्न आन्दोलनों के अन्तर्राष्ट्रीय संघ और विभिन्न भाषाओं के शब्दों की गड़बड़ी से घृणा करते हो। भाषणों का सदा ही दूसरी २ भाषाओं में अनुवाद किया जाना चाहिये। किन्तु इस प्रकार उक्त सभा में एकता और स्वच्छन्दता का जीवित भाव कभी विकसित नहीं हो सकता। वह सदा ही मृतक और शुष्क कार्य जैसी रहती है और प्रायः गड़बड़ी में ही समाप्त हो जाया करती है। सब प्रतिनिधियों के एक दूसरे से बातचीत न कर सकने के कारण, वहां विभिन्न राष्ट्र नेताओं का केवल यन्त्रीय सम्मिश्रण हो जाया करता है। बुद्धि और हृदयों की वास्तविक एकता भाषा की एकता के विना नहीं हो सकती। गूंगों के संकेतों और मुस्कराने के वायुमण्डल में सच्ची सहचारिता उत्पन्न अथवा विकसित नहीं हो सकती। जब एक सदस्य दूसरे से सीधे बातचीत अथवा अपील नहीं कर सकता तो प्रभावपूर्ण वाद बिवाद भी नहीं किया जा सकता। इसी कारण राष्ट्रसंघ (League of Nations) तक में वास्तविक जीवनशक्ति नहीं है। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय, जो रोम में प्रधान केन्द्रवाला एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है, अपने सब पादरियों को वार्तालाप और पत्रव्यवहार के लिये लैटीन भाषा पढ़ने की आज्ञा देता है। बिना लैटिन के उसकी उपयोगिता एक सप्ताह भर भी नहीं रह सकती। यह बड़ी विचित्र बात है कि यद्यपि अनेक समाज-

को अथवा चीन स्पेन की भाषा को अपने सब स्कूल और कालेजों में पढ़ाना स्वीकार कर लेगा? इस काल्पनिक स्वप्न की व्यवहारिकता की लेशमात्र भी सम्भावना नहीं है।

विश्व भाषा की विशेषता

अतएव हमको एक नई विश्व-भाषा का ही आविष्कार करना चाहिये। इस समय इङ्गलिश, एस्पेरैंटो, ऐंग्लिक, बेसिक, मोण्डो (Mondo), तथा अन्य छोटी मोटी भाषाएं आप पर आक्रमण करके अपने २ पक्ष में युक्तियां उपस्थित कर रही हैं। आपके सन्मुख निर्वाचन करने के लिये बड़ा विस्तृत क्षेत्र पड़ा हुआ है। किन्तु सम्भवतः आप एस्पेरैंटो के पक्ष में निश्चय करेंगे, क्योंकि इसको पढ़ना अत्यन्त सुगम है। इसके अतिरिक्त इसके लिये पचास वर्ष से आन्दोलन किया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सहायक भाषा को अत्यन्त सुगम होना चाहिये, उसमें कठिनता और व्याकरण की पेंचीदगियां न हों; वह उन्नति करने तथा ग्रहण करने योग्य हो; और उसका समर्थन एक ऐसे जीवित आन्दोलन से किया जावे, जिसमें अनेक उत्साही स्त्री पुरुष भाग लें। यह अन्तिम शर्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक विद्वान् प्रत्येक बात में पूर्ण आश्चर्यजनक भाषा का आविष्कार कर सकता है, किन्तु यदि वह अनेक उत्साही शिष्यों और साथियों को उसके प्रचार में न लगा सके तो उसका कोई भविष्य नहीं है। इतिहास में सफलता के समान कोई वस्तु सफल नहीं होती। एस्पेरैंटो भी निर्दोष रचना नहीं है, मुझे सन्देह है कि

कोई व्यक्ति सभी दोषों और कठिनाइयों से रहित पूर्ण भाषा का आविष्कार कर सकता है। आराम कुर्सी पर बैठ कर समालोचना करने का कोई भी अभ्यासी एस्पेरैंटो में बहुत से दोष निकाल देगा; यहां तक कि वह बहुत से सुधारों का भी प्रस्ताव करेगा। किन्तु इस प्रकार के दोष योग्य नहीं होते। हमको सब प्रकार से पूर्ण भाषा की आवश्यकता नहीं है। हमको एक पर्याप्तरूप में सरल और सुगम मात्र ऐसी भाषा की आवश्यकता है, जिसको साधारण से साधारण स्त्री पुरुष भी अपना विशेष समय देकर ही एक या दो वर्ष में सीख सकें। अनेक विद्वान् एक नई भाषा का आविष्कार कर सकते हैं। उनके पास सभी आवश्यक व्याकरण और कोष हैं। किसी कृत्रिम भाषा को जन्म देना तो अत्यन्त सुगम है, किन्तु उसको कुछ समय तक भी जीवित रखना अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार साधारण प्रचारकों ने अनेक क्षणस्थायी धार्मिक सम्प्रदायों का प्रचार किया, किन्तु एक महान् धर्माचार्य (पैग़म्बर) ही बाह्य परिस्थितियों की सहायता लेकर एक सफल धर्म की स्थापना कर सकता है, उसी प्रकार एक विश्व-भाषा को भी एक महान् व्यक्तित्व और प्रचार के लिये अनुकूल वातावरण की आवश्यकता है।

एस्पेरैंटो भाषा की विशेषता

ऐस्पेरैंटो का आविष्कारक जैमेन हाफ़ (Zamenhof) अवश्य ही एक प्रद्धि नेता हुआ होगा, क्योंकि उसने अनेक बुद्धिमान् शिष्यों और साथियों का सहयोग प्राप्त कर लिया था।

सन् १८८० ई० से बाद के फ्रेंच और रूसी उत्साहियों ने इस संदेश का प्रचार किया, उनमें सच्चे देवदूतों के सभी गुण थे और इस आश्चर्यजनक और उत्साहवर्द्धक तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि एस्पेरेंटो भाषा अब निश्चित् रूप से सफल हो गई है। उसके पास बड़ा भारी साहित्य है। अनेक व्यापारिक संघ (Chambers of Commerce) और रात्रि पाठशालाओं में उसकी शिक्षा दी जाती है। लीवरपूल, जेनेवा और क्रैकाऊ (Cracow) के विश्वविद्यालयों में एस्पेरैंटो की शिक्षा देने के लिये प्रोफेसरी के पद बना दिये हैं। यह बत्तीस देशों में एक सहस्त्र से भी अधिक स्कूलों में पढ़ाई जा रही है। अनेक धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी और व्यवसायिक संस्थाओं ने इसको अपना लिया है और राष्ट्रसंघ की कमेटी ने भी इसकी सिफ़ारिश की है। यहां तक कि गत महायुद्ध ने भी इसका प्राणान्त नहीं किया। दक्षिणी फ्रांस के कुछ गांवों में फ्रेंच और एस्पेरैंटो भाषा में संकेत बोर्ड लगाये गये हैं। ऐस्पेरैंटो बेतार के तार के पंख लगा कर अनेक घरों में उड़ रही है। रूस ने तो इसको सरकारी तौर से स्वीकृति और संरक्षण प्रदान किया है। प्रस्ताविक भाषाओं में अन्य कोई भाषा उन्नति के चिन्हों को इतना अधिक प्रगट नहीं कर सकती। यदि हम अहंकारी गोलमाल करने वाले अथवा उच्च कोटि के देशभक्त हैं तो हम अपनी नयी योजनाओं अथवा अंग्रेज़ी के बेस्वाद कोफते का बराबर विज्ञापन करते रहेंगे और उस प्रकार सच्चे विश्वबन्धुत्व वादियों (Cosmopolitans) को विरोधी

युद्ध करने वालों में विभक्त कर देंगे। किन्तु हम बुद्धिमान् और सच्चे हैं तो हमको (अपनी सब त्रुटियों सहित) एस्पेरटो को स्वीकार कर लेना चाहिये और इस महान् ऐतिहासिक कार्य को पूर्ण करके इसकी रक्षा के लिये तैयार हो जाना चाहिये। हरे तारे के चिन्ह वाले झंडे के नीचे हम अवश्य विजयी होंगे।

प्राचीन भाषाएं

यह तो जीवित भाषाओं के विषय में हुआ। मृतक प्राचीन भाषाओं में से भी यदि आप उच्चकोटि की भाषासम्बन्धी प्रतिभा वाले हैं तो आपको एक या दो भाषाओं को (केवल एक ठीक रहेगी) अवश्य चुन लेना चाहिये। यदि आप व्याकरण के शब्द और धातुओं के भयंकर रूपों को याद कर सकते हैं और आपकी किसी विशेष विषय में विशेष रुचि है तो मैं प्राचीन देवों के इस विशाल आसन पर आक्रमण करने के लिए आपकी कुशल मनाऊंगा। आप प्लैटो, अरस्तू अथवा ल्यूक्रेटियस के प्रभाव पूर्ण व्यक्तित्व से निकट सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। आप महायान के रहस्यों का गहराई तक अध्ययन कर सकते हैं अथवा आप कनफ्यूशियस और मेनसिअस का सहयोग प्राप्त कर सकते हैं, आप शक्तिशाली मुंह वाले अरब के पैगम्बर की गूंजने वाली बिजली की गरज से और अल्फ़रेबी तथा इब्न-रश्द की प्रकाशित विश्वज्ञान पूर्ण बुद्धि से आकर्षित हो सकते हैं। यदि आप में इस प्रकार के बुद्धिमत्ता पूर्ण भाव और अभिलाशाएं हों तो आप यूनानी (Greek), लैटिन, संस्कृत, चीनी भाषा, अरबी

अथवा अन्य किसी प्राचीन भाषा का अध्ययन कर सकते हो। उसके व्याकरण कोष के खुरदरे और कठोर छिलके के अंदर छिपे हुए विचारों और जीवन के सार तक पहुंचने के पूर्व आपको उस भाषा का विस्तार पूर्वक पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। इसके लिये कुछ बुद्धि और बड़े कठिन परिश्रम की आवश्यकता है।

यदि आप एक योग्य भाषा तत्त्ववेत्ता तो हो, किन्तु आपके अध्ययन का कोई विशेष विषय नहीं है तो आपको उस प्राचीन भाषा के पढ़ने की इच्छा करनी चाहिये, जो आपके व्यक्तिगत निर्माण के लिये अधिक से अधिक उपयोगी और सहायक हो। यदि आपकी यही इच्छा है तो आपको किसी प्रकार की शीघ्रता न करके अपने जीवन भर भक्ति के लिये यूनानी भाषा को पसंद करना चाहिये। (Hellas) हेलास लोगों की इस सूक्ष्म और कोमल भाषा में अत्यन्त बहुमूल्य प्राचीन काव्य, नाटक, दर्शनशास्त्र, अलंकार, जीवनचरित्र और इतिहास प्रतिष्ठित हैं। यह भाषा अन्य प्राचीन भाषाओं से उत्तम ग्रन्थ दे सकती है। यूनानी भाषा में यह ग्रन्थ सर्वोत्तम गिने जाते हैं। आत्मनिर्माण के लिये आवश्यक सामग्री इतनी अन्य कोई प्राचीन भाषा नहीं दे सकती। आधुनिक बुद्धिवादियों (Rationalists) के लिये तो यूनानी भाषा विशेष रूप से मूल्यवान् है, क्योंकि यूनानी दर्शनशास्त्र की रचना अधिकतर विज्ञान तथा मनुष्य जीवन के आधार पर की गई है। अन्य देशों के सन्तों और उपदेशकों की अपेक्षा यूनान

के महान् दार्शनिक भावना में हमारे अधिक निकट हैं। वह वर्तमान बुद्धिवाद के आगे दौड़ने वाले अमर व्यक्ति हैं। बुद्धिवाद के नेताओं को यूनानी भाषा का उसी प्रकार अध्ययन करना चाहिये, जिस प्रकार यहूदी लोग इबरानी भाषा का, रोमन कैथोलिक पादरी लैटिन भाषा का, मुसलमान विद्वान् अरबी भाषा का और हिन्दू ब्राह्मण संस्कृत भाषा का अध्ययन करते हैं। बुद्धिवाद की पवित्र प्राचीन भाषा यूनानी ही है।

हेलेनिक साहित्य और दर्शनशास्त्र के उच्च दुष्प्राप्य सौंदर्य के विषय में यहां कुछ प्रसिद्ध विद्वानों और कवियों की सम्मति का उल्लेख किया जाता है—

गोयथे—"यूनानी शोकान्त रचनाओं के कवियों के ग्रन्थों की विशेषता महत्त्व, सौन्दर्य, विशेष ज्ञान, पूर्ण मनुष्यता, जीवन का उच्च तत्वज्ञान, विचार करने की उच्च प्रणाली और शक्तिशाली अर्न्तज्ञान है। हम इन गुणों को उनके वर्तमान कविताओं, प्राचीन, काव्यों और नाटकों सभी में पाते हैं।...एसचाइलस (Aeschylus) और सोफोकिल्स (Sophocles) जैसे बड़े २ अटीका (Attica) वासी कवियों के सामने मैं तो वास्तव में कुछ भी नहीं हूं।"

पी० बी० शेले (P. B. Shelley)—उनकी भाषा ही... ...अपनी उत्तम भिन्नता, सुगमत्ता लचकीलेपन और विपुलभाव में, पाश्चात्य संसार की प्रत्येक दूसरी भाषा से अधिक उत्तम है।"

टी० बी० मैकालें—मुझे बड़ा आश्चर्य है कि मैं भक्ति भाव से

यूनानी साहित्य का अध्ययन करने के लिये पुनः प्रोत्साहित हो गया हूं ········मैंने अनुभव किया कि ज्ञान के आनन्द का मैंने कभी ऐसा उपभोग नहीं किया। वह लोग कितने आश्चर्य-जनक थे"

—राबर्ट ब्रिजेज़—

संसार को प्रकाशित करने वाला उससे उच्च कोटि का कोई ज्ञान नहीं है जैसा उन छोटे से हेला वासियों के पास था, यहां या वहां कठिनता से हमारे अन्दर कोई ऐसा पुरुष जीता होगा जो उन दार्शनिकों का मुकाबला कर सके।

("सौंदर्य की परीक्षा" से)

प्रोफेसर गिल्बर्ट मरे—

ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी के यूनानियों ने ज्ञात संसार में सब से उत्तम काव्य और कला, सबसे उत्तम राजनीतिक विचार श्रेणि, और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दर्शनशास्त्र उत्पन्न किया है।··· ·········कठिनता से ही कोई विचार अथवा लिखने की ऐसी प्रणाली होगी, जिसकी समानता प्राचीन यूनान में न मिल सके, ············स्वतंत्रता और न्याय का विचार; शरीर, व्याख्यान और मस्तिष्क की स्वतन्त्रता, बलवानों और निर्बलों, धनी और निर्धनों में न्याय, सभी यूनानी राजनैतिक विचारों में भरे हुए हैं। ······· अधिक उत्तम पुरुषों के विचारों को प्रगट करने के कारण यूनानी अधिक उत्तम भाषा है।"

जे० ए० फ्रौडे—"लम्बी लम्बी यात्राओं में मैं यूनानी लोगों

को अपना सब से उत्तम साथी बनाया करता हूं।…मेरे पास प्राचीन ग्रन्थों का एक जेबी गुटका है, जिसको मैं बड़ी २ यात्राओं में सदा अपने साथ रखता हूं। यूनानी और लैटिन साहित्य ऐसी मदिरा है जो अधिक समय होने से भी नहीं बिगड़ती।…यह प्राचीन संसार की आबदार मोतियों की मालाएं ज्ञान के आकाश में स्थिर तारों के समान चमक रही हैं।"

प्रोफेसर सी० आर० जेब-"यूनानी विद्वानों के विचार अपने प्रथम बार प्रगट किये जाने के समय से ही संसार में फल दिखला रहे हैं।…सब से प्रथम उन्हों ने ही बुद्धि को अपने सामाजिक जीवन का मार्ग प्रदर्शक बनाया।…हम सभी प्रकार के लेखकों, कवियों, ऐतिहासिकों, और दार्शनिकों को स्वभाव से ही किसी कार्य का बौद्धिक करण जानने के लिये उद्योग करता हुआ देखते हैं।"

प्रोफेसर आर० क्रुन्द—यूनानियों ने उच्चकोटि की शुद्ध मानवी शिक्षा के विश्व व्यापी उद्देश्यों का पता लगाया और उसको लग भग पूर्ण सुन्दरता के रूप में सजाया। जिससे वह सभी देशों और युगों के विद्वानों की प्रशंसा और आदर्श का विषय बन कर अनुकरण किया जा सके।

अनुवादक लोग

अपने व्यक्तिगत आनन्द और अपनी शिक्षा के अतिरिक्त आप प्राचीन और नवीन विदेशी भाषाओं की कुछ पुस्तकों का अनुवाद अपनी मातृभाषा में करके उन्नति तथा सभ्यता का प्रचार करने में बड़ी भारी सेवा कर सकते हैं। आपको

भूतकाल और वर्तमानकाल अथवा एक विदेशी राष्ट्र और अपनी जाति में एक पुल बनाने में सहायता करनी चाहिये। इस प्रकार आप अपने देश के इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करेंगे। एक उत्तम अनुवादक मनुष्यजाति को बड़ा भारी लाभ पहुंचाता है। वर्तमान् काल में प्रत्येक देश के साहित्य, दर्शनशास्त्र और विज्ञान की शिक्षा अन्य देशों को केवल अनुवादों के द्वारा ही दी जा सकती है। प्राचीनकाल में भाषाओं के विद्वानों ने इस प्रकार अपने देश में नये २ धार्मिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक आन्दोलनों को चलाया था। उन्होंने अपने देशवासियों को अधिक धनी और अधिक बुद्धिमान बना कर संसार के उन्नतिशील आन्दोलनों में भाग लेने योग्य बना दिया था। जिस प्रकार जहाजी नाविकों ने पूर्व से मसालों और रेशम को पश्चिम में भेजा, उसी प्रकार उद्योगी अनुवादकों ने नवीन विचार उत्पन्न करने योग्य बड़े २ राष्ट्रों को अपने उन विचारों और आदर्शों का विनियम करने योग्य बनाया, जो निश्चय ही व्यापारी के नाशवान् माल से कहीं अधिक मूल्यवान् हैं।

इतिहास के अन्दर प्रत्येक युग में बड़े २ अनुवादक अन्तर्राष्ट्रीय व्याख्या करने वाले के रूप में उपस्थित होते हैं। हम उन में से सभी के अत्यन्त आभारी हैं। सीसेरो (Cicero) और ल्यूक्रेटियस (Lucretius) ने यूनानी दर्शनशास्त्र का रोमन लोगों में प्रचार किया। ईसा मसीह आरमीनिया की भाषा (Aramaic) बोला करता था, किन्तु उसके शब्द हमारे पास यूनानी

के द्वारा आए हैं। सेंट जेरोम (St. Jerome) ने वाईबिल का लैटिन में अनुवाद किया। * नेस्टोरियन (The Nestorions) सम्प्रदाय वालों ने यूनानी ग्रन्थों का शाम की भाषा (Syriac) में अनुवाद किया। चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार संस्कृत तथा भारतीय भाषाओं के अनेक चीनी अनुवादों से किया गया। कुमारजीव, य्वान-च्वांग तथा अन्य विद्वानों ने इस वहुमूल्य परिश्रम में अनेक वर्ष लगाये। इस्लामी देशों का मध्यकालीन विद्या प्रचार आन्दोलन शामदेश और संस्कृत के ग्रन्थों के उन अरवी अनुवादों के आधार पर चलाया गया था, जिनका हुनैन--इव्न--ईशाक़, इव्न--अल--वालुक, कोस्टा वेन लुक तथा अन्य विद्वनों ने किया था। यूरोप में वारहवीं और तेरहवीं शताव्दी का प्राचीन विद्या-प्रचार डोमीनिक गुन्डीसैलवस (Dominic Gundisalvus), क्रेमोना के जेरल्ड (Gerald of Cremona), टोलेडो के मार्क (Mark of Toledo) इव्न-दावूद, तथा अन्य अनुवादकों की भक्ति और उत्साह के कारण हुआ था। पन्द्रहवीं और उसके वाद की शताव्दियों में यूरोप में वास्तविक विद्या प्रचार उन वड़े २ अनुवादकों ने किया, जिन्हों ने यूनानी भाषा का अध्ययन करके उसके उत्तम ग्रन्थों का अनुवाद लैटिन, इटैलियन, इंगलिश और फ्रेंच भाषाओं में किया था। इस प्रकार के अनुवादक फिसीनो (Ficino), अम्योट (Amyot), नार्थ (North), एरेस्मस

---

*यह एक ईसाई सम्प्रदाय है। कुस्तुन्तुनिया निवासी नेस्टोरियस इसका प्रवर्तक था।

(Erasmus) तथा अन्य विद्वान् थे ।

वर्तमान् समय में भी यूरोपीय अनुवादकों ने बौद्ध धर्म के पाली साहित्य, चीनी दार्शनिकों के ग्रन्थों, फारसी काव्यों, बहाई ग्रन्थों, इब्सेन के नाटकों, डाक्टर टगोर के ग्रन्थों तथा अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों को समस्त संसार के पढ़ने तथा समझने योग्य बना दिया है ।

अनुवादकों ने नये देशों में शिक्षा के फलने फूलने में उसी प्रकार सदा सहयता की है जिस प्रकार मधुमक्खियां एक फूल से दूसरे फूल में पुष्परेणु को ले जाती हैं । आपको शिक्षा के इन विद्वान् दूतों के प्रतापी सहयोग में अवश्य सम्मिलित होना चाहिये ।

अष्टम अध्याय

तुलनात्मक धर्म

आप सम्भवता किसी ऐसे कुटुम्ब में उत्पन्न हुए होंगे, जिसका निम्न लिखित प्रसिद्ध धर्मों में से एक न एक धर्म अवश्य होगा—

बौद्धधर्म, हिन्दूधर्म, जैनधर्म, *निश्चयवाद (Positivism), ईसाई धर्म, * ताओवाद (Taoism), यहूदी धर्म, इस्लाम, ज़ोरोस्ट्रियन धर्म (पारसियों का), * कानफ्यूसिअन धर्म, * शिन्तो धर्म अथवा बहाई धर्म (Bahaism).

जिस समय आप बुद्धिवाद के नवीन संदेश को स्वीकार कर लें तो आपको अपने प्राचीन सिद्धान्त की भूसी में से गेहूं को फटक लेना चाहिये और उस गेहूं को अपने साथ लेकर नये विश्वबन्धुत्व के फ़सिल के त्योहार पर भेंट रूप देना चाहिये। अपने पुराने घर से खाली हाथ मत आओ।

प्राचीन धर्मों के उत्तम तत्व

(१) आपको उपरोक्त बड़े २ धर्मों का अत्यन्त सावधानी पूर्वक अध्ययन करना चाहिये। उनके मूल निकास, इतिहास और वर्तमान परिस्थिति को भी पढ़ना चाहिये। सामाजिक उन्नति के लिये यह धर्म उसी प्रकार महत्त्वपूर्ण हैं, जिस प्रकार बड़ी नदियां राष्ट्रों की भौतिक उन्नति के लिये हुआ करती हैं। उन्होंने आचारशास्त्र के प्राणदायक जल को दिया है। उनका दिया हुआ उक्त जल यद्यपि अन्धविश्वसों के बड़े भारी सम्मिश्रण के कारण उसी प्रकार मैला और फेनयुक्त है, जिस प्रकार एक महाद्वीप के कीचड़ से हांग-हो नदी है। प्रत्येक धर्म में उसका बहुमूल्य तत्त्व उसका आचारशास्त्र होता है, जो उनमें उसी प्रकार भिन्न २ परिमाण में हुआ करता है, जिस प्रकार गंदी से गंदी पानी की धार में से भी शुद्ध करने की क्रिया के प्रयोग से कुछ न कुछ जल अवश्य निकाला जा सकता है। बुद्धिवाद सभी प्राचीन धर्मों में से उस शुद्ध जल को शुद्ध करके निकाल लेता है। आपको सभी धर्मों में पाए जाने वाले अन्धविश्वास की निन्दा करके उसका त्याग करना चाहिये, किन्तु उस अन्धविश्वास के साथ २ आपको आचारशास्त्र को भी नहीं फेंक देना चाहिये। तुलनात्मक धर्मों के अध्ययन में बड़ा आनन्द आता है। यह आपकी बड़े २ तपस्वी, महात्माओं और सन्तों से भेंट करावेगा, जो आपको आत्मत्याग, नशीली वस्तुओं के त्याग, सन्तोष, सरलता और प्रेम की शिक्षा देंगे। उन में से प्रायः विज्ञान को

नहीं जानते थे, इसी कारण उन्होंने उस उच्च कोटि के आचार-शास्त्र में बड़े भारी अन्धविश्वास को सम्मिलित कर दिया है। जिस प्रकार एक अरबवासी खजूरों को खाकर गुठलियों को फेंक देता है उसी प्रकार आप भी उनकी गलतियों को छोड़ कर उनके गुणों को ग्रहण कर लो। प्राचीन धर्म को पूर्णतया मलो, छेतो, धोओ और शुद्ध करो, किन्तु उसमें केवल आचारशास्त्र को ही मल कर मत धो डालो।

सामाजिक नियम मनुष्य के बनाए हुए हैं

(२) सभी धर्म कुछ सामाजिक रीतियों की शिक्षा देते और कुछ राजनीतिक आदर्शों को उपस्थित करते हैं। वह विवाह के भिन्न २ प्रकार के नियमों की पुष्टि करते और कुछ खाद्य

---

(१) इस दार्शनिक सम्प्रदाय को आगस्टे कोम्टे (१७९८-१८५७) ने चलाया था। इसका सिद्धान्त है कि मनुष्य प्राकृतिक अद्भुत पदार्थों के अतिरिक्त और किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। सांसारिक पदार्थों का ज्ञान सामायिक होता है, पूर्ण नहीं। निश्चित पदार्थों का ज्ञान कराने से ही इसको निश्चयवाद कहते हैं।

(२) यह धार्मिक सम्प्रदाय चीनी दार्शनिक लाओ-त्ज़े (जन्म ईसा पूर्व ६०४ में) का चलाया हुआ है।

(३) कॉनफ्यूसिअन धर्म चीनी दार्शनिक कॉनफ्यूसियस (ईसा पूर्व ५५१-४७९ तक) ने चलाया था।

(४) यह जापानी धर्म है। इसमें प्रकृति और वीरों की पूजा की जाती है।

वस्तुओं का निषेध करते हैं। वह संस्कारों और त्यौहारों को मनाने पर ज़ोर देते हैं। प्राचीन धर्मों की इन सब बातों पर उनके गुणों की दृष्टि से वर्तमान विज्ञान और युक्तिवाद के आधार पर विचार करना चाहिये। प्राचीन धर्माचार्यों की प्रत्येक बात को आज स्वीकार नहीं किया जा सकता। हम केवल इस लिये पतिपत्नी-विच्छेद (तलाक) को बन्द, मांस मछली का त्याग, अथवा बहु-पत्नीत्व प्रथा को प्रचलित नहीं कर सकते कि इन विषयों पर अत्यन्त प्राचीन काल में कुछ धर्माचार्य अपनी धार्मिक व्यवस्था दे चुके हैं। हमको इस प्रकार की सामाजिक संस्थाओं में युग युग में परिवर्तन करने ही पड़ते हैं। अतएव, उन प्रश्नों के सम्बन्ध में आप स्वयं विचार करो और ईसामसीह, मनु, जोरेस्टर, मुहम्मद, और बुद्ध की शिक्षा का अनुकरण मत करो। 'यद्यपि हम उन से गुणों की शिक्षा लेते हैं किन्तु वह हमको हमारे सामाजिक नियमों और रीतिरिवाजों के विषय में शिक्षा नहीं दे सकते। यदि कोई धर्म (केल्विनवाद के समान) प्रजातंत्र की शिक्षा देता है तो आपको उसकी राजनीतिक शिक्षा को ही मानना चाहिये। किंतु यदि वह स्वेच्छाचारिता और एकतन्त्रशासन की शिक्षा देता है तो आप को उसकी इस विषय में उपेक्षा करनी चाहिये। राजनीति और अर्थशास्त्र में प्रजातन्त्र, स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे के भावों के विरुद्ध व्यवस्था देने वाले सभी धार्मिक वाक्यों को व्यर्थ समझ कर उनकी उपेक्षा करनी चाहिये। वर्तमान काल में कोई भी मृतक अध्यात्मिक नेता हम से कैसर

अथवा खलीफ़ा का अनुगमन नहीं करा सकता।

बाह्य धर्म क्रिया व्यर्थ है

(३) सभी धर्मों के रीतिरिवाजों और त्यौहारों को छोड़ देना और उनकी निंदा करनी चाहिये। बाह्य और यंत्रीय कार्य कभी भी आत्मा को पवित्र करके व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकते। गुणी होना कठिन होने के कारण पुरोहित लोग जनता में बाह्य शौचाचार की शिक्षा दिया करते हैं, इस प्रकार की दिखावटी ईश्वर भक्ति नैतिक उन्नति के मार्ग में बड़ी भारी बाधक होती है। अनेक लोगों का विश्वास होता है कि कुछ विशेष उत्सव अथवा यज्ञ करने से वह भावी जीवन में नरक के दुःखों से बच जावेंगे अथवा इस लोक में ही उनको बड़ी भारी भौतिक समृद्धि प्राप्त होगी। पुरोहितों को इस प्रकार के धार्मिक स्वांग और भांडपने के वास्ते धन दिया जाता है। चाहे जिसकी हानि हो उनको तो लाभ ही रहता है। आपको इस प्रकार की सब धोखादेही के विरुद्ध ध्यान दिये रहना चाहिये। अपने पड़ौसियों को इस बात की शिक्षा देते रहो कि इस प्रकार की सुन्नत, बपतिस्मा, धार्मिक यात्रा, धार्मिक रीति, ईसाईयों के पवित्र प्रभुभोज, अग्नि होत्र, सूर्यपूजा, जनेऊ, पशुबलि, दीपक तथा धूप, परिक्रमा और दण्डवतों, नदी स्नान और पाषाण पूजन, स्मारक पूजन और कब्रों को सजाने, दांत, मूर्तियों, पशुचित्रों और रंगीन चित्रों की पूजा करने से कोई लाभ नहीं होता। इस प्रकार की निर्बलताओं से सदा दूर रहो। ऐ ईसाइयो! जल और मदिरा आपके पापों को नहीं

धोवेंगे। भाईचारे का बपतिस्मा लो और ज्ञान बुद्धि की मदिरा को यहां तक पियो कि उससे आप का पेट भर जावे। ऐ मुसलमानों और यहूदियों! कामवासना और व्यभिचार को छोड़ दो, अपने शरीर को नष्ट मत करो! ऐ हिन्दुओं! सूर्य की पूजा मत करो, और सूर्य की रचना का पता लगाने वाले विज्ञान से प्रेम करो! जनेऊ मत पहिनो, अपने हृदयों को प्रेम के रेशमी डोरे से बांधो। ऐ पारसियों! पवित्र अग्नि को भोजन मत दो। वरन् अपने आत्मा में भाईचारे की चिंगारी को जलता हुआ रक्खो। ऐ बौद्धों! ब्रह्म के दांत को मत सजाओ! वरन् ओष्ठों से आने वाले मीठे शब्दों को सुनो। ऐ शिन्तों लोगों! आपके प्रकृति तत्व आपके पापों को नष्ट नहीं करेंगे। ऐ हिंदू और मुसलमानों! काली अथवा अल्लाह के सम्मान में मूक पशुओं को मत मारो! वरन् अपने अंदर के भेड़िये और सर्पों को मारो। परमात्मा के निन्यानवे नाम और विष्णु सहस्रनाम का पाठ मत करो। वरन् उसके स्थान में अभी तक के सभी सन्तों और वैज्ञानिकों के नामों को बार बार लिया करो। मंदिर की परिक्रमा छोड़ कर पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके बुद्धिमान् बनो। किसी विशेष अवसर पर उपवास मत किया करो, वरन प्रतिदिन और रात्रि को थोड़ा भोजन किया करो। विनाशी असभ्य भौतिक चिन्हों से अपने आत्मा को नष्ट मत करो, वरन् उच्चकोटि के आचार सम्बन्धी उन तथ्यों से प्रेम करो जो सदा बने रहते हैं।

स्वर्ग और नरक ढकोसले हैं

(४) सभी धर्मों में एक या अधिक स्वर्गों में 'आनन्द

भोगने' अथवा एक या अधिक नरकों में 'कष्ट उठाने' का सिद्धांत मिलता है। इस प्रकार के सुख और दुःख ईसाई धर्म अथवा इस्लाम के अनुसार नित्य हो सकते हैं, अथवा हिंदू धर्म और जैन धर्म के समान थोड़े समय तक हो सकते हैं, भावी जीवन में सुख के लोभ से ही एक सामान्य पुरुष उत्तम कार्य करता है और दुःख के भय से बुरे कार्यों से बचता है। इस प्रकार के सब विचार इस मानवी सिद्धांत के आधार पर हैं कि 'जीवात्मा' नाम का एक मानवी व्यक्तित्व का अंश मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहता है। मृत्यु के पश्चात् वह शरीर धारण भी कर सकता है और बिना शरीर के अकेला भी रह सकता है। इसको वास्तविक अथवा विशुद्ध 'आत्मिक' समझा जाता है। सर्वसामान्य विचार यह है कि आपके व्यक्तित्व के किसी अन्श का चेतन के रूप में मृत्यु के पश्चात् अस्तित्व अवश्य रहता है और उससे आप सुख या दुःख भोग सकोगे। इस अवैज्ञानिक सिद्धान्त के विषयमें सभी समाजों में कितना भारी अन्धविश्वास छाया हुआ है। इस अन्धविश्वास की पुष्टि करने और उसका प्रचार करने में आचारशास्त्र को कितना अधिक बिगाड़ कर गिराया गया है। भय के कारण असंख्य स्त्री पुरुषों में आत्म सम्मान शान्ति और वास्तविक नैतिकता नहीं रहती। प्राचीन काल के मिश्र वासियों से लगा कर आधुनिक काल में लम्बी चौड़ी बातें बनाने वाले धर्मोपदेशक तक अज्ञानी मनुष्य धार्मिक भाषा में सदा ही इस प्रश्न को करता है, "मरने के पश्चात् मेरा क्या परिणाम होगा ?" मक्कार ठगों और नीतिज्ञान हीन बदमाशों ने

इस अज्ञान का युग २ में प्रचार किया है। पुरोहितों ने भोले उपासकों से भविष्य में उनको किसी प्रकार के सुख की आशा दिला कर उनके धन को खूब लूटा है। सम्भवतः पहिले वह स्वयं धोखे में पड़े और पीछे उस धोखे से ही उन्होंने लाभ उठाया। 'नरक' के भय के कारण मनुष्यजाति के नेत्रों से सदा ही इतने अधिक आंसू बहते रहे हैं कि उनसे सभी खारे समुद्र भरजायें। 'स्वर्ग' की आशा ने जोंक समान पुरोहितों की थैलियों में इतना सोना भरा है कि जितना स्पेन वाले अमरीका से, अथवा महमूद भारत से नहीं ले जा सका। आचारशास्त्र को घटा कर एक नीच व्यापारिक अंकगणित मात्र बना दिया गया और सद्गुण को 'स्वर्ग' के भय के विरुद्ध बीमे की दैनिक किस्त माना गया, और प्रत्येक धर्म अपने २ अनुयाइयों के लिये सुरक्षित और ठीक आर्थिक दशा वाली बींमा कम्पनी बन गया। एक रूसी पाखंडी तो किसानों को वास्तव में ही स्वर्ग के स्थानों को पांच से लगा कर दस * रूब्ल (Roubles) तक में बेचा करता था। मृतकों के लिये सामूहिक प्रार्थना, दान और श्राद्ध सभी दशों में पुरोहित वर्ग के लिये स्थाई आय का साधन हुआ करता है। 'आत्मा' और उसके दूसरे लोक में अस्तित्व के इस सिद्धान्त के परिणाम स्वरूप होने वाली यह सामान्य बुराइयां हैं। यदि उस सिद्धान्त के सम्बन्ध में केवल इसके परिणाम से ही विचार किया

---

* रूब्ल रूस देश के रुपये का नाम हैं। इसका मूल्य लग भग १ रुपया ९ आने होता है।

जावे तो मनुष्यजाति का प्रत्येक प्रेमी इसकी निंदा और इसका विरोध करेगा।

आपको अपने इस प्रकार के अंधविश्वासों से छुड़ाने के लिये बदला मिलने के सिद्धान्त के किसी भी रूप का सब प्रकार से खंडन करना चाहिये। मनुष्य अपने व्यक्तित्व की उन्नति करने के लिये उत्पन्न हुआ है। अपने कार्यों के लिये कष्ट का दंड पाने, अथवा आनन्द का पारितोषिक पाने के लिये नहीं। आपको बदले के सिद्धान्त के सिर में लाठी मारनी चाहिये, जिस प्रकार भी हो सके आपको इसका खंडन करना चाहिये। व्यक्तित्व का आदर्श भलाई या बुराई का बदला न होकर उन्नति है। विश्व निर्दय पुलिस अथवा लोभी फेरी वालों के हाथ में नहीं है। उसका शासन और नियन्त्रण विकास, उन्नति करते हुए जीवन, और प्रगट होने वाली वास्तविकता के आधीन है। मृत्यु के पश्चात् किसी को भी किसी प्रकार का कहीं भी दण्ड नहीं मिलेगा। सद्गुण ही उसका इस जीवन का पारितोषिक है, क्योंकि आप सद्गुण से ही उन्नति करते हो। दुर्गुण पृथ्वी पर अपना आप दण्ड है, क्योंकि वह उन्नति का विरोधी है। विश्व आपके कार्यों का कोई खाता नहीं रखता। वह आपके पुण्य अथवा पापों को स्मरण नहीं रखता। वह तो प्रत्येक क्षण को अपने में पूर्ण समझता हुआ अपने उन्नति के कार्य को शीघ्रता पूर्वक करता जाता है। अतएव, मृत्यु के पश्चात् सुख अथवा दुःख पूर्ण बदले के सिद्धांत से बचते रहो।

धर्म प्रवर्तकों का नैतिक अनुकरण

(५) सब प्रकार के अन्धविश्वासों का परित्याग करके आप तुलनात्मक धर्म के अध्ययन से लाभ उठा सकते हो। बड़े २ महात्माओं और धर्म प्रवर्तकों के जीवन चरित्र और उनकी उक्तियों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करो। उन्होंने धन और सम्पत्ति का त्याग किया था। आप भी वही कर सकते हो। उन्होंने अपने साथियों के हित के लिये प्रत्येक वस्तु का बलिदान किया था। आप भी वही कर सकते हो। उन्होंने अपने खान पान और वेश को सरल से सरल बना लिया था। आप भी वैसा ही कर सकते हो। वह निर्धन और असमर्थ से प्रेम करते थे और उनकी सेवा करते थे। आप भी वैसा ही कर सकते हो। उन्होंने कामवासना और लोभ को जीत लिया था। आप भी वैसे ही बन सकते हो। उन्होंने अनन्त सन्तोष और नम्रता को धारण किया था। आप भी वैसे ही बन सकते हो। वह अपने मित्रों और साथियों में पूर्ण होने की भावना भरते थे, आप भी वैसा हो कर सकते हो।

आपको विभिन्न धर्मशास्त्रों से धर्माचरण के उत्तम २ सिद्धान्तों का निर्वाचन कर लेना चाहिये। वह सिद्धान्त आपके आत्मा को सद्गुणों की सुन्दरता तथा सुगन्धि से ताज़ा बना देंगे।

ईश्वर नाम का खंडन

(६) प्राचीन धर्मों के अन्धविश्वास में किसी न किसी रूप में ईश्वर का वर्णन प्रायः हुआ करता है। उनका उद्देश्य एकेश्वर-

वाद होता है अथवा बहुदेवतावाद। शिव, विष्णु, बोधिसत्त्वों राक्षसों, देवों अथवा एक 'ईश्वर' का पूजन उनमें अन्धविश्वास का मूलतत्त्व होता है। आपको इस प्रकार के ईश्वरीय विश्वासों के अन्तिम चिन्हों तक से अपने मस्तिष्क को मुक्त कर लेना चाहिये।

बहुदेववाद का अस्तित्व अभी तक भारत, चीन तथा अन्य देशों में है; किन्तु जनता के ज्ञान के बढ़ते जाने से यह क्रमशः नष्ट होता जा रहा है। चार मुंह, तीन नेत्र और हाथी के समान सिर वाले उन अनेक देवताओं के अस्तित्व में सन्देह करना उनके लिये सरल है। बहुदेवतावाद देवताओं को मानवी रूप में उपस्थित करता है, और इसी कारण वह अपने को अविश्वासनीय बना लेता है, किन्तु अध्यात्मिक 'एकेश्वरवाद' अधिक भयंकर और धूर्त शत्रु है, क्योंकि वह सूक्ष्मता और बुद्धिवाद पर आश्रित होने का बहाना करता है। यह 'परमात्मा' के शरीर, अङ्गों, इन्द्रियों, मनोविकारों, स्त्रियों और बच्चों को छीन लेता है, और उसको ऐसे अदृश्य, अस्पर्श्य, नित्य, सर्वव्यापक, ज्ञानी, दयालु और सर्वशक्तिमान् आत्मा के रूप में उपस्थित करता है, जो समस्त संसार की उत्पत्ति, प्रलय और रक्षा करने वाला माना जाता है। कच्चे बहुदेवतावाद की अपेक्षा यह सिद्धांत सामान्यरूप में अधिक सत्य जान पड़ता है, और यही सिद्धान्त यहूदी, ईसाई और मुसलमान धर्मों के ईश्वरवाद और दर्शनशास्त्र का मूल आधार है। सौभाग्यवश प्रायः यूनानी, हिन्दू और चीनी दार्शनिक इस जाल में नहीं पकड़े जा सके। चार मुख्य धर्मों

में से केवल एक ही इस अन्धविश्वास की मलीनता से कलुषित हुआ है।

आपको निम्नलिखित कारणों से इस सिद्धांत को अस्वीकृत करके उसका खंडन करना चाहिये।

सृष्टि रचना के भिन्न २ सिद्धान्तों का खंडन

१. जैसा कि अरस्तु (Aristotle) और सेंट० टामस एक्विनास (St. Thomas Acquinas) की कल्पना है प्रकृति का कोई आदि कारण अथवा आरंभिक गति कराने वाला नहीं हो सकता। सेंट टामस ऐक्विनास का कहना है, "परमात्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करने का सब से प्रथम और सब से अधिक स्पष्ट उपाय गति सम्बन्ध में युक्ति है। कोई भी वस्तु यदि किसी प्रकार की गति करती है तो उसको किसी अन्य वस्तु के द्वारा ही गति कराई जाती है। इस क्रम में हमको गति के प्रथम साधन पर आ जाना चाहिये। जिसको और गति नहीं कराता, इस प्रकार के साधन को ही सब मनुष्यों के विचार के अनुसार परमात्मा कहा जाता है।" अरस्तु ने अपने अध्यात्मशास्त्र (Metaphysics) में लिखा है, "आरम्भिक गति का सम्बन्ध परिवर्तनों से है,······किन्तु आदि में गति कराने वाला ही उसको गति कराता है। आवश्यक होने के कारण ही, इस विषय में, इस स्वयंस्थिर आदि गति कर्ता का एक अस्तित्व माना गया है।"

यह युक्ति बिल्कुल ही ठीक नहीं है। इस गति अथवा विश्व के आरम्भ के सम्बन्ध में विचार भी नहीं कर सकते।

पुद्गल (Matter) के अन्दर गति एक भौतिक कार्य है, और उसके पूर्ववर्ती भौतिक कारण हुआ करते हैं। घटना का इस भौतिक शृंखला से कूद कर एक व्यक्तिरूप 'परमात्मा' की गोद में पहुंच जाना असम्भव है।

२. विश्व की रचना 'परमात्मा' के द्वारा नहीं की गई। कुछ विद्वान् कहते हैं कि 'परमात्मा' ने विश्व को असत् से उत्पन्न किया है। यह सिद्धान्त बाईबिल की उत्पत्ति की पुस्तक, कुरान और अल-ग़ज़ाली (Al-Ghazzali) के ग्रन्थों में पाया जाता है। दूसरे प्रकार के दार्शनिकों की कल्पना है कि परमात्मा ने विश्व को असत् से उत्पन्न नहीं किया। इस सिद्धान्त का वर्णन लीबनिज़ (Leibniz) ने अपने ग्रन्थ 'थियोडाइखी' (Theodicee) के देवता के चकाचौंध करने वाले वर्णन में किया है। इसी सिद्धान्त से परमाणुवाद की प्रथा का जन्म हुआ है, जो कि ईश्वरवादियों के पूर्ण सृष्टि और वेदान्तियों की प्रवाहरूप उत्पत्ति के बीच का मार्ग है।

प्लैटो, डिस्कार्टीस(Descartes) और दयानन्द की शिक्षा है कि परमात्मा ने सृष्टि की रचना उस प्रकृति से की जो पूर्व से ही विद्यमान् थी। यदि 'परमात्मा' ने प्रकृति और विश्व की रचना असत् से की अथवा नित्य प्रकृति को ही दोबारा नया रूप दे दिया तो इन दोनों ही दशाओं में यह अनुमान करना असंभव है कि उसका उद्देश्य क्या रहा होगा। क्रिया किसी वस्तु की इच्छा और ऐसे उद्देश्य का अनुकरण सिद्ध करती है जिसको

प्राप्त नहीं किया गया है। किन्तु परमात्मा को सदा से ही पूर्ण समझा जाता है, उस में किसी बात की त्रुटि अथवा आवश्यकता नहीं थी। उसने किसी वस्तु की रचना करने का कष्ट ही क्यों किया ? यदि इससे उसके आनन्द में वृद्धि होती है तो इस सृष्टि से पूर्व वह पूर्ण नहीं था। पूर्णता को बढ़ाया नहीं जा सकता। यदि उसके परोपकारिता के कार्य के कारण विश्व के अस्तित्व की आवश्यकता थी, तो वह तब भी सृष्टि से पूर्व पूर्ण नहीं था, और यह गुण उसके व्यक्तित्व में बाद में जोड़ा गया है। अतएव यह जान पड़ता है कि सृष्टि रचना के कार्य में कोई उद्देश्य नहीं हो सकता था। किन्तु किसी विशेष उद्देश्य के बिना कोई मूर्ख भी प्रवृत्ति नहीं करता। या तो 'परमात्मा' सृष्टि रचना से पूर्व पूर्ण नहीं था, अथवा वह किसी वस्तु की रचना कर ही नहीं सकता था। इसके अतिरिक्त यदि परमात्मा ने सृष्टि रचना की ही है तो 'परमात्मा' को किसने बनाया ? परमात्मा कहां से आता है ? उसकी उत्पत्ति किस स्थान से होती है ?

ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन

३. हम स्त्री अथवा पुरुष के अतिरिक्त अन्य किसी पूर्ण के विषय में नहीं जानते, 'परमात्मा' के अस्तित्व के लिये अस्तित्व सम्बन्धी युक्तियां केवल शब्दाडम्बर मात्र ही हैं, सेंट ऐनसेम (Anselm) अपने ग्रन्थ 'प्रोसलोजियम' (Proslogium) में कहता है, "हमारा विश्वास यह है—तू इतना महान् है कि जिस से बड़े की कल्पना भी नहीं की जा सकती।········किन्तु

निश्चय से ही, वही पुरुष, इस शब्द को सुनते समय इसके अर्थ को समझता है। अब यह निश्चय है कि वह सब से महान् केवल बुद्धि ही में नहीं हो सकता, क्योंकि यदि वह बुद्धि में होता तो इसके अतिरिक्त उसके अस्तित्व के विषय में भी विचार किया जा सकता था, और यह अधिक बड़ी बात होती। अतएव किसी न किसी ऐसी वस्तु का अस्तित्व अवश्य और निःसंदेह है, जिससे बड़े का विचार भी नहीं किया जा सकता, और वह बुद्धि तथा वास्तविकता दोनों में ही है।" डेस्कार्टीज़ (Descartes) ने भी इसी युक्ती से काम लेते हुए लिखा है—"जिस प्रकार घाटी के विचार से पर्वत को, अथवा समत्रिकोण त्रिभुज के विचार से दो समकोणों को प्रथक नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार परमात्मा के सारतत्व से अस्तित्व को प्रथक् नहीं किया जा सकता। प्रकृति अथवा परमात्मा के विचार में आवश्यक अस्तित्व विद्यमान है। अतएव यह सत्यता से कहा जा सकता है कि परमात्मा में अवश्य अस्तित्व है, अथवा परमात्मा का अस्तित्व है। यह निश्चय है कि मेरे आत्मा में भी परमात्मा का विचार अर्थात्, किसी भी आकार अथवा संख्या की अपेक्षा अधिक से अधिक का विचार—कम नहीं है।"

इसी तर्कप्रणाली का उपयोग भूतों, प्रेतों, चुड़ैलों और उन परदार सर्पों तक के अस्तित्व को सिद्ध करने में किया जा सकता है। क्योंकि कुछ व्यक्तियों को इन प्राणियों के अस्तित्व के विषय में पूर्ण विश्वास है। यदि मैं किसी वस्तु के अस्तित्व

प्राप्त नहीं किया गया है। किन्तु परमात्मा को सदा से ही पूर्ण समझा जाता है, उस में किसी बात की त्रुटि अथवा आवश्यकता नहीं थी। उसने किसी वस्तु की रचना करने का कष्ट ही क्यों किया? यदि इससे उसके आनन्द में वृद्धि होती है तो इस सृष्टि से पूर्व वह पूर्ण नहीं था। पूर्णता को बढ़ाया नहीं जा सकता। यदि उसके परोपकारिता के कार्य के कारण विश्व के अस्तित्व की आवश्यकता थी, तो वह तब भी सृष्टि से पूर्व पूर्ण नहीं था, और यह गुण उसके व्यक्तित्व में बाद में जोड़ा गया है। अतएव यह जान पड़ता है कि सृष्टि रचना के कार्य में कोई उद्देश्य नहीं हो सकता था। किन्तु किसी विशेष उद्देश्य के बिना कोई मूर्ख भी प्रवृत्ति नहीं करता। या तो 'परमात्मा' सृष्टि रचना से पूर्व पूर्ण नहीं था, अथवा वह किसी वस्तु की रचना कर ही नहीं सकता था। इसके अतिरिक्त यदि परमात्मा ने सृष्टि रचना की ही है तो 'परमात्मा' को किसने बनाया? परमात्मा कहां से आता है? उसकी उत्पत्ति किस स्थान से होती है?

ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन

३. हम स्त्री अथवा पुरुष के अतिरिक्त अन्य किसी पूर्ण के विषय में नहीं जानते, 'परमात्मा' के अस्तित्व के लिये अस्तित्व सम्बन्धी युक्तियां केवल शब्दाडम्बर मात्र ही हैं, सेंट ऐनसेम (Anselm) अपने ग्रन्थ 'प्रोसलोजियम' (Proslogium) में कहता है, "हमारा विश्वास यह है—तू इतना महान् है कि जिस से बड़े की कल्पना भी नहीं की जा सकती।........किन्तु

निश्चय से ही, वही पुरुष, इस शब्द को सुनते समय इसके अर्थ को समझता है। अब यह निश्चय है कि वह सब से महान केवल बुद्धि ही में नहीं हो सकता, क्योंकि यदि वह बुद्धि में होता तो इसके अतिरिक्त उसके अस्तित्व के विषय में भी विचार किया जा सकता था, और यह अधिक बड़ी बात होती। अतएव किसी न किसी ऐसी वस्तु का अस्तित्व अवश्य और निःसंदेह है, जिससे बड़े का विचार भी नहीं किया जा सकता, और वह बुद्धि तथा वास्तविकता दोनों में ही है।" डेस्कार्टीज़ (Descartes) ने भी इसी युक्ती से काम लेते हुए लिखा है—"जिस प्रकार घाटी के विचार से पर्वत को, अथवा समत्रिकोण त्रिभुज के विचार से दो समकोणों को प्रथक नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार परमात्मा के सारतत्व से अस्तित्व को प्रथक् नहीं किया जा सकता। प्रकृति अथवा परमात्मा के विचार में आवश्यक अस्तित्व विद्यमान है। अतएव यह सत्यता से कहा जा सकता है कि परमात्मा में अवश्य अस्तित्व है, अथवा परमात्मा का अस्तित्व है। यह निश्चय है कि मेरे आत्मा में भी परमात्मा का विचार अर्थात्, किसी भी आकार अथवा संख्या की अपेक्षा अधिक से अधिक का विचार—कम नहीं है।"

इसी तर्कप्रणाली का उपयोग भूतों, प्रेतों, चुड़ैलों और उन परदार सर्पों तक के अस्तित्व को सिद्ध करने में किया जा सकता है। क्योंकि कुछ व्यक्तियों को इन प्राणियों के अस्तित्व के विषय में पूर्ण विश्वास है। यदि मैं किसी वस्तु के अस्तित्व

की कल्पना कर सकता हूं तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसका वास्तव में ही अस्तित्व है। मनुष्य का मस्तिष्क विश्व का एक छोटा सा मानचित्र नहीं है।

४. व्यक्तिगत अर्न्तदृष्टि भी 'परमात्मा' के अस्तित्व का प्रमाण नहीं है। अनेक रहस्यवादियों और दार्शनिकों ने कहा है कि 'परमात्मा' के अस्तित्व को युक्तियों से प्रमाणित करने की आवश्यता नहीं है, क्योंकि उन्होंने उसको अपने हृदय और आत्मा में अनुभव किया है अथवा उसका साक्षात्कार किया है। इसी सिद्धान्त को अनेक रूपों में नसरानी लोग (Quakers), सूफी लोग और ए० एडिंगटन (A. Eddington), जैसे कुछ आधुनिक विद्वान् तथा अन्य लोग उपस्थित किया करते हैं, बाबा कूही (आर० ए० निकलसन के उल्लेख अनुसार) ने कहा है--

> "मैं न आत्मा, न शरीर, न आकस्मिक कार्य, न पदार्थ न गुणों और न कारणों को ही देखता हूं। मैं तो केवल परमात्मा को ही देखता हूं"

इस प्रकार के ईश्वर वादियों का दावा है कि हम अपने अतिरिक्त एक अन्य आत्मिक शक्ति का जो, हमारे ही चारों ओर है प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।" डाक्टर टी० जी० डनिंग (Dr. T. G. Dunning)कहते हैं "इस विषय में अनेक प्रमाण तथा घटनाओं का वर्णन किया जा सकता है।" हिंदू संन्यासी रामकृष्ण ने विवेकानन्द से कहा था, "मैं परमात्मा को उसी प्रकार देखता हूं जिस प्रकार मैं तुम को अथवा उस दीवार को देखताहूं।"

इस युक्ति का वास्तविक अर्थ यही है कि आस्तिक लोग युद्ध से भागते हैं, आप तर्क से बात न करने वाले मनुष्य के साथ वाद विवाद नहीं कर सकते। दर्शन शास्त्र का आधार वाद विवाद और हेतुवाद है, वह उन घटनाओं और अनुभवों को बतलाती है कि जिनकी सब परीक्षा करके जांच कर सकते हैं। किन्तु यदि कोई मुझसे केवल अपने अन्तरात्मा का ही उल्लेख करता है तो उसके प्रिय विचारों और अन्तर्दृष्टि के व्यक्तिगत हरम अथवा ज़नानख़ाने में मैं नहीं घुस सकता। जिस प्रकार वह मुझको नहीं मनवा सकता मैं भी उसको अपने मत में नहीं ला सकता। वह मेरी बात को सुनना नहीं चाहता और मैं उसके अनुभव किये हुए का अनुभव नहीं कर सकता। अतएव हम दोनों ही घर जा सकते हैं। एक व्यक्ति का अपना अनुभव 'परमात्मा' के अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि परमात्मा निश्चय से ही उसके शरीर से बाहिर अस्तित्व वाला कहा जाता है। लूथर (Luther) ने शैतान का केवल अनुभव ही नहीं किया वरन् उसको देखा और उसके ऊपर तक दवात फेंक दी; किन्तु प्रायः परमात्मावादी इस प्रसिद्ध पुरुष का विश्वास नहीं करते। हिन्दू भक्त का कहना है कि वह 'अपने उपास्य देवता रवि अथवा विष्णु का उसी प्रकार अनुभव करता है जिस प्रकार यह अन्तर्दृष्टि वाले अपने एक 'ईश्वर' को जानते हैं'। इस प्रकार प्रत्येक पुरुष अपने २ मन का हो जावेगा और प्रत्येक अफीमची अपनी सुन्दर पिनक का आनन्द लिया करेगा। हमको

विज्ञान और दर्शन के अंतिम निर्णायक सामान्य विश्व के मानवी तर्क से इसकी अपील करनी चाहिये। अभियुक्त यह कह सकता है, "मेरा विश्वास है कि मैं निर्दोष हूं।" और पुलिसमैन कह सकता है, "मैं अनुभव करता हूं कि तुम अपराधी हो।" यदि बुद्धि को न्यायाधीश न बनाया जावेगा तो इसका निर्णय कौन करेगा? इससे यही अच्छा है कि कपिल के समान यह कह दिया जावे, "ईश्वर सिद्ध नहीं होता है। *

५. अनेक ईश्वरवादी अत्यन्त प्रसिद्ध किन्तु भ्रम में डालने वाले "बुद्धिमत कर्तृत्व" के तर्काभास का आश्रय लिया करते हैं। हिन्दू दार्शनिक उदयन कहता है, "विश्व अवश्य ही उत्पन्न किया हुआ है, क्योंकि इसमें प्रथक२ मौलिक भाग हैं; अतएव इसका एक ऐसा कर्ता भी होना चाहिये, जो बुद्धिमान् हो, जिसमें संकल्प, कार्य करने की इच्छा, और सब कारणों से कार्य लेने योग्य ठीक साधनों का ज्ञान हो।" पैग़म्बर मुहम्मद ने कुरान में कहा है, "परमात्मा के प्रताप का प्रचार करो। वह पृथ्वी की मृत्यु होने पर उसको शीघ्रता से उत्पन्न करता है।......उसने आपको ख़ाक से बनाया, और देखो, आप मनुष्य हो गये। उसने तुम्हारे अंदर से ही तुम्हारे लिये पत्नियों को बनाया कि आप उनसे सहवास कर सकें।" यहूदियों के टलमूद (Talmud) का—जिसका उद्धरण एडविन कालिन्स (Edwin Collins) ने किया है--कहना है—"परमात्मा ने सुन्दरता और नियम से भरे हुए संसार की; उस संसार की

---

* ईश्वरासिद्धेः॥ सांख्यसूत्र।

जो भलाई के लिये कार्य करने वाले ठीक २ नियमों से भरा हुआ है—रचना की । उसके अंदर व्यर्थ, बुरी अथवा आवश्यकता से अधिक कोई वस्तु नहीं है ।" एपिक्टीटस (Epictetus) ने घोषणा की थी, "परमात्मा ने विश्व के सब पदार्थों और स्वयं को भी बनाया । यह विश्व किसी प्रकार की बाधा से रहित और पूर्ण है, और इसके भाग सभी के उपभोग के लिये हैं ।" सीसेरो (Cicero) ने ईश्वरीय रक्षा के सृष्टिकर्तृत्व रूप की व्याख्या की है । "प्रकृति कितनी दयालु है कि उसने हमको इतने भिन्न २ प्रकार के स्वादिष्ट भोजन दिये हैं ।·········नदियों की बड़ी भारी उपयोगिता, समुद्र के संगम और ज्वारभाटे, समुद्री तटों से दूर नमक के गड्ढों और तत्काल प्रभावदायक औषधियों से पूर्ण पृथ्वी को बनाया ।·········शरीर की रचना और मानवी प्रकृति के रूप और उसकी पूर्णता को अच्छी तरह देखो ।·········उसमें भोजन कुतरने और चबाने के लिये दांत लगाये गये हैं ।·········पेट को आश्चर्य जनक रूप से बनाया गया है ।······जिस प्रकार मकानों में शिल्पी मकान मालिक के नेत्र और नाक से उन वस्तुओं को बचा देता है, जो उसे निश्चय रूप से बुरी मालूम हों, उसी प्रकार प्रकृति ने भी हमारी इन्द्रियों से मानवी शरीर की उसी प्रकार की हानिप्रद वस्तुओं को दूर किया हुआ है । सूर्य, चन्द्रमा और सब तारों की परिक्रमाओं को भी······मनुष्य के देखने और विचार करने के लिये ही बनाया गया है । बिना ऊन के भेड़ किस काम की थी ? बैलों का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता

है ? हम अनुभव करते हैं कि उनकी पीठ बोझ के लिये नहीं बनाई गई थीं, किन्तु उनकी गर्दनें स्वाभाविक रूप से ही जुवे के लिये बनाई गई थीं। सुवर का खाने के अतिरिक्त और क्या उपयोग है ? इसके मनुष्य का उपयुक्त भोजन होने के कारण प्रकृति ने उतना अधिक फलदार अन्य किसी प्राणि को नहीं बनाया।…… संसार की प्रत्येक वस्तु हमारे उपयोग के लिये है और वह निश्चय से ही हमारे ही लिये बनाई गई थी।" लीबनिज़ (Leibniz) इस विचार पर जोर देता है कि सारा संसार एक रूप है। वह कहता है, "आकस्मिक परिस्थितियों वा सत्य घटनाओं का पर्याप्त कारण होना चाहिये— यानी कार्य कारण में सम्बन्ध जो समस्त संसार में व्यापक हैं और जिसमें कारण का विचार करते २ अनन्त विस्तार पर पहुंच जाते हैं, क्योंकि प्रकृति में असंख्य भिन्न पदार्थ हैं और वह असंख्य शाखाओं में विभक्त हैं विशेषताओं के इन सब भेदों का, जो सबके सब परस्पर भी सम्बन्धित हैं, यह आवश्यक तत्व ही पर्याप्त कारण है। अतएव परमात्मा केवल एक है, और यह परमात्मा ही पर्याप्त है।" पैले (Paley) पाल जैनंट (Paul Janet), तथा अन्य विचारकों ने भी निर्माण और रचना के इस सिद्धांत का प्रतिवादन किया है, इस सिद्धांत के तीन आधार हैं—(१) प्राणिविज्ञान सम्बन्धी शरीरधारियों में युक्ति का प्रकट रूप में मिलना, (२) प्रकृति में भिन्न २ प्रकार के निश्चित नियमों का मिलना, और (३) प्राणियों की मनोवृत्ति कार्य का ठीक काम करना। ईश्वरवादियों का कहना है कि

निर्माण से किसी निर्माता का ज्ञान होता है; नियमों से किसी नियन्ता का भान होता है; मधुमक्खियां 'परमात्मा' की सहायता और मार्गप्रदर्शन के बिना अपने छत्तों को रेखागणित के से पूर्ण नमूने पर कभी नहीं बना सकती थीं।

विभिन्न विज्ञानों की साची

यह तर्क अत्यन्त निर्बल और समझ में न आने योग्य है। हमको सभी विज्ञानों से पूछना चाहिये। प्रत्येक विज्ञान का कहना यही है कि प्रकृति एक बुद्धिमान् और दयालु परमात्मा की बनाई हुई नहीं है। भूगर्भविज्ञान (Geology) हमको बतलाता है कि पृथ्वी पर एक निश्चित समय में प्राणी सृष्टि हुई। लाखों और करोड़ों वर्षों तक तो यह अंगारा से भी लाल और तरल बनी रही। चन्द्रमा अथवा बुद्ध में प्राणी सृष्टि क्यों नहीं है? इस छोटी सी पृथ्वी के ऊपर भी ऐसे बड़े २ मरुस्थल हैं कि उनमें चूहा तक नहीं रह सकता। मनुष्य की तो यह इच्छा है कि इतने बड़े महासागर भी आकार में छोटे होते तो अच्छा था। यदि पृथ्वी को 'परमात्मा' ने हमारे रहने का घर बनाया है तो उसकी शिल्पी की दृष्टि से प्रशंसा नहीं की जा सकती। नीच से नीच निर्माता भी ऐसे मकान नहीं बनावेगा कि वह जापान और सा फ्रांसिस्को की भूमि के मकानों जैसे सदा हिलते और कांपते रहें। भूकम्पविज्ञान (Seismology) विचार न करने वाले ईश्वरवादी के मुख को लज्जा से लाल कर देता है। भूकम्प पूर्णतया 'दैवी' कार्य हैं। इन धक्कों और कम्पों से किसी मानवी शक्ति का संबंध

नहीं है भूकम्प और उनके साथ होने वाले विनाश कार्यों में कितने सहस्र स्त्री, पुरुष और बच्चे मर चुके हैं ! जापान में सन् १९२३ में ९९३३१ व्यक्ति मरे थे और ५७६००० मकान नष्ट हुए थे । प्राचीन नगरों के खण्डहर और अवशेषों से प्रगट है कि एक समय गोबी का प्रसिद्ध मरुस्थल उपजाऊ भूमि थी । आकाशजवस्तुविज्ञान (Meteorology) भी यही सिद्ध करता हुआ जान पड़ता है कि वर्षा और ऋतु का शासन किसी बुद्धिमान् और दयालु परमात्मा के द्वारा नहीं किया जाता । भला जिस समुद्र से वर्षा का जल उडता है, उसी पर वर्षा करने में कौन सी बुद्धिमानी है ? जिस प्रकार मनुष्य के बनाए हुए सिंचाई के कार्य से नियम पूर्वक जल मिलता है, उसी प्रकार वर्षा नियत समय पर सदा नहीं होती । किसी २ समय तो जनता बाढ़ से नष्ट हो जाती है और किसी समय पशु तक प्यास से मर जाते हैं और फसल सूख जाती है । एक पादरी ने वर्षा के लिए प्रार्थना की । उसी समय भारी वर्षा होने भी लगी और लगातार होती रही । देश में बाढ़ आ गई । तब उसने अपनी प्रार्थना में कहा, "ऐ परमात्मा ! हमने वर्षा के लिये प्रार्थना की और हम जानते हैं कि तू ने सुन भी ली । किन्तु यह तो हास्यजनक है ।" बिजली निर्दोष स्त्री, पुरुषों और बच्चों पर गिर कर उनको जला देती है । यह बहुत से घरों को जला कर ख़ाक भी कर देती है । ओले माली की आशाओं पर पानी फेर देते हैं और आंधी निर्धन किसानों की झोपड़ियों को गिरा देती है । सन् १९३३ में तूफ़ान

ने जमैका में बीस लाख केले के वृक्षों को नष्ट कर दिया था। कितना निर्दयी खेल है। यह "परमात्मा का कैसा बिनाशक श्वास है।" आंधी, दम घोटने वाली उष्ण वायु, इटली की कष्टदायक दक्षिणी और पुरवा हवा, धूल के तूफान तथा इसी प्रकार के अन्य उपद्रव पृथ्वी हमारे छोटे से जीवन को आनन्द दायक नहीं है बनाते। चेरापूंजी के जैसे कुछ स्थानों पर अत्यन्त वर्षा होतीं है, और अरब जैसे दूसरे प्रकार के देशों में वर्षा का अभाव सा ही रहता है। अत्यधिक उष्णता अथवा शीत दोनों ही हमारे लिये महामारी का काम करते हैं। १ होनोलूलू (Honolulu) और २ मदीरा (Madeira) जैसी समान और मृदु जलवायु बहुत कम देशों में हुआ करती है। कुछ समय के पश्चात् जलवायु बदल जाया करती है। 'परमात्मा' का कौनसा विभाग इस कार्य का अध्यक्ष है? प्राणिविज्ञान (Biology) भी बुद्धि अथवा दयालुता के चिन्ह प्रगट नहीं करता। बनस्पति संसार में प्रकाश और भोजन के लिये सदा झगड़ा मचा रहता है। कम उपजाऊ भूमि में पैदा होने वाले भूखे पौदे निर्दय बन कर कीड़ों को खाया करते हैं और अपने शिकार को धोखे से मारा करते हैं। लाखों कलियां कभी खिल कर फूल नहीं बनतीं; या तो उनको पाला मार देता है अथवा हवा ही उनको तोड़ कर बेघर का बना देती है, जिससे

---

१. हवाई द्वीप की राजधानी। २. ब्रैज़िल प्रदेश की एक नदी, जिसके नाम पर वहां का प्रान्त भी बन गया है। इसी नाम का एक द्वीप भी है।

वह मर जाती हैं। कितनी ढीठ बरबादी है। फूल की देवी का कैसा शोकपूर्ण अन्त है। करोड़ों बीज बोए जाते हैं, किन्तु उनमें से 'थोड़े ही उग कर वृक्ष रूप बनते हैं, शेष नष्ट हो जाते हैं। अनेक पौदे और वृक्ष तूफान तथा अनावृष्टि में मर जाते हैं। आकाशबेल (Mistletoe) और अमरबेल (Rafflesia) जैसी बेलें दूसरे पदों को नष्ट कर देती हैं। इश्कपेचा (Ivy) का घातक आलिंगन बलूत नाम के वृक्ष को दम घोट कर मार डालता है। बनों के बड़े २ वृक्ष छोटे २ पौदों को उनके भाग की धूप नहीं लेने देते। उष्ण देशों के जंगलों में तो पौदों और प्राणियों में गला काटने की प्रतियोगिता के दृश्य सदा ही पाये जाते हैं। इस प्रकार वनस्पति विज्ञान (Botany) परमात्मा के अस्तित्व का निषेध करता है। त्रसजीव विज्ञान तथा प्राणिविज्ञान (Zoology) भी जिसे अभी तक कारणवादियों (Teleologists) का किला समझा जाता था—अब नास्तिकों को दे दिया गया है। प्राणि शरीरों में परिस्थिति के अनुकूल बन जाने के नमूनों, इन्द्रियों, रक्षात्मक अंगों और रक्षात्मक स्वभावों की डारविन तथा अन्य वैज्ञानिकों के द्वारा की हुई व्याख्या के अनुसार यह स्वाभाविक कारणों से उत्पन्न होते हैं। जो प्राणि अपने को परिस्थिति के अनुकूल नहीं बना सके वह बड़ी संख्या में होने पर भी मर गये। जीवों की कैसी भयानक आहुती थी। हत्या की कैसी बदमस्ती है। जीवित प्राणियों की घृणापूर्ण चीरफाड़ तो उसके सामने कुछ भी नहीं है। करोड़ों प्राणियों को परिस्थिति ने मार डाला, करोड़ों

हो प्राणि आपस में लड़ कर ही मर गये। मांसाहारी और विषैले प्राणि 'पूर्ण बुद्धि और प्रेम ' के खेदपूर्ण नमूने हैं। इनमें डाइनोसारस (Dinosaurus) और अन्य रेंगने वाले जानवर, सिंह, चीते, भेड़िये, अमरीका के विचित्र चीते, विशाल काय कृष्ण सर्प, बाज़, उक़ाब, गिद्ध, व्हेल और शार्क मछलियां आदि हिंसक कोटी के पशु पूर्ण बुद्धिमत्ता और प्रेम का शोचनीय नमूना है। इन लाखों वर्षों में कितने सुन्दर मृग जंगलों में खा डाले गये। ईमानदार छोटी छोटी मछलियां अपना पेट किसी प्रकार भर ही लेती हैं, किन्तु सब बड़ी मछलियां उन छोटी २ मछलियों को ही खाती हैं। विज्ञान के इन खुले डाकुओं और लुटेरों के अतिरिक्त अनेक छोटे २ प्राणि भी हैं जैसे रोगों और पीप के कीटाणु, (Microbes) निमोनिया के कीटाणु; उपदंश के कीटाणु, डाक्टर काच के आविष्कार किये हुए कोटाणु, सूर्य किरणों में रहने वाले कीटाणु, हैज़े के कीटाणु, लहरिया कीटाणु तथा अन्य प्राणि, जो आकार में अत्यन्त छोटे होते हुए भी हानि पहुंचाने में अत्यन्त शक्तिशाली होते हैं। यह एक ऐसी भयंकर शोक जनक घटना है जिससे ईश्वरवादियों को बड़ी भारी लज्जा आवेगी। प्राणि विज्ञान (Biology) के नीच प्रकार के प्राणि उच्च प्रकार के प्राणियों की हत्या कर देते हैं। हैजे के कीटाणु और (सूक्ष्म जीव), और अनाज में उत्पन्न होने वाले नीच प्राणियों ने हैगले (Hegel) के शरीर को विषाक्त कर दिया और उसके मस्तिष्क को धूल और राख में मिला दिया। कीट्स (Keats) को भी इन कीटाणुओं का

शिकार बनना पड़ा था। कई सहस्र मनुष्य प्रतिवर्ष सर्प के डसने से ही मर जाते हैं। अनेक व्यक्ति चीतों और तेंदुओं के द्वारा प्राण त्याग करते हैं। इस कार्य में तो बुद्धि अथवा प्रेम यहां तक कि साधारण बुद्धि भी नहीं है। ऐसे मनुष्य को बनाने से क्या लाभ, जिसको सीसी मक्खियां तक मारडालें? मैं इसको पूर्णतया नीच, बुरा चाहने वाली और मूर्खता पूर्ण प्रणाली कहूंगा। त्रसजीव विज्ञान (Zoology) एक निर्दयी आत्म प्रशंसा, रक्तपात, लूटपात, उपद्रव और हत्या के संसार को खोल कर सामने रख देता है, जिसके सन्मुख चंगेज़ खां भी भौचक खड़ा रह जावेगा। निराशापूर्ण निर्दयता की वृद्धि से जोंक जैसे प्राणि को तो अपनी जीवन रक्षा के लिये दूसरे प्राणि के रक्त को चूसना पड़ता है, वह दूसरे प्रकार से जीवित रह ही नहीं सकते। प्रत्येक प्रकार का प्राणि बहुत बड़ी संख्या में अंडों और बच्चों को देता है, किन्तु उनमें बहुत ही कम बचते हैं। यदि परिस्थिति अनुकूल हो तो वह आस्ट्रेलिया के खरगोशों और पैटोगोनिया * (Patagonia) के घोड़ों के समान बहुत अधिक बढ़ जाते। आवश्यक, अनिवार्य और सार्वजनिक प्राणिघात का यह निश्चय त्रसजीवविज्ञान (Zoology) का मौलिक नियम है। जीवों का तय किया हुआ यह मार्ग रक्त से सना हुआ है, जिसमें पोड़ितों, भूखों और कष्ट भोगने वाले प्राणियों का दयापूर्ण आर्तनाद सब कहीं सुनाई दे रहा है। जीवन के इस ऊपर को जाने वाले मार्ग की तुलना में वध किये हुए दासों की पंक्ति वाला

---

* अमरीका का सब से दक्षिण का प्रदेश।

एपिया (Apia) नगर का मार्ग भी प्रसन्नता का स्थान है।

यह तो त्रसजीवविज्ञान (Zoology) की साक्षी है। इसके पश्चात् रंगमंच पर मनुष्य आता है। उसके पास भी जीवन के सुख और दु:ख के लिये किसी काल्पनिक देवता को धन्यवाद देने का कोई कारण नहीं है। उसका जीवन बहुत छोटा और अनिश्चित है। मनुष्य जीवन के ऊपर कफ़न के समान अनित्यता छाई हुई है। जैसा चीनी कवि ली पो (Li Po) कहता है—

"जीवन बीता जा रहा है
नाम मात्र सुख और तुच्छ संतोष का एक स्वप्न है।"

पो-चुई (Po-Chui)इस प्रकार खेद प्रगट करता है—

"मैं ज़ोर से चिल्लाता हूं—
हाँ! मनुष्य जीवन की कली कितनी भूरी और निर्गन्ध है"!

कितने बालक बचपन में ही अथवा उत्पन्न होते ही मर जाते हैं! यदि वह कुछ दिन सप्ताह अथवा वर्षों में ही नष्ट हो जावें तो प्यारे बच्चों को उत्पन्न करने में कोई बुद्धिमानी नहीं है। रोग तो अनेक मनुष्यों के प्राणों को नष्ट कर देता है। आज कितने लाख मनुष्य।

"सब रोगों
मृतकप्राय बनाने वाली पेट की ऐंठन, ज़ोर के दर्द, जी मिचलाने,
हृदय के रोगों, सब प्रकार के ज्वरों,

---

*एपिया नगर पसीफ़िक महासागर के समोया (Samoa) द्वीप में। यहां दासप्रथा बड़े भयंकर रूप में थी है।

चिहुकबाई, मृगी, कफों,
आन्तों के फोड़े और नासूर, वायुगोले के दर्द,
भूतग्रस्त तुल्य पागलपन, झुर्री डालने वाला शरीर का पतलापन,
क्षय रोग और महामारी
जलोदर और श्वास और जोड़ों को कष्ट देने वाले गठिया
रोग से" !

कष्ट उठा चुके हैं और 'कितने अभी कष्ट उठा रहे हैं ? यदि इस समय कष्ट से दुःख पाने और कराहने वाले सब रोगियों की खाटों को एक स्थान में एकत्रित करके उसकी एक ओर को गति करके उसको शब्द श्रावक यंत्र में भर कर सुना जावे तो वह शब्द निआगरा के प्रपात के शब्द की अपेक्षा भी अधिक जोरदार निकलेगा। अकाल तो इतिहास के पृष्ठों पर भूत के समान छाया हुआ है। यह जान पड़ता है कि वह 'परमपिता' अपने भूखे 'बच्चों' की भूख की कोई भी चिन्ता नहीं करता। इस सब के अतिरिक्त मनुष्य के आत्मा में दोष और समाज विरोधी भावों की जड़ बहुत गहरी लगी हुई है और हम अभी उसको निर्मूल करने का पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। यदि 'परमात्मा' गुण से प्रेम करता है तो उसने मनुष्य को पूर्णतया गुणी क्यों नहीं बनाया ? उसने हम पर घृणा, ईर्षा, पेटूपन काम वासना, आलस्य, अभिमान, क्रोध, लोभ निर्दयता तथा अन्य ऐसे पापों के इतने बोझ को क्यों डाल दिया कि हम उसको उठा भी न सके ? मनुष्य को सामाजिक शान्ति के मार्ग पर रक्त

में से खड़े पांव क्यों जाना पड़ता है ? उसको प्रायः आंसू भर कर ही क्यों भोजन करना पड़ता है ? इतिहास में मूर्खता, दीनता, हत्या और कष्ट का कुछ भी वर्णन क्यों है ? वास्तविक जीवन को इस प्रकार का भयानक दुःख पूर्ण बनाने वाला कभी भी बुद्धिमान और दयालु नहीं हो सकता। ज़ोरोस्ट्रियन और मैनीचियन (Manichaeans)कम से कम इस विषय में तर्कपूर्ण अवश्य थे कि उन्होंने पाप का बोझ शैतान के सिर पर और पुण्य का कार्य दैवी शक्ति के आधीन किया था। शैतान का वर्णन ईसाई और इस्लामी ग्रन्थों में भी किया गया है, किन्तु उनमें उसके अधिकार की उपेक्षा की गई है। ईश्वरवादी एक बुद्धिमान विद्यार्थी के इस प्रश्न तक का उत्तर नहीं दे सकता 'परमात्मा ने शैतान को जान से क्यों नहीं मार दिया ?" प्लैटो (Plato) और जे० एस० मिल (J. S. Mill) जैसे कुछ विद्वानों ने सीमित शक्ति वाले परमात्मा की कल्पना की है, मिल ने लिखा है "इस आत्मा ने जो सर्व शक्तिमान नहीं था, उन वस्तुओं की रचना की होगी, जो उसकी इच्छा के मार्ग में कम होंगी। यह विचार हमको शीघ्र ही जोरोस्टर के द्वैत वाद की ओर वापिस ले जावेगा। विश्व में पाप और पुण्य की शक्तियों को पुरुष के समान मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमको 'परमात्मा' अथवा 'शैतान' किसी

मैनीचियन धर्म फ़ारिस में २६१ ई० में मेन्स (Manes) नाम के एक दार्शनिक द्वारा चलाया गया था। इसमें कुछ सिद्धान्त ईसाई मत के और कुछ ज़ोरेस्ट्रियन मत के लिये गये थे।

की भी आवश्यकता नहीं है। इस प्रश्न की सभी ईश्वरवादी व्याख्यायें असन्तोष जनक और शैतानियत से भरी हुई हैं। यह कहा जाता है कि “आंशिक दोष सार्वजनिक गुण हुआ करता है। हमारे पाप और कष्ट उच्च परिणाम को प्राप्त कराते हैं, जिसका ज्ञान केवल 'परमात्मा' को है। बिना दोष के गुण असंभव है क्योंकि किसी वस्तु की छाया का होना आवश्यक है। कष्ट हमारे भूतकालीन पापों का दण्ड और भविष्यके लिये चेतावनी है। यह सन्तोष और धर्मिष्ठता की परीक्षा के लिये भी दिया जाता है जैसा कि जोब (Job) को दिया गया था। कष्ट से आचरण में साहस, धैर्य और सहानुभूति जैसे अच्छे गुण प्रगट हो जाते हैं। दांते (Dante) ने घोषणा की है कि नरक की रचना पूर्ण प्रेम से की गई है। (आप ऐसे दुःख देने वाले प्रेम के विषय में क्या विचारते हैं?) यहां तक कहा जाता है कि दुःख तो है ही नहीं, हम जिसको दुःख समझते हैं वह केवल धोखा है। राबर्ट ब्रिजेज़(Robert Bridges)का कहना है मोह में पड़े हुये आत्मा के लिये दोष व्यर्थ है। इस प्रकार के विस्तीर्ण मिथ्या वादविवाद का कभी भी अंत नहीं होता। यदि 'परमात्मा' अपने उद्देश्य को बिना इस सब कष्ट के प्राप्त कर सकता था और तब भी वह इन निर्दय प्रणालियों को पसन्द करता है तो वह अन्यायी राक्षस है। यदि वह किसी अन्य उपाय को काम में नहीं ला सकता तो वह सर्वशक्तिमान् नहीं है। आपको 'पाप' की व्याख्या करनी ही क्यों पड़ती है? पाप का अस्तित्व ही क्यों है? यदि वह बहुत समय के पश्चात् दूर हो ही जावेगा तो भी

ईश्वरवादी इस बीच में भोगे हुए दुःख और कष्ट को किस प्रकार उचित ठहरा सकता है ? लीबनिज़ (Leibniz) ने 'परमात्मा' की यह कह कर कुछ प्रशंसा नहीं की कि परमात्मा जैसे लोकों का निर्माण कर सकता था, उनमें यह पृथ्वी सबसे अच्छा लोक है। ईश्वरवाद लेशमात्र भी शान्ति अथवा सान्त्वना नहीं देता, वह केवल कटे पर नमक छिड़कता है। वह बुराई को गुप्तरूप में परमात्मा की कृपा बताकर उसके निवारण में रुकावट डालता और देरी करता है। यदि कोई पाप है ही नहीं, तो हमको किस के विरुद्ध युद्ध करना है ? यदि रोग ही स्वर्ग प्राप्ति है तो उसको क्यों न चलते रहने दिया जावे ? यदि 'परमात्मा' मृतक बच्चों को अपने पास बुला लेता है तो हमें बालमृत्यु को क्यों कम करना चाहिये ? यह बिलकुल ही मूर्खता, ढिठाई और पाप है। इस प्रकार ईश्वरवाद ने पाप के विरुद्ध कभी बंद न होने वाले युद्ध में मनुष्य के पैरों को शिथिल कर दिया और उसके हाथ से शस्त्र को छीन लिया। मध्ययुग में सन्त लोग प्रत्येक महामारी में 'परमात्मा की अंगुली' को देखा करते थे, और वह मनुष्य को पश्चाताप और प्रार्थना करने का उपदेश दिया करते थे; किन्तु उन्होंने स्वास्थ-विज्ञान और रोग का प्रतिबन्ध करने वाली औषधियों का अध्ययन नहीं किया था। ईश्वरवाद प्रत्येक बात को परमात्मा की इच्छा पर डाल देता है और इस प्रकार स्त्री पुरुषों को पाप को यत्न पूर्वक दूर करने का उद्योग करने से रोकता है। केवल बुद्धिवाद ही पाप को जीत सकता है। एक ब्रह्मज्ञानी

ने कहा है, "यदि परमात्मा का अस्तित्व नहीं भी है, तो उसका बनाना आवश्यक है।" किन्तु मेरा विश्वास है कि यदि परमात्मा का अस्तित्व है भी तो मनुष्य जाति का हित इसी में है कि उसके अस्तित्व का निषेध करके उसकी उपेक्षा की जावे।

ईश्वर के खंडन में अन्य युक्तियां

६. कुछ विद्वानों का विचार है कि 'परमात्मा' का अस्तित्व अवश्य है, क्योंकि पुण्यात्मा को अगले जन्म में पार्थिपलोक अथवा स्वर्ग में सुखरूप फल अवश्य मिलता है। कैंट (Kant) और उदयन ने इसी सम्मति को प्रगट किया है। कैंट कहता है, "वही नैतिक नियम दूसरे तत्त्व-सुख-की सम्भावना के मार्ग पर हमें ले जाता है। जितनी ही नैतिकता अधिक होगी सुख भी उतना ही अधिक होगा। इस विषय में पहिले दिये हुए सब निष्पक्ष हेतुओं से निश्चय किया गया है। दूसरे शब्दों में इसी से परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना नैतिक दृष्टि से भी आवश्यक है।"

उदयन ईश्वरवाद को पुनर्जन्म और प्रतिफल के भारतीय सिद्धांत के साथ संम्बधित करता है। प्रोफेसर एस० राधाकृष्ण इस विषय में कहते हैं, "अदृष्ट (व्यक्ति के कार्यों का न देखे जाने योग्य फल) जैसा अबुद्धिमत् कारण बिना किसी बुद्धि वाली आत्मा के मार्ग प्रदर्शन के अपने प्रभाव को उत्पन्न नहीं कर सकता। परमात्मा को अदृष्ट के कार्यों का निरीक्षक समझा जाता है"।

एक बुद्धिमान् बुद्धिवादी को पारितोषिक और दण्ड के सम्पूर्ण सिद्धान्त को, जैसा कि पहिले दिखलाया जा चुका है, अस्वीकृत कर देना चाहिये। इस प्रकार हम इन ऊपरी बातों पर विचार करने वाले तार्किकों से छुट्टी ले सकते हैं।

७. यह समझा जाता है 'परमात्मा' हमारे लिये नैतिक आचरण का एक आदर्श उपस्थित करता है। ईसा मसीह ने कहा है, "आप भी वैसे ही पूर्ण बनें, जैसा पूर्ण आप का स्वर्ग-वासी पिता है।" जे० एस० मिल का भी विचार है कि किसी प्रकार के 'परमात्मा' को "नैतिक दृष्टि से पूर्ण आत्मा" समझना चाहिये। उसने लिखा है, "उत्तमता के हमारे उच्चतम आदर्श का एक व्यक्तिमें होना बिल्कुल संभव है, चाहे वह व्यक्ति बिल्कुल काल्पनिक ही क्यों न हो।" अब यह बात समझ में नहीं आती कि परमात्मा गुण को शिक्षा किस प्रकार दे सकता है। उसके अकेले रहने और भौतिक शरीर अथवा सम्पत्ति न होने से खाउ पन, आलस्य, चोरी, व्यभिचार, हत्या, ईर्ष्या, अभिमान तथा अन्य भयंकर पापों की उसमें सम्भावना नहीं की जा सकती। उसमें किसी बात की त्रुटि नहीं है। इस प्रकार की अत्यन्त मनुष्योत्तर परिस्थितियों वाला पुरुष हमारे लिये किस प्रकार उदाहरण स्वरूप हो सकता है? ईसा मसीह, रबिआ, बुद्ध, लौइस माइकेल (Louise-Michel) तथा अन्य गुणी धर्म प्रवर्तक हमारे समान स्त्री अथवा पुरुष होने के कारण हमारे लिये आदर्श स्वरूप हो सकते हैं। किन्तु एक पूर्णतया आत्मिक शक्ति हमारे लिये नैतिक आदर्श नहीं

हो सकती। यह कहा जाता है कि 'परमात्मा' हम से प्रेम करता है, और यह 'प्रेम' ही हमारे कार्य का उद्देश्य होना चाहिये। किन्तु प्रेम का अभिप्राय सेवा, बलिदान, साथ रहना, और भक्ति है। यदि आप अपने पड़ौसी से 'प्रेम करते हो' तो तुम उसके लिये कार्य, धन, अथवा समय रूप में कुछ भी बलिदान करने के लिये सहमत होगे। यही प्रेम की परीक्षा है। किन्तु परमात्मा असीम शक्ति वाला है और सम्पूर्ण विश्व को धारण करता है। हमारे लिये वर्षा, फूल अथवा जीवन देना उसका कोई बलिदान नहीं है। मनुष्य जाति को इन उपहारों के देने में उसको कुछ त्याग करना नहीं पड़ता, तब परमात्मा हमको यह किस प्रकार दिखला सकता है कि मानवी प्रेम कैसा होना चाहिये? मनुष्य से मनुष्य प्रेम कर सकता है।

कुछ विद्वानों की अध्यात्मिक युक्तियां विश्वास करानेवाली होने की अपेक्षा अधिक विचित्र होती हैं। बर्कले (Berkeley) युक्ति देता है कि मस्तिष्क में सभी वस्तुओं के विचार रूप में रहने के कारण 'परमात्मा' का अस्तित्व अवश्य होना चाहिये। गिउलिंक्स (Geulincx) और मैलेब्रांके (Malebranche) का विचार है कि केवल 'परमात्मा ही मस्तिष्क और पुद्गल (Matter) के सम्मिलित कार्य को उत्पन्न करके उसको नियमित कर सकता है। कजिन (Cousin) 'परमात्मा' के अस्तित्व का सुन्दरता के सिद्धान्त रूप व्यक्तित्व में विश्वास करता है और इस प्रकार सौन्दर्यविज्ञान (Aesthetics) के आधार पर

ईश्वरवाद की रचना करता है।

आपको इस प्रकार के दूर की कौड़ी वाले सिद्धान्तों को एक मृदु मुस्कान के साथ खंडन कर देना चाहिये।

९—आचार शास्त्र का आधार ईश्वरवाद नहीं है, और कुछ ईश्वरवादियों की कल्पना के अनुसार यह सार्वजनिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता। जैन, हिन्दू, *बौद्ध और अनेक यूनानी दार्शनिक भी सृष्टि कर्त्ता के सिद्धान्त का खंडन करते हैं। जैन और बौद्धों के बिना किसी सृष्टिकर्त्ता के अस्तित्व की कल्पना किये ही बड़े उत्तम आचारशास्त्र की प्रणाली का विकास किया है। कनफ्यूसियन लोग पहिले अप्राकृतिकवाद की उपेक्षा करते थे, किन्तु बाद में वह उसके विरोधी हो गये। अरस्तू (Aristotle) किसी भी ईश्वरीय आज्ञा के विषय में बिना कुछ भी कहे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में आचार शास्त्र की व्याख्या करता है। वास्तव में तो केवल मूसा, ईसा, मुहम्मद और बैब के धर्मों में ही ईश्वरवाद के आधार पर आचारशास्त्र का निर्माण किया गया है। भारत, चीन और यूनान ने इस प्रकार के किसी रूप में ईश्वरवाद को स्वीकार नहीं किया।

१०—इस विषय में अंतिम बात यह है कि बिना एक

---

*ला० हरदयाल ने हिन्दू शब्द से वैदिक धर्म का वर्णन किया है। वैदिक धर्म नाम से इस समय अनेक सम्प्रदाय है और वह प्रायः परमात्मा को सृष्टि का कर्त्ता मानते हैं। केवल सांख्य और योग दर्शन ही सृष्टिक्रम में परमात्मा का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करते।

भौतिक शरीर, कुछ इन्द्रियों और एक मस्तिष्क के कोई भी जीवित प्राणी नहीं हो सकता। यह कल्पना करना बड़ा बुरा है कि कोई व्यक्ति बिना मस्तिष्क और नाड़ी संस्थान के भी विचार कर सकता है। यदि 'परमात्मा' योजना कर सकता है, सोच सकता है और प्रेम कर सकता है तो उसका मस्तिष्क और नाड़ी संस्थान कहां है? हम ऐसे किसी जीवित प्राणी की कल्पना नहीं कर सकते जो इस विषय में हमारे जैसा नहीं है। अशिक्षित ईश्वरवादी 'परमात्मा' को वास्तव में प्राचीन काल के प्रतापवाले उस सुलतान के समान समझता है जैसा कि माइकेल ऐंजेलो (Michael Angelo) के ग्रन्थ 'आदम की रचना' (Creation of Adam) में वर्णन किया गया है। वह अवश्य गलत हैं, किन्तु उनका विश्वास इस प्रकार के निरर्थक और असम्भव सिद्धांत की अपेक्षा कहीं अधिक समझ में आने योग्य है, जिसमें ऐसे सोचने वाले की कल्पना की गई है कि उसके न मस्तिष्क हो, न पेट। जो भोजन तो नहीं करता किन्तु लगातार विचार करता है, और जिसका इस प्रकार का अकाय आत्मिक अस्थिपिंजर है, कि उसकी अस्थियां या तो शून्याकाश अथवा ईथर (Ether) की बनी हुई हों। ईश्वरवादी की सब बड़ी से बड़ी युक्तियां केवल इस अनिवार्य तथा अखण्डनीय घटना के सन्मुख आकर टुकड़े २ हो जाती हैं—कि मेरे लिये इस प्रकार के व्यक्तित्व की कल्पना करना ही असम्भव है, जो सबसे दूर के नीहारिका (नेबुले) से लगा कर इस

पृथ्वी तक फैला हुआ हो, जो बिना कान के मेरे वार्तालाप को सुन लेता हो, जो बिना नेत्रों के प्रत्येक वस्तु को देखता हो जो बिना भोजन किये अथवा पानी पिये काम किये जाता हो, जो बिना औज़ारों के वस्तुओं को बना लेता हो, और बिना सिर और मस्तिष्क के ही सोच लेता हो। मैं तो इस प्रकार के जीवित व्यक्ति की कल्पना भी नहीं कर सकता, और इस विषय में मेरे साथ तो यह सब मामला यहीं ख़तम होता है। कितना ही अधिक प्रयत्न करने पर भी मैं उसको नहीं देख सकता। मैं इस विषय में कुछ सहायता नहीं कर सकता। मैं पूछता हूं, "वह है कहां ?" "वह किस प्रकार कार्य करता है ?" "बिना एक मानवी शरीर के वह किस प्रकार मानवी कार्यों को कर सकता और मनुष्य के मनोभावों को समझ सकता है ?" मैं जिसकी कल्पना नहीं कर सकता उस पर विश्वास भी नहीं कर सकता। वह तो परियों, छाया, भूतों, जिन्नों और प्रेतों की कहानी जैसा सुनाई देता है। वास्तव में यह प्राचीन विचार जिसमें "बिना शरीर वाली आत्मा" हम 'शरीर वालों' के समान प्रत्येक प्रकार से कार्य कर सकती है—केवल ईश्वरवादियों द्वारा ही प्रचलित किया जाकर सारी पृथ्वी में फैलाया गया है। उनका 'ईश्वर' एक ऐसा भूत है, जो अत्यन्त सूक्ष्म और अनन्त दूरी तक इस प्रकार फैला हुआ है कि सारे विश्व पर छाया हुआ है। बच्चे भूतों में विश्वास करते हैं और बड़े बच्चों की मनोवृत्ति से 'परमात्मा' में विश्वास करते हैं। ईश्वर केवल निरर्थक और शैतानियत से भरे हुए तीन अक्षर के शब्द के

अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

ईश्वरवाद के लिये सिद्धांत सम्बन्धी, सभी युक्तियां वास्तव में बहुत बुरी हैं। किन्तु उसके व्यवहारिक और सामाजिक परिणाम उनसे भी बहुत अधिक बुरे हैं। अन्धविश्वास कभी भी हानि रहित नहीं होता, और यह विश्वास मनुष्य जाति के लिये दुःख और कष्टों का *पैनडोरा (Pandora) का सच्चा सन्दूक है। ईश्वरवाद निम्नलिखित कारणों से उन्नति का विरोधी और संसार पर आपत्ति लाने वाला है—

ईश्वरवाद से होने वाली हानियाँ

(क) ईश्वरवाद विज्ञान की उन्नति का विरोधी और उसके मार्ग में रोड़ा है। हमारा विश्वास है कि विज्ञान मनुष्यजाति का मित्र और हितकर्ता है। किन्तु धार्मिक ईश्वरवादी विज्ञान की ओर कनअंखियों से देखता है। वह प्रकृति को देखना और उसका प्रयोग करना नहीं चाहता। उनकी यह कार्य पद्धति विचित्र और अयुक्त दिखलाई दे सकती है, क्योंकि ईश्वरवादी कहते हैं कि प्रकृति 'ईश्वर' का गुणानुवाद करती है। किन्तु तथ्य यह है कि प्राकृतिक कार्यों के सूक्ष्म और विस्तृत अध्ययन से सृष्टा तथा दयालु आत्मा में विश्वास कम हो जाता है। विज्ञान प्रकृति में निश्पक्षपात तथा न बदलने वाले नियम के विचार पर जोर देता है, जब कि

---

* यूनानी दंत कथा के अनुसार पैनडोरा पृथ्वी की सबसे प्रथम स्त्री थी। इसको जूपीटर ने एक संदूक दिया था, जिसमें संसार भर के सब अनिष्ट थे। संदूक के खोले जाने पर यह अनिष्ट सारी पृथ्वी में फैल गये।

ईश्वरवाद प्रकृति में उसके पीछे या ऊपर एक जीवित व्यक्ति के विचारों और इच्छा शक्ति को मानता है। अशिक्षित मनुष्य आकाश को देख कर तारों, सूर्य अथवा उनके 'सृष्टा' की भक्ति और नम्रता से पूजन करने लगता है। किन्तु एक ज्योतिर्विज्ञान का विद्वान, जो आकाशीय गोलों और गतियों को नित्य ही दिन और रात्रि के समय देखा करता है, उनको न देवता समझता है अथवा न उनसे एक आश्चर्यजनक सृष्टिकर्ता के विषय में ही सोचता है। उसके वास्ते वह केवल बड़े भारी आग के गोले हैं। प्रकृति के ऊपर शीघ्रता से ऊपरी दृष्टि डालने से भले ही 'ईश्वर' का विचार सूझ जावे, किन्तु उसका समीप से लगातार अध्ययन करने पर मस्तिष्क धीरे२ अनिवार्य रूप से बुद्धिवाद (Rationalism) की ओर हो जावेगा। जब लैप्लास (Laplace) से पूछा पूछा गया कि उसने अपने ज्योतिर्विज्ञान के ग्रन्थ में 'ईश्वर' का नाम तक क्यों नहीं लिया, तो उसने उत्तर दिया, "मुझको उसकी कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।" ईश्वरवादी हृदय से यह विश्वास करता है कि सामाजिक नैतिकता और अनुशासन के लिये 'ईश्वर' में विश्वास करना पूर्णतया आवश्यक है। उनका विचार है कि नास्तिक कभी भी धार्मिक स्त्री अथवा पुरुष नहीं हो सकता। अतएव उनको उनके विचारों के अनुसार ही आचार-शास्त्र का समर्थन करना चाहिये। यदि विज्ञान नास्तिकों को उत्पन्न करता है और नास्तिकता नैतिकता को गिरा देती है तो वह परिणाम निकालते हैं कि विज्ञान भयंकर और अवांछनीय

है। वह स्वभावत: ही बिना गुण के विज्ञान की अपेक्षा बिना विज्ञान के गुण को अच्छा समझते हैं। इस खेदजनक गलती के परिणाम स्वरूप ही मध्यकालीन यूरोप और इस्लामी देशों में वैज्ञानिक अध्ययन का दमन किया गया। उस समय यह देखा गया कि अरस्तू के ग्रन्थों को पढ़ने वाले विद्यार्थी प्राय: उसके इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लेते थे कि विश्व नित्य और किसी का बनाया हुआ नहीं है। अतएव अरस्तू के ग्रन्थों की कैथोलिक सम्प्रदाय और कट्टर ईश्वरवादी मुसलमान दोनों ने ही निन्दा की, क्योंकि यह दोनों ही बाईबिल और क़ुरान के अनुसार परमात्मा द्वारा सृष्टि किये जाने के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। वैज्ञानिक अध्ययन से चमत्कारों पर भी अश्रद्धा हो जाती थी और उन्हीं पर अनेक ईश्वरवादी सम्प्रदाय विशेष बल देते थे। प्रोफेसर मौरिस डे वुल्फ (Maurice De Wolf) का कहना है, "रोजर बैकन (Roger Bacon) ने अपने समकालीन विद्वानों की उनकी वैज्ञानिक अन्वीक्षण और शोध में उदासीनवृत्ति होने के कारण लगातार और बुरी तरह से निंदा की। यह विद्वान् विज्ञान की उन्नति से प्रथक् रहते थे।" डाक्टर टी. जे. डे. बोअर (T. J. De Boer) लिखते हैं, "अरस्तू, संसार की नित्यता के सिद्धांत के कारण भयंकर समझा जाता था। इसी कारण नौवीं और दसवीं शताब्दी के मुसलमान ईश्वरवादियों ने उसके विरुद्ध लिखा है।………एक दार्शनिक का पुस्तकालय बग़दाद में जला दिया गया। एक प्रचारक ने इबन-अल-हैथम के एक

ज्योतिर्विज्ञान के ग्रन्थ को आग में झोंक दिया।''

यह स्पष्ट है कि विज्ञान और ईश्वरवाद में सदा ही न निबटने योग्य झगड़ा चलता रहा है। वह कभी एक नहीं हो सकते। ईश्वरवादी सदा ही यह विश्वास करते रहेंगे कि 'ईश्वर' में विश्वास किये बिना नैतिकता का होना असंभव है, और समाज 'विरोधी शक्ति के रूप में सदा विज्ञान की उपेक्षा और उसका दमन करते रहेंगे। अतएव विज्ञान को ईश्वरवाद की इस चुनौती को स्वीकार करके उससे मृत्यु पर्यन्त युद्ध करने के लिये तयार हो जाना चाहिये। मनुष्य जाति को एक ओर विज्ञान और उसकी विजय तथा उसके उपहारों और दूसरी ओर 'ईश्वर' उसकी काल्पनिक कृपाओं और उपहारों में से एक को चुन लेना चाहिये। विज्ञान हमको शक्ति, समृद्धि और शान्ति देता है। ईश्वरवाद प्रार्थनाओं, निर्धनता, महामारी में प्रसन्नता मानता है। इनमें से एक को पसन्द कर लो।

(ख) ईश्वरवाद समाज में जड़ता और अवनति करता है; क्योंकि वह किसी विशेष धार्मिक सम्प्रदाय के नियमों और आदर्शों को सब राष्ट्रों और युगों के लिये ईश्वरीय आदेश समझता है। इस प्रकार अधिकार अपने सबसे भयानक रूप में सामाजिक भाग्य का निर्णायक बन जाता है; और स्वतन्त्र समालोचना और वादविवाद सदा के लिये बन्द हो जाते हैं।

(ग) ईश्वरवाद मनुष्य जाति को उन सभी सुविधाओं और लाभों से वंचित कर देता है, जो उसको विज्ञान से मिलते हैं।

वह इतिहास के राजमार्ग पर आगे बढ़ने वाले यातायात को भी रोक देता है। कैसी भारी हानि है! परमात्मा से प्रार्थना करना और विज्ञान की उपेक्षा करना—कैसी आत्म घातक नीति है। मनुष्यजाति ने इस मूर्खता का बड़ा महंगा मूल्य चुकाया। किन्तु अभी आगे इससे भी बुरा समय आने की सम्भावना है। ईश्वरवाद हमको ज्ञान, शुद्धता, धन और आविष्कारों ही से बंचित नहीं करता वरन् यह जनता में झगड़ों, घृणा और उपेक्षा को भी उत्पन्न करता है। यह बड़ी भयंकर समाज विरोधी शक्ति है। ईश्वरवादि गाते हैं, 'परमात्मा ही प्रेम है।' यही उनका सिद्धान्त है। व्यवहारिक रूप में ईश्वरवाद ने अपने स्वाभाविक तर्क के द्वारा सदा रक्तपात और निर्दयता का मार्ग ही दिखलाया है और यही मार्ग वह दिखला भी सकता है।

ईश्वरवादी धर्म अत्यन्त असहिष्णु और हठी होते हैं। वह 'व्यक्ति की मुक्ति' के सिद्धान्त की शिक्षा देते हैं। उनके अनुयाइयों का विश्वास होता है कि अन्य सब धर्मों के अनुयायी 'नरक में' भेजे जावेंगे। वह नैतिक आचरण के दो प्रकार के नियम मानते हैं—एक अपने आपस में बरतने के लिये, * दूसरा अविश्वासियों के लिये। इस अविश्वासी को 'विश्वासी पुरुष' बिना पाप का भागी बने धोखा दे सकता है अथवा हत्या भी कर सकता है। सम्पूर्ण मनुष्यजाति को कुल दो विभागों में विभक्त किया गया है— एक विश्वासी, दूसरे अविश्वासी। विश्वासी लोग मृत्यु के

---

*विधर्मियों।

पश्चात् स्वर्ग में जावेंगे और अविश्वासी लोग नरक में अनेक प्रकार की यंत्रणाएं सहेंगे। यदि आपका जन्म किसी ऐसे धर्म में हुआ है तो आपको पड़ौसियों और अपने नगरवासियों में घृणा तथा कृपणता उत्पन्न करने वाले इस समाज विरोधी सिद्धान्त को छोड़ कर उसकी निन्दा करनी चाहिये। गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र को पढ़ने से आप देखोगे कि वह दूसरे धर्म के अनुयाइयों और नेताओं के साथ कैसा व्यवहार किया करता था। अशोक की धर्मलिपियों को पढ़ो और धार्मिक सहनशीलता की भावना को अपने मन में उत्पन्न करो। इस्लाम और इसाइयत की रंगी हुई सुदृढ़ असहनशीलता की सब से उत्तम विरोधी औषधि रूप बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के साहित्य और इतिहास का अध्ययन करो।

ईश्वरवाद ने अनेक युद्ध और अत्याचार कराये हैं। विभिन्न धर्मों ने जिनमें अंधविश्वास ने मनुष्यजाति को बांट रखा है, मनुष्य जाति के निष्कलंक दामन को चीर फाड़ कर टुकड़े २ कर दिया है। अनेक देवी देवताओं के विश्वास ने मनुष्यों को प्राय: एक दूसरे के लिये कठोर और निर्दय बनाया है। एक देवता या देवी की पूजा करने वाले दूसरे देवता या देवी के उपासकों को अपना विरोधी और शत्रु समझते रहे हैं। यहोवा, बाल, इन्द्र, थार आदि विभिन्न जाति के देवताओं ने कई २ बार युद्ध के झण्डों का काम दिया है। प्राचीन बहुदेवतावाद ने,– यद्यपि यह निवारक रूप था इतनी घृणा और अत्याचार का

प्रचार नहीं किया जितना मध्य और वर्तमान कालीन एकेश्वरवाद ने किया। एकेश्वरवाद एटीला (Attila) के समान मनुष्य का मूर्तिधारी अभिशाप है। यह वह * उपास का वृक्ष है कि जहां कहीं उसकी दुखदाई छाया पड़ जाती है वहीं शान्ति और मित्रता नष्ट हो जाती है। जब प्राचीन स्थानीय देवता एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर से मिल जाते हैं तो प्राचीन धर्मों की प्रथकता, दमन और असहिष्णुता सहस्रों और लाखों गुनी बढ़ जाती है। यहूदी मुसलमानों ईसाइयों का एक और केवल एक मानपात्र 'ईश्वर' अशिक्षित पैगम्बरों और धर्म नेताओं के मलीन और विभ्रान्त मस्तिष्क से निकलता है। यह 'ईश्वर' वास्तव में भयानक राक्षस और दुष्ट होता है, जो राजनीतिक स्वेच्छाचारिता और प्रकृति के अज्ञान से उत्पन्न होता है। वह मिश्र, असीरिया, बैबीलोनिया और पर्शिया के सनकी अत्याचारियों की प्रतापी छाया है। इस 'ईश्वर' को सब नियम और आचरणों से ऊपर समझा जाता है। वह एक स्वेच्छाचारी, अत्यन्त क्रूर,

---

१-ऐटीला (सन ४०६-४५३) अत्यन्त युद्धप्रिय हूण राजा था। उसने रोमन सेनाओं को कई २ बार पराजित करके देश पर बड़े बड़े नृशंस अत्याचार किये थे। उसने जर्मनी और गाल पर भी आक्रमण किया था। यह इटली पर दूसरे आक्रमण के लिये तैयारी करता हुआ ही मर गया।

२ * उपास जावा द्वीप का एक वृक्ष है। इसके विषय में प्राचीन काल में यह प्रसिद्ध था कि इसकी हवा कई कोस तक के बनस्पात और पशुओं को मार डालती है।

निर्दय, अभिमानी, सृष्टा और विनाश करने वाला है। उसको एक निरंकुश व्यक्तिगत शक्ति का देवता बनाया हुआ है। उसको वास्तव में दयालु कहा जाता है, किन्तु उसकी दया—जैसी वह भूकम्पों, तूफानों और महामारियों में देखने में आती है—जंगल के क्रूर पशुओं से भी कहीं अधिक भयंकर दिखलाई देती है। आकाश में एक स्वेच्छाचारी सम्राट् के अस्तित्व के इस विचार ने एकेश्वरवादी विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों में अत्यन्त भयंकर और उग्र असहिष्णुता को उत्पन्न कर दिया। उसके धोखे में आये हुए पूजकों द्वारा पृथ्वी पर समय २ पर रक्त की नदियां बहाई गई हैं। सभी 'ईश्वरवादी' प्राचीन काल में अनेक प्राचीन देवताओं को मानने वाले बहुदेवतावादियों से, जो इस समस्त संसार के नये 'ईश्वर' को नहीं मानते थे घृणा करते और उन पर मनमाने अत्याचार करते थे। इस्लाम के एकेश्वरवादियों ने फ़ारिस, भारत और चीन के 'काफ़िरों' को अल्लाह के नाम पर काट डालने और उनकी लूट करने में गौरव समझा। कट्टर एकेश्वरवादियों को किसी भी देवता में विश्वास न करने वाले नास्तिकों और अद्वैतवादियों को भी काट कर तलवार के घाट उतार देना चाहिये। क़ुरआन में लिखा हुआ है, "ऐ सच्चे ईमानदारो! अपने पास रहने वाले सब अविश्वासियों के साथ युद्ध करो और उनके साथ अधिक से अधिक कठोरता करो। यदि आप एक सहस्र भी हो तो आप ईश्वर की कृपा से दो सहस्र को भी पराजित कर दोगे, क्योंकि ईश्वर हिम्मत करने वालों के साथ होता है।" एकेश्वरवाद

के हत्यारे अंधविश्वास में पड़े हुए अधम अनुयाइयों ने अपने काल्पनिक अदृश्य ईश्वर में विश्वास न करने वालों के विरुद्ध पाशविक घृणा की आग जला दी। बहुदेवतावादियों, अद्वैतवादियों और नास्तिकों के साथ युद्ध करके धार्मिक एकेश्वरवाद 'ईश्वर के प्रताप' के लिये अपने उत्साह में अब एक दूसरे से ही युद्ध करने लगे। मुसलमानों का विचार है कि ईसाई लोग 'ईश्वर' का यथार्थ रूप में पूजन नहीं करते, और ईसाइयों का विश्वास है कि मुसलमानों का 'खुदा' प्रशंसा करने के योग्य नहीं है। अतएव इन दोनों धर्मों में सदा ही रक्तमय युद्ध होता रहा। 'एक और अनन्य ईश्वर' का सिद्धांत अनिवार्य रूप में असहिष्णुता को उत्पन्न करता है, क्योंकि केवल एक ही ईश्वरीय पुस्तक हो सकती है और एक ही अधिकार प्राप्त विश्वासी पैग़म्बर हो सकता है, जिसको यह अदृश्य 'ईश्वर' सदा ही अपना संदेश भेजता रहता है। यदि कोई अन्य विद्वान् पुरुष भी 'पैग़म्बर' होने का दावा करे तो वह केवल ठग है, क्योंकि 'ईश्वर' एक समय में केवल एक 'नबी' ही भेज सकता है। समस्त धर्म के ईश्वर के अपने ज्ञान के आधार पर होने के कारण और मानवी तर्क तथा अन्तरात्मा का उसमें कोई हस्तक्षेप न होने से यह आवश्यक हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति को सभी विषयों और अवसरों पर केवल उस धार्मिक ग्रन्थ को ही एक मात्र अधिकार पूर्ण शिक्षा और केवल उस माननीय प्रामाणिक 'पैग़म्बर' का ही अन्धानुसरण करना चाहिये। इस प्रकार इस समय अनेक प्रतियोगिता करने वाले 'पैग़म्बर' हैं, जो अपने २

ईश्वरीय ग्रन्थ को उपस्थित कर रहे हैं—मूसा, ईसा, मुहम्मद, बाह-उल्लाह, मैरी बेकर एडी (Mary Baker Eddy) जोसेफ़ स्मिथ (Joseph Smith), फ्रेटैग (Freytag),तथा अन्य व्यक्ति इसी प्रकार के पैग़म्बर हैं। इनमें से प्रत्येक नेता को ऐसा एकमात्र मौलिक 'पैग़म्बर' माना जाता है, जिसको परमात्मा ने स्वयं अपना सत्य उपदेश दिया, तथा सत्य के अतिरिक्त और कुछ न दिया। अतएव इन विभिन्न धर्मों के पुरोहितों ने अपनी अनोखी, सर्वभक्षी दैवशक्ति वाली, पूर्णज्ञान वाली, और खण्डन न की जाने योग्य 'पवित्र पुस्तक' के महत्व की स्थापना के लिये हाथ में कलम और तलवार लेकर अन्य धर्मों के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। धर्मयुद्धों (Crusades) की रक्तरंजित कहानी जिसमें सेंट लुई (St. Louis) जैसे धार्मिक व्यक्ति ने भी हिंसक योद्धा के समान कार्य किया था—हम सभी के लिये एक घृणा पूर्ण चेतावनी है; क्योंकि वह एकेश्वरवाद के रक्त के प्यासे सिद्धान्त के अनिवार्य परिणामों के रूप में बड़े २ भयंकर कार्यों का हम को स्मरण कराती है। ऐथेन्स (Athens) और भारत वर्ष के दार्शनिकों ने विभिन्न सिद्धान्तों की शिक्षा दी है। किन्तु वह एक सर्वसामान्य उद्देश्य के वास्ते शान्ति तथा मित्रता पूर्वक एक साथ कार्य कर सकते थे। किन्तु एक मुसलमान मुल्ला और ईसाई प्रचारक—यदि वह एक दूसरे को काट नहीं सकते तो भी भौंकेंगे अवश्य ही। ईसाई मत ईश्वरवाद के तर्क की भयंकर आवश्यकता से मुस्लिम मत पर अवश्य ही आक्रमण करेगा।

जिस प्रकार एक राज्य में दो राजा राज्य नहीं कर सकते, उसी प्रकार संसार में दो पैग़म्बर एक साथ नहीं रह सकते। किंतु सब से गहरे गढ्ढे के नीचे भी एक अधिक गहरा गढ्ढा है। एक ही 'पैग़म्बर' के अनुयाइयों ने उसकी शिक्षा की व्याख्या प्रथक् २ रूप में करने के कारण आपस में लड़ना आरम्भ किया। इस एक, मात्र 'इलहाम' के विचार ने एक ही धर्म की विभिन्न सम्प्रदायों से आपस में युद्ध करा दिया।

ईश्वरवाद को समानता पर बल देना चाहिये, और यदि आवश्यक हो तो उसका प्रचार उस प्रकार शक्ति से करना चाहिये, जिस प्रकार सरकार अपने बनाये हुए नियमों का पालन पुलिस और सेना के द्वारा कराती है। इस्लाम और ईसाई धर्म की कहानियों का एक भाग रक्तमय युद्धों से बहे हुए रक्त से लिखा हुआ है। 'कट्टर' कैथोलिक लोगों ने अन्य सभी ईसाई साम्प्रदायों को खूब सताया। तेरहवीं शताब्दी में कैथोलिक लोगों ने बेज़ियर्स (Beziers) नगर के सभी निवासियों को काट डाला था और लाबेल नगर में चार सौ विधर्मियों को एक साथ जला दिया था। इनक्विजीशन (Enquisition) के ऐतिहासिक लौरेंटे (Lorente) का अनुमान है कि स्पेन में सन् १४७८ से १८०८ तक ३६३,००० मनुष्यों से भी अधिक को मृत्यु तथा अन्य प्रकार के दण्ड दिये गये थे।

ऐसे तो रोमन कैथोलिक लोग थे! किन्तु प्रोटेस्टैण्ट लोगों ने भी * पूरिटनों (Puritans) और स्काटलैण्ड के निर्णायकों

---

* पूरीटन लोग ईसाई होते हुए भी इंगलैंड के गिरजे के विरोधी थे।

(Scottish Covenanters) को तंग किया। कैल्विन सम्प्रदाय वालों ने भी अपना समय आने पर अपना धार्मिक कर्तव्य समझ कर क्वेकरों (Quakers) और यूनिटैरियन लोगों (Unitarians) का दमन करने का उद्योग किया। यूनानियों के कट्टर साम्प्रदाय नेस्टोरियन लोगों (Nestorians) स्टुण्डिस्ट लोगों (Stundists) मोलाकनी (Molakani), दौखोबाद (Doukhobors) लोगों तथा अन्य साम्प्रदाय वालों को पर्याप्त कष्ट दिया और उनके साथ दुर्व्यवहार किया। अफ़ग़ानिस्तान में कुछ वर्ष पूर्व ही एक विरोधी मुसलमान प्रचारक को पृथ्वी में जीवित गड़वा कर उसको पत्थरों से मरवा डाला गया था। ल्यूक्रेटिअस (Lucratus) ने इस प्रकार के अन्धविश्वास को सभी समय के लिये अपमान पूर्ण बतलाया है…।

"धर्म इतने बड़े पाप के लिये भी तय्यार हो सकता था।" वास्तव में निर्दय असहनशीलता ही ईश्वरवाद का जीवनश्वास है। यह पूजन करने वालों के हृदय को मित्रता और कुटुम्ब प्रेम के विरुद्ध कर देता है। यदि कोई मनुष्य 'ईश्वर' में विश्वास नहीं करता तो उसको उसके माता पिता और भाई भी घृणा पूर्वक त्याग देते हैं। स्पेन के फिलिप द्वितीय ने कहा था, "यदि मेरा अपना पुत्र भी विरोधी विश्वास का बन गया तो मैं उसको भी तेज़ नोक वाली छुरियों का शिकार बनाऊंगा।" मैथ्यू ओरी (Matthieu Orry) नाम के एक कैथोलिक पादरी ने स्वयं अपने भतीजे का ही परित्याग कर दिया था, जिसको बाद

में विधर्मी के रूप में जला दिया गया। अनेक भावुक ईश्वरवादी दूसरे धर्म और सम्प्रदाय के 'अधर्मियों' और ईश्वरवादियों की हत्या करने के लिये सदा तैयार बैठे रहते थे। ईश्वरवाद हत्या को प्रोत्साहित ही नहीं करता, वरन् उसको प्रतापी कार्य भी बतलाता है। मानवी भावना का यह शोक जनक अन्त मनोविज्ञान की अच्छी तरह परीक्षा की हुई घटना है। ईश्वरवाद 'ईश्वर' में इतना प्रेम करने की शिक्षा देती है कि वह ऐसे व्यक्तियों से भी घृणा करते, और उनको कानून तोड़ने वाला बतलाते हैं जो उनके अविश्वासनीय सिद्धांत पर सच्चे दिल से विश्वास नहीं कर सकते। जब तक यह घृणा करने योग्य अंधविश्वास फैला हुआ है मनुष्यजाति में एकता का सम्पादन नहीं किया जा सकता। ईश्वरवाद तर्क और आचारशास्त्र दोनों का ही विरोधी है। इस नरबलि लेने वाले ईश्वर का पतन हो।

द्वितीय खंड

शरीर निर्माण

अध्याय	प्रथम	शुद्ध वायु
	द्वितीय	जल
	तृतीय	धूप
	चतुर्थ	भोजन
	पंचम	व्यायाम
	षष्टम	खेल कूद
	सप्तम	शक्ति का सुरक्षित रखना
	अष्टम	आशावाद और परोपकारीता

द्वितीय खण्ड

शरीर निर्माण

अपने शरीर की सुध लेना आपका सबसे प्रथम कर्तव्य है। अपने स्वास्थ्य को अच्छा बनाये रहो, और शक्ति तथा सहनशीलता को बढ़ाते रहो। शरीर यथा संभव अधिक से अधिक सुंदर बनाने का भी यत्न करो। आदर्श के लिये अपने कमरे में अपोलो (Apollo), बेल्वीडीयर (Belvedere) अथवा वीनस डे माइलो (Venus De Milo) की छोटी सी मूर्ति* रख लो। प्रत्येक व्यक्ति में उत्तराधिकार में मिली हुई त्रुटियों, रोगों तथा निर्बलता की आन्तरिक प्रवृत्ति हुआ करती है। जैसा कि कवि कालिदास ने कहा है कि 'शरीर कर्तव्य को पूर्ण करने का प्रधान साधन है।" यदि आपको सौन्दर्य नहीं मिला है तो भी आप

---

* भारतीय आदर्श के लिये आप अपने कमरे में हनूमान, भीम आदि के चित्र भी लगा सकते हैं।

अपने शरीर को उत्तम स्वास्थ्य, प्रतापी तथा प्रसन्न मन से उत्पन्न होने वाली सुन्दरता और शोभा से विभूषित कर सकते हो। सौन्दर्य की गहराई चर्म तक ही नहीं होती, वरन् आत्मा तक होती है।

बिना अच्छे स्वास्थ्य के जीवन केवल भारस्वरूप होता है। जीवन में अपने कठिन कार्य के लिये आपको बल और शारीरिक योग्यता की आवश्यकता है। आपको अपनी प्रत्येक नाड़ी और प्रत्येक अंग में फ्रांसीसियों के शब्दों में 'जीवन के आनन्द' का अनुभव प्रतिक्षण होना चाहिये। उस समय बुरे विचारों और अंधकारपूर्ण भविष्य को आपके मस्तिष्क में स्थान भी न मिलेगा। एक स्वस्थ पुरुष के लिये श्वास और नींद के समान ही आशावाद भी अत्यन्त आवश्यक है। अपच के रोग ने शापेनहौर (Schopenhauer) और हैर्टमैन (Hartmann) की सारी युक्तियों से भी अधिक निराशावाद को उत्पन्न किया है। केवल रोगी और दु:खी व्यक्ति ही इस मूर्खतापूर्ण प्रश्न को किया करता है, "क्या यह जीवन रखने योग्य है ?"

यदि आप अपने शरीर का स्वास्थ्य ठीक न रक्खोगे तो आपका बहुत सा समय तो रोग में ही व्यतीत हो जावेगा। समय ही प्रायः धन है; और समय ही सदा और सब कहीं जीवन है। यदि आप सौ वर्ष की पूर्ण आयु का उपभोग करो तो भी जीवन बहुत ही छोटा है। आप उसके छोटे से छोटे भाग का भी रोग में नष्ट होना सहन नहीं कर सकते। सामाजिक दृष्टिकोण से रोग

प्रत्येक देश में उत्पत्ति में बाधा पहुंचा कर अत्यन्त धन हानि करता है। रोगी पुरुष अपने सम्बन्धियों और मित्रों को भी व्यर्थ में कष्ट दिया करता है। यदि किसी संक्रामक रोग की पीड़ा हो तो वह अपने निकटवर्तियों में भी रोग को फैला सकता है। अपने शरीर की उपेक्षा करके उसको संक्रामक रोगों तथा सामान्य रोगों का मुकाबला करने की शक्ति को कम करना वास्तव में समाज के विरुद्ध अपराध है। कितने व्यक्ति बिना जाने हुए ही अपने मित्रों को जुकाम और इंफ्लुएंज़ा का उपहार दिया करते हैं। यदि आप बिना अपने अपराध के बीमार पड़ते हैं तो आप सभी नागरिकों की सहानुभूति के पात्र हैं। किन्तु यदि आपकी आपत्ति आपकी ही असावधानता अथवा असमम की प्रकृति का फल हो तो आपको विरोधी समालोचना को सुनना ही चाहिये। उस समय आप अपने ही साथ २ दूसरों को भी गलती पर ले जाते हो। जिस रोग को रोका जा सकता है, उसका होना वास्तव में पाप है।

आपको एक पहलवान बनने अथवा अपनी पेशियों को अत्यन्त पुष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार की शारीरिक संस्कृति का कार्य आपको व्यवसायिक भागने वालों, कुश्ती लड़ने वालों और घूंसे बाजों के लिये छोड़ देना चाहिये। आपका उद्देश्य मध्यम स्वास्थ्य, बल, पूर्णता और दीर्घजीवन प्राप्त करना होना चाहिये। आपकी योग्य अभिलाषा रोग रहित रहने और कम से कम सौ वर्ष तक जीने की होनी चाहिये। प्राचीन स्तोत्र बनाने

वालों का विचार था कि मनुष्य जीवन मध्यम रूप से सत्तर वर्ष का होता है; किंतु हमारा उद्देश्य इसकी अपेक्षा उच्च होना चाहिये। सदा ही प्लैटो (Plato), बुद्ध, सोफोकिल्स (Sodhocles), वालटेयर (Valtaire), गोएथे (Goethe), फ्रेडेरिक हेरीसन (Fredrick Harrison), रावर्ट ब्रिजेज (Robert Bridges), ऐनि बसेंट (Anie Besant), बर्नर्ड शा (Bernard Shaw) डाक्टर जे० ओल्डफील्ड (Dr. J. Oldfield,) जान ड्यूई (John Dewey) तथा अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों के विषय में सोचते रहो, जो वृद्धवस्था में भी चुस्तु, फुर्तीले ओर साहसी बने रहे।

सभी देशों में कुछ स्त्री पुरुष सौ वर्ष तक जिया करते हैं आप भी सौ वर्ष तक क्यों न जीवें ?

अपने शरीर के अन्दर की रचना के ज्ञान के लिये आपको कुछ पुस्तकें शरीर-निर्माण विज्ञान(Anatomy) और शरीर तत्त्व विज्ञान [Physiology] पर पढ़नी चाहियें। कितने पुरुष अपने ही शरीर की रचना के विषय में पूर्णतया अन्धकार में रहने में संतुष्ट रहते हैं ? किन्तु यदि वह एक मोटर कार मोल लेते हैं तो वह उसके प्रत्येक पुर्जे के विषय में सब कुछ जानने का उद्योग करते हैं। संभवतः उसका कारण यह है कि वह मोटर का मूल्य देते हैं, जब कि उनका शरीर प्रकृति से उनको बिना मूल्य उपहार में मिलता है। शरीरनिर्माण विज्ञान और शरीर तत्व विज्ञान की योग्य शिक्षा के आधार पर शरीरिक संस्कृति की नीव डालो।

स्वास्थ्य रक्षा की विभिन्न प्रगतियां

आपको कुछ पुस्तकें विशेषज्ञों की लिखी हुई भी पढ़नी चाहियें, किन्तु उनके सिद्धांतों को अपने जीवन पर लागू करने में स्वयं अपनी बुद्धि से काम लो। सभी विशेषज्ञ एक पक्षीय हो जाया करते हैं। आपको उनके प्रत्यक्ष ज्ञान की परीक्षा अपने अनुभव से करनी चाहिये। आपको उपवास,, शाकाहार, ऐर्ड के भोजन संबन्धी सिद्धान्तों, डाक्टर सैलिसबरी के भोजन सम्बन्धी सिद्धान्तों ,दुगधाहार, भोजन विषय में 'फ्लेचरवाद' (“Fletcherism”), केवल एक ही वस्तु खाकर रहने, (Monodiet), पारसियों के भोजन सम्बन्धी आचार नियमों, नीप (Kneipp) की जल चिकित्सा, (Ebbard) की प्रणाली, एहरेट (Ehret) के पेशियों बिना आहार, ड्यूई (Dewey) की कलेअन करने की प्रणाली, मलाशय की शुद्धि, सूर्य स्नान, विना पके भोजन, लस्ट (Lust) का मैरेथान नामक स्नान, रेडियम द्वारा चिकित्सा (Radium Emanation Cure), रोथ चिकित्सा (Schroth Cure) आदि के सम्बन्ध में भिन्न २ प्रकार के ग्रन्थ पढ़ने चाहियें। किन्तु उन अनुभवी अध्यापकों के रुचिपूर्ण प्रयोगों को करने से पूर्व आपको दो तीन बार भली प्रकार विचार कर लेना चाहिये। इस बात का स्मरण रखो कि स्वास्थ्य विज्ञान मनुष्य के लिये बनाया गया है, न कि स्वास्थ्य विज्ञान के लिये मनुष्य। स्वास्थ्य उच्चकोटि के उद्देश्य-प्राप्ति का एक साधन है। दिन भर स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य में

ही मत फंसे रहो। तापमान, विटामिन (Vitamin), और विषैले पदार्थों के विषय में ही सदा बात चीत करते रहने वाले व्यक्तियों के उद्देश्य शुद्ध होने पर भी उनकी नकल मत करो। ऐसे व्यक्तियों का यह पीछा पड़ने वाला स्वभाव किसी २ समय तो अत्यन्त असह्य हो जाता है। स्वास्थ्य के लिये इस प्रकार का मिराक भी एक प्रकार का रोग है। शरीर के लिये उतना ही समय दो जितना योग्य हो; उससे न अधिक न कम।

मैं आपको इस प्रकार के सूक्ष्म और विस्तृत नियमों को बतला कर तंग नहीं करूंगा, जिनके ऊपर आचरण करना आपको असम्भव जान पड़े। संभवतः आप आदर्श वायुमण्डल में नहीं रहते। आपको अपने साधनों और अवसरों के अनुसार शारीरिक संस्कृति का अभ्यास करना है। मैं आपका ध्यान कुछ सामान्य उद्देश्यों की ओर आकर्षित करता हूं।

(प्रथम शुद्ध वायु)

आपके फुफ्फुसों को शुद्ध और ताज़ी वायु की आवश्कता है। आधुनिक नगरों की दूषित वायु विषाक्त होती है। यदि हो सके तो देहात अथवा नगर के आस पास रहने का उद्योग करो। जिस कमरे में सोओ उसकी खिड़की को शरद ऋतु में भी खुली रखो। यदि आपने पर्याप्त उष्ण वस्त्र ओढ़े हैं तो ठंडी वायु आपको हानि नहीं करेगी। यदि खुली वायु में न सो सको तो गर्मियों में छज्जे अथवा ड्योढ़ी में सोओ। आपके चर्म को भी आपके फुफ्फुसों के जितनी ही वायु की आवश्यक्ता है।

प्रति दिन कुछ समय नंगे बैठा करो।

गर्मियों की छुट्टियों में तो प्राय: खुले बदन रहना चाहिये। इस प्रकार के बहुत मोटे २ वस्त्रों को मत पहिनो, जो हवा को बिलकुल रोक दें। कपड़ों में सबसे नीचे जालीदार कपड़ा अथवा छेददार बनियान पहिने रहो।

ठीक श्वास लेना सीखो। प्रतिदिन कुछ मिनट तक अत्यंत गहरा गहरा श्वास लेनेका अभ्यास करो। ओषजन (Oxygen) आपको सदा युवक बनाये रहेगा। प्रोफेसर ओन्शी (O'shea) और डाक्टर केलेग (Dr. Kllogg) का कहना है, "प्रत्येक पुरुष को प्रतिदिन चालीस से लगाकर पचास घन फुट तक वायु की आवश्यकता होती है।" यूस्टेस माइल्स (Eustace Miles) लिखता है, "मुझको दिन भर बार बार गहरा और पूरा श्वास लेने क अभ्यास के महत्व पर ज़ोर देना चाहिये। सामान्य सभ्य मनुष्य का सामान्य श्वास न तो गहरा ही होता है और न पूर्ण ही होता है।"

द्वितीय—जल

बहुत समय पूर्व पिण्डर (Pindar) ने कहा था कि जल सबसे उत्तम होता है। यह शरीर के बाहिर और भीतर दोनों ही स्थानों में उसको पुष्ट करता है। प्रतिदिन सारे शरीर को शीतल जल से धोओ और प्रति सप्ताह एक या दो बार उष्ण जल से स्नान किया करो। प्रात: काल के समय भोजन से पूर्व बहुत सा शुद्ध जल यदि हो सके तो उष्ण जल पी लिया करो।

किन्तु भोजन के समय अधिक जल नहीं पीना चाहिये। यदि जल अशुद्ध अथवा भारी हो तो वाष्पी करण क्रिया द्वारा बनाये हुए डिस्टिल्ड (Distilled) जल को पिओ। डिस्टिल्ड जल एक पुरुषत्व वर्धक औषधि है। वह समय आने वाला है, जब इसका वर्तमान काल की अपेक्षा अधिक साधारण तौर पर प्रयोग किया जाया करेगा। कभी २ अपने नेत्रों को ठंडे जल से धो लिया करो। कभी २ अपने मलाशय को ठंडे अथवा कुछ उष्णजल से धो लिया करो। यह स्वास्थ्यकर कार्य आपको दीर्घायु बनावेगा। मलाशय के धोने की उपेक्षा मत करो।

तृतीय—धूप

आपको सूर्य रूपी चिकित्सक से—जो बिना पैसा लिये ही चिकित्सा करता है—अपना सदा दृढ़ सम्बन्ध बनाये रखना चाहिये। प्रातः काल के समय अपने चर्म को धूप के सामने कुछ देर तक अवश्य खोले रहो। यदि धूप न निकले तो (कार्बन अथवा पारे के) सूर्य-लैम्प (Sun-Lamp) से कामलो। पृथ्वी के उत्तरी भाग के देशों में तो उसको घर के फ़र्नीचर का एक भाग ही बना लेना चाहिये। डाक्टर सी० एच० टाइरेल (C. H. Tyrell) का कहना है, "धूप प्रकृति की सबसे बड़ी चिकित्सक—प्रतिनिधि है। वह धूप बिना ईर्ष्या के बिना मूल्य अथवा धन लिये चिकित्सा कर देती है......। निम्नकोटि के पशुओं से—जो कभी २ धूप में बैठने के अवसर की उपेक्षा नहीं करते—इस विषय में शिक्षा लेनी चाहिये।

……सूर्य की रसायनिक किरणों में रोगनिवारक शक्ति होती है…सूर्य की रोगनिवारक और युवा बनाने वाली किरणें एक स्त्री को ऐसा रंग दे सकती है जो कभी न धुले।"

बिजली के प्रकाश में शरीर को खोलना भी लाभप्रद होता है। पसीने की आवश्यकता के समय तो बिजली का प्रकाश विशेष रूप से लाभ दायक होता है। इस प्रकार का 'स्वेद स्नान' शरीर के विषैले पदार्थों को निकाल कर रक्तावर्त (Blood Circulation) को अधिक अच्छा करता है। उसको 'घर का डाक्टर भी कहते हैं। यदि आप बिजली के यंत्र को मोल न ले सकें तो आप तुर्की हम्माम (स्नानागार) के समान अधिक उष्ण की हुई वायु में पसीना ले सकते हैं।

चतुर्थ-भोजन

आपका स्वास्थ्य अधिकतर आपके किये हुए भोजन और पिये हुए जल पर निर्भर होता है। भोजन सम्बन्धी बुद्धि का अस्सी प्रतिशतक सम्बन्ध स्वास्थ्य से है। इस विषय में तीन प्रश्न हैं—किस प्रकार भोजन करना और जल पीना चाहिये? कितना करना चाहिये? क्या करना चाहिये? और कैसे करना चाहिये? भोजन बहुत धीरे धीरे और प्रसन्न चित्त से करना चाहिये। अपने भोजन को अच्छी तरह चबाओ। ऊदर दांतों का काम नहीं कर सकता। ठोस भोजन और यहां तक कि दूध को भी निगलने से पूर्व राल में मिला लेना चाहिये। आपको होरेस फ्लेचर (Horace Fletcher), के उदाहरण का अनुकरण करने की

आवश्यकता नहीं है, तौ भी आप यथाशक्ति अधिक से अधिक चबाओ। इस उद्देश्य के लिये आपको न चबाए जाने योग्य मका के आटे जैसे स्टार्च वाले भोजन का उपयोग नहीं करना चाहिये। सामान्य गस्सों से कुछ छोटे गस्से लेने चाहिएं। सर ऐंड्रू क्लार्क (Sir Andrew Clark) का कहना है "पूरे मुंह में बत्तीस दांत होते हैं, अतएव पूरे मुंह में आने योग्य पदार्थ को बत्तीस बार कुतरना चाहिये, यदि कोई दांत टूट गया हो तो कुतरने की संख्या उसके अनुपात के अनुसार ही बढ़ा देनी चाहिये।" भूख लगने पर ही खाओ निश्चित समय पर मत खाओ। भोजन के समय खूब प्रसन्न रहो। हर्बर्ट स्पेंसर ने अनुभव किया कि भोजन यदि अधिक प्रसन्न करने वाले साथियों में किया जावे तो शीघ्र पच जाता है। डाक्टर डब्ल्यु० बी० लेनन (W. B. Lannon) बिल्लियों के सम्बन्ध में प्रयोगों के विषय में लिखते हैं, "जब कभी बिल्ली चिन्ता, क्रोध अथवा कष्ट के चिन्ह प्रगट करती है तो आमाशय के कार्य बंद हो जाते हैं।" डाक्टर एल० एच० गुलिक (L. H. Gulick) का कहना है, "चिन्ता, शीघ्रता, मस्तिष्क की अस्थिरता, जी का बैठे जाना सभी भोजन नालिका (Alimentary Canal) के कार्य को रोक देते हैं अथवा उसमें देरी लगाते हैं।" स्वास्थ्य के लिये भोजन का सादा होना भी आवश्यक है। अनेक प्रकार के भोजनों से पाचन क्रिया बिगड़ जाती है। बहुत प्रकार के भोजन मत करो और बहुमूल्य तथा झंझट के व्यञ्जन न बनवाओ।

डाक्टर ए-हेग (Dr. A. Haig) का कहना है एक समय में अधिक से अधिक दो या तीन प्रकार का साधारण भोजन स्वास्थ्य का दूसरा रहस्य है।"

आपको कितना खाना चाहिये? अत्यन्त कम। फारसी कवि सादी ने लिखा है "इतना अधिक मत खाओ कि भोजन लौट कर फिर तुम्हारे मुंह में आने लगे; और न इतना कम ही खाओ कि आत्मा शरीर से बाहिर निकल आवे।" यदि हम अत्यन्त निर्धन श्रेणियों को देखें तो हमको पता चलेगा कि प्राय: मनुष्य तीस वर्ष की अवस्था के पश्चात् भोजन अधिक किया करते हैं। कुछ देशों में दिन भर में भारी कलेऊ (Breakfast) उष्ण दोपहर का भोजन (Lunch), उच्चकोटि की चाय, पर्याप्त सायंकालीन भोजन लिया जाता है। कुछ लोग इनमें ग्यारह बजे कहवा, छै बजे भूख बढ़ाने वाले पेय पदार्थ (Coktails), और अधिक रात में षड्रस व्यञ्जन भी सम्मिलित करते हैं। इस प्रकार का भोजन प्राचीन काल की क़ब्रों का एक सब से छोटा मार्ग है। वेनिस के लुईगी कारनैरो (Luigi Cornaro) की सच्ची कहानी को स्मरण रखो, जिसने अपने खोये हुये स्वास्थ्य को भोजन की मात्रा कम करके फिर प्राप्त कर लिया था। वह सन् १५६५ में १०४ वर्ष (कुछ की सम्मति में ९८ वर्ष) की आयु में मरा था। उसने लिखा है "पैंतीस से चालीसवें वर्ष तक के अन्दर अपने को इस प्रकार दु:खी परिस्थिति में पाकर मैंने पथ्य से रहने का निश्चय किया।......

गैलेन (Galen), जो इतना बड़ा चिकित्सक था, उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करता था और वह उसी क्रम को उत्तम स्वास्थ्य के लिये आवश्यक समझता था। प्राचीन काल के प्लैटो, सिसेरो, आइसोक्रट्स् (Isocrates) तथा अन्य महान् व्यक्तियों ने भी यही किया था। हमारे समय में पोप पॉल फरनीस (Pope Paul Farnese) और कारडिनल बेम्बो (Cardinal Bembo) ने भी यही किया था। उसी प्रकार हमारे दो मैजिस्ट्रेट लैण्डो (Lando) और डोनैटो (Donato) ने भी किया था और इसी कारण यह सब दीर्घजीवी हुए। ...... अब छियासी वर्ष की अवस्था में भी मैं अपने को स्वस्थ और बलवान् पाता हूं।...... रोटी, मांस, अंडे और शोरवे के विषय में तो क्या पूछना, मेरा सारा भोजन छै छटांक होता था, न अधिक न कम; शराब मैं सात छटांक पीता था। ......इस प्रकार एक वर्ष तक संयमी और नियमित जीवन व्यतीत करने से मेरे अन्दर से वह दोष निकल गये, जो मुझ में दृढ़ता से जड़ जमाये हुये थे।"

सबसे सुगम नियम यह है कि भोजन पेट भर कर नहीं करना चाहिये। आपको सदा ही आधी भूख छोड़ कर उठ आना चाहिये। जैसा कि एल. कारनैरो ने कहा है, "भोजन करने से बचा हुआ भोजन खाए हुए की अपेक्षा हमारा अधिक हित करता है।" यह सिद्धांत आपका तोलने के यन्त्रों, प्रोटीन की तालिकाओं और तापमान के यन्त्रों से भी अधिक हित करेगा।

आपको क्या खाना पीना चाहिये ? यह प्रश्न वास्तव में ही

बड़ा महत्त्वपूर्ण है। अनेक रोगों का कारण पश्य भोजन का अभाव है। और दूसरे प्रकार के रोग अपश्य भोजन को करने से होते हैं। हम कुछ पश्य वस्तुओं को छोड़ कर और कुछ अपश्य वस्तुओं को ग्रहण करके पाप करते हैं। और इसी कारण हमको दुःख, कष्ट और अकालमृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है। डाक्टर आर० सी० मैकफ़िक का कहना है, "मनुष्य के शरीर का आधार भोजन है। प्रत्येक अस्थि, प्रत्येक पेशी भोजन की ही बनी होती है।……अतएव भोजन के प्रश्न से अधिक महत्त्वपूर्ण कोई प्रश्न नहीं हो सकता।"

भिन्न २ भोजन पदार्थों को चार विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

उग्र अपश्य

१. कुछ वस्तुओं को शरीर और मस्तिष्क के लिये पूर्णतया हेय और भयंकर समझना चाहिये।इनसे विष के समान बचना चाहिये। वास्तव में वह हैं भी विष ही। उनसे आपको प्रत्येक समय बचना चाहिये। किसी सभ्य देश को उनको नहीं बनाना चाहिये। यदि आवश्यक हो, तो केवल औषधि सम्बन्धी कार्यों के लिये उनको बनाया जा सकता है। अफीम, कोकीन, चंडू, भंग तथा अन्य नशीली औषधियां आसव (ब्रांडी, व्हिस्की, रम), और ऐबसिंथ (Absinthe) नामक मदिरा आदि इसी प्रकार की हानिप्रद वस्तुएं हैं। जिन व्यक्तियों को इस प्रकार के नशों का अभ्यास पड़ जाता है, उनके शरीर और मस्तिष्क निर्बल

हो कर वह अकाल में ही कराल काल के ग्रास बन जाते हैं। हम सबको करुणा तथा घृणापूर्ण क्रोध के साथ उच्च स्वर से चिल्लाना चाहिये कि "सभी नशों का पतन हो!"

सामान्य अपथ्य

२. कुछ ऐसे हानिकर पदार्थ हैं, जिनका सेवन बुद्धिमान् संयमी पुरुषों को नहीं करना चाहिये। सबसे अच्छा तो यही है कि उनसे पूर्णतया बचा जावे। वह हानिकारक और दुःख दायी होते हैं, साथ ही उनमें धन भी अधिक लगता है। किन्तु वह उपरोक्त प्रकार की नशीली वस्तुओं जैसी हानि नहीं करते। यदि आपको उन्हें दैनिक सेवन करने का अभ्यास पड़ गया हो तो आपको अपने को इनके बन्धन से छुड़ा लेना चाहिये। इसके पश्चात् यदि आप चाहें तो उनका स्वतन्त्र रूप से कभी २ अत्यंत अल्प मात्रा में सेवन कर सकते हैं। आपको मनुष्यजाति के ऐसे फुसलाने वाले मित्र रूपी शत्रु का दास नहीं बनना चाहिये। केवल स्वतन्त्र व्यक्ति ही, जो अपनी दैनिक दिनचर्या उनके बिना सुगमता पूर्वक व्यतीत कर सकता है, वास्तव में उपयुक्त अवसर पर उनका आनन्द ले सकता है। इस प्रकार का आनन्द पूर्णतया स्वास्थ्यकर नहीं होता किन्तु सदा ही स्वास्थ्य का दास बने रहना भी आपका सबसे बड़ा कर्तव्य नहीं है। यदि आप इस प्रकार के हानिकर किन्तु स्वीकृति योग्य पदार्थों का सेवन करना चाहते हैं, तो पूर्णतया स्वतन्त्र हो कर ही उनका सेवन करना चाहिये, न कि अपनी प्रकृति का दास बन कर। उनका

थोड़े २ समय के लिये परित्याग करके अपनी स्वतन्त्रता की परीक्षा करते रहो। इस प्रकार के खाद्य और पेय पदार्थ निम्नलिखित हैं।

(१) हल्के खिंचे हुये पेय पदार्थ, जैसे अंगूरी शराब, सेव की मदिरा, जौ की मदिरा और शहद की मदिरा। (२) चाय (३) कहवा, (४) नारियल का पानी, (५) पान, (६) तम्बाकू, (७) मांस और मछली, (८) मसाले और चटनी, (९) पकवान और मिठाइयां।

इस बात में लेशमात्र भी संदेह करने की गुंजायश नहीं है कि सुरासार, *थीन (Theine), टैनिन (२) (Tanin) कैफीन (Caffeine) (३), थिओब्रोमाइन (४) (Thiobromine), नीकोटीन (५) (Nicotine) और प्यूरिन (Purin) को कम से कम परिणाम में लेने पर भी बड़ी हानि होती है। सिगरेट के धुएं में नीकोटीन, पाइरीडाइन (Pyridine), पाइको-

---

(१) थीन चाय के अन्दर पाया जाता है, इसी के कारण चाय अपना प्रभाव दिखलाती है।

(२) चाय का एक रासायनिक पदार्थ।

(३) कैफीन एक हल्की वस्तु होती है, जो चाय और कहवा में पाई जाती है।

(४) चाकीलेट नट में पाया जाने वाला रसायनिक पदा ं।

(५) नीकोटीन तम्बाकू में पाई जाने वाला तरल वस्तु होता है। यह भयंकर विष है।

लाइन (Picoline), कोलीडाईन (Collidine), एक्रोलीन (Acrolin), फरफुरोल (Furfurol) आदि होते हैं। तम्बाकू पीना भी समाज-विरोधी अभ्यास है। यह घरों और होटलों की वायु को विषाक्त कर देता है। इसके अन्दर कार्ल-मार्क्स का वह गुण है, जिससे संसार पीने वालों और न पीने वालों दो विरोधी दलों में विभक्त हो जाता है। बर्नर मैकफैडेन (Bernar Macfadden) का कहना है— 'तम्बाकू और विशेष कर सिगरेट जावोजों (Protoplasm) से विषाक्त कर देता है। इसके अतिरिक्त यह मस्तिष्क, हृदय, रक्तकोष (Blood Vessels) और गुर्दों में अवनति करने वाली गड़बड़ी उत्पन्न करता है। सिगरेट या तम्बाकू पीने से कार्य क्षमता कम हो जाती है, विद्यार्थियों को तो इससे विशेष रूप से हानि पहुंचती है। यह हानिप्रद, जीवन को कम करने वाली मानव जाति का अहित करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करती।" प्रसिद्ध अविष्कारक टी. ए. एडीसन ने लिखा है, "यह अवनति अन्य नशों के समान न होकर स्थाई और वश में न आने योग्य होती है। मैं सिगरेट पीने वाले किसी व्यक्ति को अपने यहां नौकर नहीं रखता।" डाक्टर टी० बी० स्काटस (T. B. Scotts) कहते हैं, "तम्बाकू पीने के पश्चात थकान, निर्बलता और कर्त्तव्य बुद्धि का प्रायः अभाव देखने में आता है। इस विषय में लोग कम करने का कुछ भी उद्योग नहीं करते, वास्तव में इसका सेवन कम करना और उस पर स्थिर रहना कठिन

भी है।" डाक्टर जे० एच० केलोग (Dr. G. Kelogg) को सम्मति में नीकोटीन हृदय के सबसे बड़े विषों में से एक है।" तम्बाकू से जननेन्द्रिय सम्बन्धी ग्रन्थियों की अवनति भी होती है। जो स्त्रियां अपने शरीर को नीकोटीन से विषाक्त कर लेती हैं वह जाति की कभी पूर्ण न होने योग्य क्षति करती हैं। डाक्टर लिचटी (D. Lichty) का कहना है कि "नीकोटीन सेवन की हुई और उससे विषाक्त हुई पेशियां शुद्ध गर्भ धारण नहीं कर सकतीं।"

मद्य (Alchol) भी स्नायुउत्तेजक है और उसका भी त्याग करना चाहिये। सर लैन्डर ब्रुनटन (Sir Lander Brunton) का कहना है कि "सभी प्रकार के सुरासारों को यद्यपि आरंभ में तो कार्यक्षमता को बल पहुंचाते हुए देखा जाता है, किन्तु उनके प्रभाव से समकोष फैल जाते हैं, जिससे रक्त-चाप (Blood Pressure) कम होकर नाड़ी सम्बन्धी पेशियों की गति मन्द पड़ जाती है।" अपटन सिनक्लेयर (Upton Suiclair) का सिद्धन्त है कि "मद्य मनुष्य जाति के पैरों को बांधने वाला प्रकृति का सबसे बड़ा जाल है।" किन्तु इस बात को स्वीकार न करने पर भी अंगूरी अथवा जौ की शराब को प्रतिदिन पीने के अभ्यास से शरीर अत्यन्त निर्बल हो जाता है। यूरोप में उत्सवों के अवसर पर सामाजिक प्रसन्नता के लिये हल्की अंगूरी शराब पीने की अवस्था है, किन्तु वहां इसका पीना अनिवार्य नहीं है। चाय और कहवा मास्तिष्क और नाड़ी केन्द्रों

को निर्बल करते हैं, यह पाचनशक्ति पर भी अपना विरोधी प्रभाव दिखलाते हैं। यदि उनका सेवन कभी २ भी किया जावे तो अत्यंत निर्बलता आ जाती है। चीन की चाय कम हानि प्रद होती है, और नीबू की एक फांक तो सदा ही लाभदायक होती है। तेज़ चाय और कहवा आज सभी श्रेणियों के लाखों स्त्री पुरुषों के स्वास्थ्य को हानि पहुंचा रहे हैं। कुछ लोग तो प्रातः काल और दोपहर बाद चाय और कहवा पीने के अत्यंत अभ्यस्त हो जाते हैं, वह उनके बिना न जी सकते हैं और न काम ही कर सकते हैं। इस प्रकार के भयानक अभ्यास को तुरंत छोड़ देना चाहिये। इसके अतिरिक्त आपको तेज़ चाय और कहवे के विरुद्ध बड़े २ उदाहरण देकर आन्दोलन करना चाहिये, क्योंकि हमारे इतने अधिक रोग और कष्टों का कारण बहुत कुछ यही है। तेज़ चाय और कहवा, जिनको आज कल दिन में कई २ बार पिया जाता है, हमारे ऐसे धूर्त शत्रु हैं कि वह मनुष्य जाति की जीवन शक्ति को कम कर रहे हैं। अधिक कहवा पीने से ही शीलर (Schiller) का पैंतालीस वर्ष की आंयु में देहान्त हुआ था। एस० नीप (S. Kneipp) का कहना है, "कहवा शरीर में बड़ी २ भयंकर गड़बड़ियों को उत्पन्न करता है ! इससे सम्पूर्ण नाड़ी चक्र खटक कर खण्ड २ हो सकता है। यह शोक, चिन्ता और निर्बलता आदि को उत्पन्न करता है। जब स्त्रियां इसको पीती हैं तो इसको मनुष्य घातक कहना ठीक ही है, चाय और चाकोलेट (Chocolate) के विषय में भी यही बात ठीक है।"

मांस और मछली की गणना भी हानिकारक भोजन में की जाती है। यदि इनका पूर्ण परित्याग न किया जा सके तो इनको यथासंभव कम से काम लेना चाहिये। वह अम्लता (Acidosis) विषाक्तता को (Toxaemia) उत्पन्न करते तथा उदर और गुर्दों को भारी करते हैं। डाक्टर आर० एल० ग्राहम (D. R. L. Graham) का कहना है, "अधिक शारीरिक श्रम करने वाले ही अधिक मांस खा सकते हैं। दूसरों को इसका बहुत कम सेवन करना चाहिये, उनको लोबिया और अखरोट भी कम खाने चाहिये।" पकवान और मिठाई यद्यपि स्वादिष्ट होते हैं, किन्तु यह अत्यंत भयंकर हैं, यदि इनका सेवन करना ही पड़े तो मसालों और अन्य तेज़ वस्तुओं को कम से कम डलवाना चाहिये। डाक्टर एल० एच० गुलिक (Dr. L. H. Gullick) का कहना है, "नशे अथवा उत्तैजक पदार्थ पर भरोसा करना एक धोखेबाज़ साथी पर भरोसा करने के समान है। उत्तेजक पदार्थ तो बहुत कुछ कोड़ा मारने वाले के जैसे होते हैं। यह केवल मनुष्य की शक्ति को अधिक व्यय होने में ही सहयता देते हैं। जिस प्रकार कोड़ा मनुष्य में शक्ति नहीं भरता, उसी प्रकार यह वस्तुएं भी मनुष्य में शक्ति उत्पन्न नहीं करती।

पश्य

३. कुछ खाद्य पदार्थ पश्य और आवश्यक होते हैं, किन्तु उनको भी अत्यन्त अल्प मात्रा में ही लेना चाहिये। अंडे (विशेषकर उसका पीला भाग, रोटी, जुवार, बाजरा, स्वाभाविक

चावल, उबले हुये गेहूं, जई के आटे की लप्सी, बादाम, अख़रोट आदि कड़े छिल्के वाले सब फल, पनीर, मक्खन, क्रीम (कच्चे दूध पर जमी हुई मलाई), (Peanut Oil), जापानी चटनी, जैतून का तेल, ख़मीर, अगर-अगर (Agar-Agar,) शाहबलूत के फल की मैदा, मटर, लोबिया, दालें, शहद, कच्ची खांड और और मैप्ल (Maple) नाम के वृक्ष की शक्कर इसी प्रकार की वस्तुएं हैं।

संसार में बहुत अधिक बिकने वाली दो सफेद वस्तुओं को अवश्य छोड़ देना चाहिये। वह सफेद रोटी और सफेद शक्कर हैं। जीवन शक्ति को कम करने वाले यह दोनों झूंठे भोजन कोष्टबद्धता, वृद्धिनिरोध (Malnutrition), दांतों का गिरना, गुर्दे के रोग और असमय वृद्धावस्था के कारण होते हैं। डबल्यू० ओ० ऐटवार (W. O. Atwater) ने विश्लेषण कर के पता लगाया है कि पूरे आटे में सफेद मैदा की अपेक्षा दुगने खाद्य द्रव्य होते हैं। ब्राडबेंट (Broadbent) तथा अन्य विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि यह खाद्य द्रव्य अपनी पौष्टिकता तथा प्रोटीन के रसायनिक परिवर्तन पर तटस्था के कारण अत्यन्त उपयोगी होते हैं।

पश्य

४—कुछ वस्तुएं इतनी उत्तम पश्य होती हैं कि उनको तब तक अधिक परिणाम में लेना चाहिये, जब तक आप अयोग्य अधिकता के दोषी न बनो। इस प्रकार की उपयोगी

खाद्य सामग्री दूध, मक्खन निकला हुआ दूध, फटे दूध का पानी, मट्ठा, सभी फल (विशेषकर अंगूर, मुनक्का, अंजीर, आलू बुखारे और सन्तरे), सभी हरे शाक, सभी पृथ्वी के अन्दर उत्पन्न होने वाले कन्द रूप शाक (कच्चे, उबले हुये और पकाये हुये), अलफा ल्फा नाम का अनाज (Alfalfa) और मदिरा बनाने के लिये भिगो कर तय्यार किये हुये जौ अथवा अन्य अनाज हैं।

इनमें फल ऐसा तुरंत बना हुआ ताज़ा और स्वादिष्ट भोजन है, जो सूर्य नगर के रसोई घर में पकाया जाता है। फल यथा संभव डाल पर पक्के हुये ही लेने चाहिएं, सूखे हुए मीठे फलों को मंदी आंच पर पकाने की आवश्यकता नहीं है, उनको केवल पानी में भिगो लेना चाहिये। अंजीर ऐथेन्स के यूनानी दार्शनिकों का प्यारा फल था। कुछ कच्चे पत्ते वाले हरे शाक उदाहरणार्थ— पालक, बथुआ, लोटवुटिया, गोभी, चौलाई आदि को प्रति दिन खाना चाहिये। खेतों पर सूवरों को चराते समय इस महत्त्वपूर्ण नियम का विशेष ध्यान रखा जाता है, किन्तु बच्चों के पालन पोषण में घर पर इस नियम की प्राय: उपेक्षा की जाती है। सज्जी जैसे क्षारों को भोजन में सम्मिलित करने के लिये पतले बने हुए शाक, रसों, अलफलफा नाम के आनाज (Alfalfa) और अंगूर के रस का सेवन करना चाहिये।

एक हंसोड़ ने कितनी अच्छी कहावत कही है, "अधिक शाक खाने से अवस्था अठारह वर्ष की ही बनी रहती है।"

(इस बात में सूक्ति पना और तर्क दोनों ही हैं,) 'शाकों को उबालने से वह बिगड़ जाते हैं ।' 'चौदह गाजर का शाग खाकर अपने को सोने के बराबर तोललो।' शाकों के तैल में सुन्दरता के एक से एक अधिक चित्र बनते हैं ।'

कुछ विशेषज्ञ दूध की निन्दा करते हैं, किन्तु हमारी सम्मति में वह भोजन का मुख्य भाग होना चाहिये । यदि मांस नहीं खाते तो दूध आप को अवश्य पीना चाहिये । बहुत सा शुद्ध दूध पीकर अपने शरीर को रोग के विरुद्ध किले के समान प्रबल बना लो । डाक्टर० डबल्यू० एल० मैकेंजो एम० ए० एम० डी० कहते हैं, "मांस की चाहे जो परिस्थिति रहे दूध का स्थान उस से कोई नहीं ले सकता । क्यों कि बच्चों को तो दूध देना ही पड़ेगा, बड़ों के लिये भी यह व्यवहारिक रूप में अत्यन्त आवश्यक है। कुछ समय के पश्चात् तो उसकी आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जावेगी । संसार के प्रत्येक देश में, दूध का भोजन के सम्बन्ध में अधिक महत्व समझा जाने लगा है ।" कुछ व्यक्तियों को गा के दूध की अपेक्षा बकरी का दूध अधिक माफिक आता है, यदि आपका पेट ताजे दूध को सहन न कर सके तो अच्छे सूखे दूध का सेवन कर उसकी परीक्षा कर देखो। आन्तों की सडायंद को रोकने के लिये मक्खन निकला हुआ दूध विशेष रूप से उपयोगी होता है । प्रोफेसर ए० मेकनीकाफ (A. Metchnikoff) का कहना है "दूध का तेजाब आन्तों की सड़ायंद को कम करता है । ......आन्तों के अंदर भोजन के सड़ने में

दुग्धाम्ल (Lactic Acid) का सेवन करने से अनेक लाभ होते हुए देखे गये हैं ।"

अतएव एक उपयुक्त भोजन तालिका में बीच के वर्ग १ से ४ तक के सब पदार्थों में से थोड़ा २ और वर्ग ५-८ में से अधिक परिमाण में रखना चाहिये ।

(१) कड़े छिल्के वाली मेवाएं, फली, पनीर, अंडे (यदि इच्छा हो तो कभी २ मांस और मछली)

(२) अन्न, उबले और पके हुए ।

(३) मक्खन, बादाम का मक्खन (Nut Butters), तेल ।

(४) लाल शक्कर, शहद, मैल शक्कर, गुड़, मदिरा बनाने के लिये भिगो कर तैयार किये हुए जौ तथा अन्य अनाज ।

(५) ताजे और सूखे फल ।

(६) पत्तों वाले हरे शाक (कच्चे)

(७) कन्द शाक (गाजर, मूली, शलजम, आलू आदि) कच्चे और पके हुए (अथवा उबले हुए); पतले बने हुये शाक भी ।

(८) दूध और मक्खन निकला हुआ दूध । प्रायः कोष्ठ बद्धता का शिकार बने रहने वालों को इसमें थोड़ा खमीर और अगर अगर (Agar-Agar) और मिला लेना चाहिये ।

प्रथम वर्ग में से अधिक प्रोटीन वाले भोजन नहीं लेने चाहियें । प्रोटीन वाले भोजन के अधिक लेने से शरीर पर आवश्यकता से अधिक बोझ पड़ जाता है और उससे गठिया, वात रोग तथा अन्य अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं । प्रोफेसर

आर० एच० चिटेंडन (R. H. Chittenden) ने छै माह के अन्दर अपने प्रयोग तेरह व्यक्तियों पर किये। उन्होंने लिखा है, "प्रयोगों की संख्या से इस बात के संतोषजनक प्रमाण मिलते हैं कि जहां तक शरीर के वज़न और नत्रजन (Nitrogen) की सरतुल्यता का सम्बन्ध है, शरीर की आवश्यकता औसत भोजन से भी कम प्रोटीन वाले पदार्थों से पूरी हो जाती है। इस विषय में मनुष्यजाति के स्वभाव से कुछ कम भोजन लेने से भी काम चल जाता है।"

स्टार्च वाले अन्न, स्निग्ध पदार्थ और शक्कर (उपरोक्त संख्या २, ३, और ४) को अधिक परिमाण में न लेने के लिये सदा सावधान रहो। अत्यन्त अधिक स्टार्च और शक्कर बादी जन्य पुटावा और अन्य अनेक सक्रामक रोगों को उत्पन्न करते हैं। जैसा कि अपटोन सिनक्लेअर (Upton Sinclair) ने कहा है, "जहां तक मैंने अनुभव किया है स्टार्च का अधिक सेवन मनुष्य की भोजन सम्बन्धी गलतियों में सबसे बड़ी गलती है। यह केवल गले और नाक के रोगों का ही सामान्य कारण नहीं, वरन कोष्ठबद्धता, अतीसार, और रक्तकृच्छ्रता (Anaemia) का भ कारण है।

सबसे अच्छा तो यह है कि सप्ताह में एक बार केवल ताजे फल ही खाए जावें। इस प्रकार शरीर को आवश्यक विश्राम मिल जाता है और मलों के निकलने में सुबिधा हो जाती है। पेट को भी एक दिन का विश्राम मिलना चाहिये। कुछ धर्म वर्ष

के किसी विशेष भाग में कई सप्ताह तक दैनिक उपवास का विधान करते हैं, किन्तु सप्ताह में एक बार फलों द्वारा उपवास करना उससे भी अधिक लाभदायक है। यदि आपको गठिया जैसा संक्रामक रोग हो जावे तो आप किसी सुयोग्य चिकित्सक की देख भाल में कई दिन तक उपवास करके उसको अच्छा कर सकते हैं। किन्तु यदि आप प्रतिदिन परमिति भोजन और सप्ताह में एक बार फलों द्वारा उपवास करोगे तो आप में इतना विकार कभी एकत्रित न होगा कि आपको इतने अधिक समय तक उपवास करने की आवश्यकता पड़े। इस बात को स्मरण रखो कि शरीर की समतुल्यता को बनाये रखने के लिये किसी दावत के पश्चात् उपवास करना आवश्यक है। डाक्टर जे० ओल्डफ़ील्ड (Dr. J. Oldfield) का कहना है; "थोड़े समय के लिये भोजन न करने से कभी भी हानि नहीं होती, वरन् प्रायः सदा लाभ ही होता है। एक छोटे से उपवास से मल निकल जाते हैं। रोग दूर हो जाते हैं और शरीर के प्रत्येक सेल (Cell) को विश्राम मिल जाता है। इस प्रकार के छोटे से उपवास को किसी अवस्था में कोई भी कर सकता है।"

इसके अतिरिक्त आप जो कुछ भी खाओ या पियो, सदा कम परिमाण में और वह भी खूब चबा कर। मिताहार और अधिक चबाना भोजन के दो सर्व सामान्य और अनिवार्य नियम हैं। मिल्टन के बुद्धिमत्तापूर्ण उपदेश को स्मरण रखो।

"यदि तू भली प्रकार

आर० एच० चिटेंडन (R. H. Chittenden) ने छै माह के अन्दर अपने प्रयोग तेरह व्यक्तियों पर किये। उन्होंने लिखा है, “प्रयोगों की संख्या से इस बात के संतोषजनक प्रमाण मिलते हैं कि जहां तक शरीर के वज़न और नत्रजन (Nitrogen) की सरतुल्यता का सम्बन्ध है, शरीर की आवश्यकता औसत भोजन से भी कम प्रोटीन वाले पदार्थों से पूरी हो जाती है। इस विषय में मनुष्यजाति के स्वभाव से कुछ कम भोजन लेने से भी काम चल जाता है।”

स्टार्चवाले अन्न, स्निग्ध पदार्थ और शक्कर (उपरोक्त संख्या २, ३, और ४) को अधिक परिमाण में न लेने के लिये सदा सावधान रहो। अत्यन्त अधिक स्टार्च और शक्कर बादी जन्य पुटावा और अन्य अनेक सक्रामक रोगों को उत्पन्न करते हैं। जैसा कि अपटोन सिनक्लेअर (Upton Sinclair) ने कहा है, “जहां तक मैंने अनुभव किया है स्टार्च का अधिक सेवन मनुष्य की भोजन सम्बन्धी गलतियों में सबसे बड़ी गलती है। यह केवल गले और नाक के रोगों का ही सामान्य कारण नहीं, वरन कोष्ठबद्धता, अतीसार, और रक्तकृच्छ्रता (Anaemia) का भ कारण है।

सबसे अच्छा तो यह है कि सप्ताह में एक बार केवल ताजे फल ही खाए जावें। इस प्रकार शरीर को आवश्यक विश्राम मिल जाता है और मलों के निकलने में सुविधा हो जाती है। पेट को भी एक दिन का विश्राम मिलना चाहिये। कुछ धर्म वर्ष

के किसी विशेष भाग में कई सप्ताह तक दैनिक उपवास का विधान करते हैं, किन्तु सप्ताह में एक बार फलों द्वारा उपवास करना उससे भी अधिक लाभदायक है। यदि आपको गठिया जैसा संक्रामक रोग हो जावे तो आप किसी सुयोग्य चिकित्सक की देख भाल में कई दिन तक उपवास करके उसको अच्छा कर सकते हैं। किन्तु यदि आप प्रतिदिन परमिति भोजन और सप्ताह में एक बार फलों द्वारा उपवास करोगे तो आप में इतना विकार कभी एकत्रित न होगा कि आपको इतने अधिक समय तक उपवास करने की आवश्यकता पड़े। इस बात को स्मरण रखो कि शरीर की समतुल्यता को बनाये रखने के लिये किसी दावत के पश्चात् उपवास करना आवश्यक है। डाक्टर जे० ओल्डफ़ील्ड (Dr. J. Oldfield) का कहना है; "थोड़े समय के लिये भोजन न करने से कभी भी हानि नहीं होती, वरन् प्रायः सदा लाभ ही होता है। एक छोटे से उपवास से मल निकल जाते हैं। रोग दूर हो जाते हैं और शरीर के प्रत्येक सेल (Cell) को विश्राम मिल जाता है। इस प्रकार के छोटे से उपवास को किसी अवस्था में कोई भी कर सकता है।"

इसके अतिरिक्त आप जो कुछ भी खाओ या पियो, सदा कम परिमाण में और वह भी खूब चबा कर। मिताहार और अधिक चबाना भोजन के दो सर्व सामान्य और अनिवार्य नियम हैं। मिल्टन के बुद्धिमत्तापूर्ण उपदेश को स्मरण रखो।

"यदि तू भली प्रकार

'अत्यधिक न खाने के' नियम का
अपने प्रत्येक भोजन पान में संयम से पालन करेगा, और
उससे योग्य शरीर पुष्टि ही चाहेगा, न कि पेटुपन का आनन्द,
तो तेरे ऊपर से अनेक वर्ष आते और जाते रहेंगे।
तू तब तक जीता रहेगा, जब तक कि पके फल के समान
सुगमता से सब कार्य करके अपनी माता की गोद में न
गिर पड़े।
तू कठिनता से नहीं मरेगा, वरन मृत्यु का समय आने पर
ही मरेगा।"

पंचम व्यायामा

प्रति दिन घर में ही यन्त्रों अथवा बिना यन्त्र के भी व्यायाम करना आवश्यक है। भिन्न २ प्रकार के व्यायामों को कुछ थोड़े २ मिनट देना भी पर्याप्त है। सैन फ्रांसिस्को के सैनफोर्ड बैनेट ने (Sanford Benett) सिद्ध किया है कि नित्य किया हुआ पेशियों का व्यायाम स्वास्थ्य को उत्तम बनाने और जीवन को दीर्घ करने में आश्चर्यजनक रूप से सहायता करता है। उसकी ७२ वर्ष की आयु में उसके डाक्टर ने उसकी स्वास्थ्य सम्बन्धी रिपोर्ट में लिखा कि "उसकी आकृति मध्य अवस्था के एक असाधारण रूप से उत्तम स्वास्थ्य वाले व्यक्ति के समान थी। उसकी चाल ढाल से उसका शरीर अत्यन्त लचीला सिद्ध होता है। उसकी पेशियों की सम्पूरण रचना प्रसिद्ध रूप से पूर्ण विकसित है।"

सदा कमर को उठा कर बैठो और सीधे ही टहला करो। मूलर (Muller) की प्रणाली और कुश्ती का अभ्यास करने से अच्छा लाभ हो सकता है। शरीर को बिना ज़ोर लगाए ढीला छोड़ कर खूब फैलाने से अच्छा लाभ होता है। इस विषय में एक फैलाने वाले यन्त्र (Pandiculator) का भी उपयोग किया जा सकता है।

डाक्टर डी० ए० सार्जेंट (D. A. Sargent) का कहना है, "पेशियों को पूर्व अवस्था पर लाने और उनको सुधारने का मुख्य साधन व्यायाम है। पसीना लाने की क्रिया और रक्तावर्त (Blood Circulation) पर उसके प्रभाव के द्वारा रक्त में शीघ्रता पूर्वक नयी सामग्री अथवा तरल भोजन जाने लगता है और श्वास क्रिया द्वारा ओषजन (Oxygen) के शरीर के तत्त्वों में मिलने के परिणाम स्वरूप व्यर्थ पदार्थ उसी द्वार से शीघ्रता पूर्वक निकल जाया करता है। इस प्रकार यह सुगमता पूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि योग्य व्यायम सब पेशियों को कार्य में ठीक लगा कर ही उनकी दशा को अधिक उन्नत नहीं बनाता, वरन् प्राण स्थान सम्बन्धी अंगों पर अपने पौष्टिक प्रभाव के द्वारा स्वास्थ्य और शरीर के प्रत्येक अंग में उन्नति होती है।...... इस प्रकार के आवश्यक व्यायामों को करने का सब से उत्तम साधन सौन्दर्य सम्बन्धी साधारण व्यायाम, अंगों का स्वतन्त्रता पूर्वक संचालन और डम्बेल (Dumbells), छड़ी और मुद्गर द्वारा हल्के व्यायाम हैं।" अतएव आपको पेशियों का व्यायाम

दैनिक करना चाहिये, अन्यथा आपके शरीर मस्तिष्क दोनों में ही अवनति होगी। प्रोफेसर (G. Stanley Hall) ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता पूर्वक कहा है। "ढीली छोड़ी हुई पेशी इच्छा करने और कार्य करने के बीच की दरार होती है।" मालिश और तैल मर्दन से भी बड़ा लाभ होता है। प्रातःकाल के समय स्नान करने के पश्चात् सारे बदन को एक खुरदरे तौलिया अथवा दस्तानों से रगड़ना चाहिये। सिर पर स्वस्थ बाल उत्पन्न करने के लिये अंगुलियों अथवा ब्रुश से तैल मर्दन करना चाहिये। दांतों में पायोरिया (Pyorrhoea) न होने देने के लिये मसूड़ों को खूब मलना चाहिये। उदर और आन्तों पर तेल मलने से पाचन शक्ति और अंत्रगति (Peristalsis) में उन्नति होती है। संभवतः चर्म पर * प्राचीन काल के यूनानियों और रोमनों के समान तेल मर्दन करना बड़ा लाभप्रद है।

षष्टम् खेल कूद

घर से बाहिर खेलना कूदना केवल आनन्द के लिये ही नहीं, कर्तव्य समझ कर भी करना चाहिये। डाक्टर टी, बी, स्काट (T. B. Scott) की सम्मति के अनुसार अनेक लोगों के लिये "सामान्य चाल से टहलना" सबसे उत्तम व्यायाम है। इसमें जूतों के चमड़े के अतिरिक्त और कुछ लागत नहीं लगती। आप

---

* प्राचीन भारतीय आर्य भी तैल मर्दन को बहुत पसंद करते थे। प्राचीन काल के राजाओं की दिनचर्या में स्थान २ पर तैल मर्दन का वर्णन पाया जाता है।

को प्रसिद्ध दार्शनिक कैन्ट (Kant) के समान नित्य ही दैनिक वायु सेवन करना चाहिये। नगर में भी आपको यथाशक्ति पैदल चलना ही सीखना चाहिये। यदि आपको अत्यन्त शीघ्रता न हो तो ट्राम और मोटर टैक्सियों में ही बैठ कर उनके दास मत बनो। इसके अतिरिक्त अन्य उत्तम खेल टेनिस, बैडमिनटन, फुटबाल, क्रिकेट, हाकी, गेंद, दण्डा, घुड़सवारी, तैरना, नाव खेना, दौड़ना साइकिल चलाना, दण्डों को कूदना, अमरीका का गेंद बल्ले वाला बेस बाल (Base-Ball) नाम का खेल, लैक्रोस (Lacrosse) नाम का कनाडा का गेंद का खेल, बरफ़ पर फिसलना, बरफ पर लकड़ी के जूतों से चलना (Skiing), बाग लगाना, और खुली हवा में नाचना आदि हैं।

सप्तम-शक्ति का सुरक्षित रखना

भौतिक विज्ञान के अनुसार स्वास्थ्य विज्ञान में भी शक्ति को सुरक्षित रखने की बात महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। सहवास में संयम करने से इतनी अधिक शक्ति एकत्रित हो जाती है कि जितनी अनेक पौष्टिक औषधियों के सेवन से भी नहीं हो सकती। धातु अथवा मनी वास्तव में दूसरे रूप में आपके जीवन का रक्त है। यदि आप उसको बिना विचारे अनावश्यकता के नष्ट करोगे तो आप रोग को रोकने की अपनी शक्ति को कम कर दोगे और आपकी आयु कम और अपर्याप्त हो जावेगी। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को स्वास्थ्यविज्ञान और प्रेम की आवश्यकता से कम ही सहवास करना चाहिये। इस

विषय में इससे अधिकता करने से प्रकृति के करेंसी कार्यालय में दुःख और आंसुओं के रूप में उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। पीठ के बल मत सोया करो, क्योंकि इस आसन से सोने में आपको स्वप्नदोष हो सकता है। अपनी शक्ति को अपने धन की अपेक्षा भी अधिक सावधानी से बचा कर रखो। उसको व्यर्थ में मत गंवाओ। यह स्वास्थ्य और दीर्घजीवन के बड़े भेदों में से एक है।

अष्टम आशावाद और परोपकार

जिस प्रकार शरीर का मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार मस्तिष्क भी शरीर को उन्नत या अवनत करता है। आशावाद और दयालुता को शारीरिक संस्कृति के आवश्यक तत्त्व के रूप में, उसकी आचार सम्बन्धी विशेषता से प्रथक् भी, अपने में बढ़ाना चाहिये। अत्यधिक चिन्ता, दुःख और मानसिक निराशा से पाचन शक्ति खराब होकर नाड़ीचक्र दूषित हो जाता है। मस्तिष्क और शरीर के अन्योन्याश्रय पने का सम्बन्ध शेक्सपीयर ने कितनी सपष्टता से वर्णन किया है—

> "प्रसन्न हृदय दिन भर चलता रहता है,
> आपका उदास हृदय एक मील में ही थक जाता है।"

मन के प्रसन्न रहने से शरीर स्वस्थ रहता है। प्रेम और नम्रता भी शक्तिशाली रोग निवारक हैं। कृपा पूर्ण शब्द और कार्य से केवल दूसरों की ही सहायता नहीं होती, वरन् इससे आपका शरीर भी योग्य और बलवान् बना रहता है। परोप-

कारिता के इस शारीरिक प्रभाव की वर्तमान वैज्ञानिक भी व्याख्या करते हैं। प्रोफेसर एलमर गेट्स् (Prof. Elmer Gates) कहते हैं, "मेरा यह अनुभव है कि क्रोधी, द्रोही और दबाये हुए भाव शरीर में इस प्रकार के मिश्रण उत्पन्न करते हैं, जिनमें से कुछ अत्यन्त विषरूप होते हैं। इसके विरुद्ध उत्तम और प्रसन्न मुख इस प्रकार के बहुमूल्य रसायनिक मिश्रणों को उत्पन्न करते हैं, जो शक्ति का निर्माण करने वाले सेलों (Cells) को बल पहुंचाते हैं।

इसलिये सदा मुस्कराते औ कृपा करते रहो। इस प्रकृति से उसके उपहार स्वरूप आपका स्वास्थ्य उसी के अनुरूप उत्तम बन जावेगा।

तृतीय खंड

ललित रुचि निर्माण

अध्याय प्रथम	कला का सिद्धान्त और कार्य
द्वितीय	वास्तुकला
तृतीय	आलेख्य कला
चतुर्थ	चित्र कला
पञ्चम	संगीत
षष्ठ	नृत्य तथा वक्तृत्व कला
सप्तम	कवित्व कला

तृतीय खण्ड

ललित-रुचि निर्माण

प्रथम अध्याय

कला का सिद्धांत और कार्य

सौन्दर्यसम्बन्धी संस्कृति को जीवन के प्रथम भाग में ही आरम्भ करके उसका योग्य सिद्धान्तों के अनुसार निर्देश करना चाहिये। यह उस बड़ी भारी सीढ़ी के समान है जो पाताल से लगा कर स्वर्ग तक लगी हुई है। आप चाहे उस पर ऊपर चढ़ें चाहे नीचे उतरें। उसका उद्देश्य सबसे उत्तम कला की प्रशंसा करना और उसका आनन्द लेना है। कला हमारे भावों को उकसाती है। भाव ही कला का साम्राज्य है। बुद्धि का उससे बहुत कम अथवा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। विज्ञान का बुद्धि से सम्बन्ध है, तो कला भावों पर प्रभाव डालती है। कुछ नीरस और आवश्य-

कता से अधिक बुद्धि वाले व्यक्तियों की सम्मति में सौंदर्य-प्रशंसा बुद्धि सम्बन्धी अथवा युक्ति सम्बन्धी निर्णय है। किन्तु यह सिद्धान्ताभास है। सौन्दर्य बुद्धि के द्वार में को हो कर नहीं जाता। उसका आत्म तक पहुंचने का अपना ही सीधा मार्ग है। कला और विज्ञान दोनों स्वतन्त्र तो हैं, किंतु वह एक दूसरे के आधीन हैं।

सबसे उत्तम कला विशुद्ध आनन्द और बारहमासी अलौकिक प्रभाव है। जैसा कि रिचार्ड वैगनर (Richard Wagner) का कहना है, "कला स्वयं अपने अंदर, अस्तित्व में और समाज में सर्वत्र आनन्द रूप है।" यह गहन भावों को उभारती और जीवन को आनन्द देती है। इस प्रकार यह विकास प्रणाली के कार्य को आगे बढ़ने में सहायता देती है।

आपको सुन्दरता और कला के सिद्धान्त के विषय में अधिक चिन्ता न कर उनका अध्ययन करना चाहिये। कला में अभ्यास सिद्धांत से भी पहिले आता है। कलाकार अपनी आकस्मिक भावना से कला का निर्माण करता है, और उसके पश्चात् सिद्धांतवादी उसकी उत्तम कृतियों का विश्लेषण करता है। 'होमर' (Homer) ने यूनानी व्याकरण में कविता के नियमों का अध्ययन करके अपनी छै २ पद वाली कविताओं की रचना नहीं की थी। किन्तु आपको सुन्दरता के सभी ईश्वरीय और अध्यात्मिक सिद्धान्तों से बचना चाहिये। मैं आपको कला की उन अध्यात्मिक परिभाषाओं के विरुद्ध चेतावनी देता हूं जो

प्लेटो, प्लोटिनस, (Plotinus) हेगले (Hegel) काज़िन (Cousin) ब्रैडले (Bradley), तथा अन्य दार्शनिकों के ग्रन्थों में पाई जाती हैं। प्लोटो अपने ग्रन्थ सिम्पोसियम (Symposium) में कहता कि सुन्दरता स्वतन्त्र, प्रथक, साधारण, और नित्य होती है जो बिना घटे या बढ़े हुए सब अन्य सुन्दर वस्तुओं की बढ़ती और नष्ट होती हुई सुन्दरताओं को दी जाती है।" अपने ग्रन्थ फेड्रूस (Phaedrus) में प्लैटो सुन्दरता की परिभाषा करता हुआ उसको इस प्रकार का अबुद्धि गोचरसार बतलाता है, जो परमानन्द की दशा में ही अनुभव किया जो सकता है। कहता है, कि "आत्मा स्वयं अपने रूप में आकर वास्तविक यथार्थता के संसार से सम्बन्ध रखता हुआ, जब अपने सजाति अथवा जाति के चिन्ह को देखता है तो उसको परमानन्द के साथ २ स्वीकार कर लेता है। उस समय उसको स्वयं अपना और स्वयं अपनी वस्तुओं का स्मरण हो आता है। ......परमात्मा से आने वाले बुद्धिवाद में भाग लेने से शरीर भी सुन्दर हो जाते हैं।" हेगेल इस प्रकार के अस्पष्ट विचार प्रगट करता है, "कला का सौन्दर्य वह सौन्दर्य है, जो केवल मस्तिष्क अथवा आत्मा से ही उत्पन्न नहीं होता, किन्तु फिर उसी से उत्पन्न होता है। ......कला का कार्य हमारे सन्मुख इन्द्रियों को प्रिय लगने वाले कलापूर्ण आकारों के रूप सत्य को प्रगट करने और इन्द्रियों और युक्ति के विरोधी सामञ्जस्य को हमारे सन्मुख उपस्थित करना है।" काज़िन (Cousin) अपने ईश्वरज्ञान के बोझ को कला पर

डालता हुआ कहता है, "जिस प्रकार हमने परमात्मा का सभी वस्तुओं के उद्देश्य रूप में पता लगाया है उसी प्रकार पूर्ण सौन्दर्य का उद्देश्य भी वही होना चाहिये। वह भौतिक द्रव्यों के निर्माता के रूप में तथा ज्ञान तथा आचार सम्बन्धी संसार का पिता होने क रूप में सुन्दर वस्तु का उद्देश्य है। ......परमात्मा में ही सुन्दर और सूक्ष्म द्रव्यों का समिश्रण होता है।" सी० ई० एम० जोड का कहना है, "कलाकार का निर्माण जीवन की शक्ति के द्वारा किया जाता है।" एफ० एच० ब्रेडले के अनुसार सौन्दर्य "असीम की छाया है।" ज. जेनराइल कला की परिभाषा करता हुआ उसको "विचारों की आत्मा" कहता है। रस्किन घोषणा करता है कि सौन्दर्य "विश्व की रचनात्मक आत्मा का चित्रण" है। इस प्रकार के सभी ईश्वर सम्बन्धी और अध्यात्मिक सिद्धान्त कला की उत्पत्ति और कार्य को ठीक रूप में उपस्थित नहीं करते। इस उत्तमोत्तम साम्राज्य में एकमात्र सुन्दर कोई वस्तु नहीं है। कला का 'असीम' 'पूर्ण' आदि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आपको कला पर साम्राज्य बुद्धि से ज्ञान होने योग्य दृष्टि से ही विचार कर लेना चाहिये। कला इस जीवन के लिये मानवी सफलता है।

सौन्दर्य की किसी और प्रकार के शब्दों में परिभाषा करने और उसका वर्णन करने के अनेक उद्योग किये गये हैं। इस प्रकार सुकरात (Socrates) और बर्कले (Berkeley) ने औचित्य, योग्यता और उपयोगिता को सौन्दर्य का ही तत्त्व समझा। शिलर (Schiller), ह्यूम (Hume), एस० अलेग्जेंडर (S

(Alexander) और लैंगफेल्ड (Langfeld) ने प्रथक् २ भागों की समानता और एकता का वर्णन करते हुये आकार और सन्तोष की एकता का वर्णन किया है। लोटेज्ज (Lotze) और रस्किन (Ruskin) ने आनन्द को ही कला का आवश्यक रूप बतलाया है। सांतायन (Santayan) की सम्मति भी इसी प्रकार की है। वह कला को ही "वस्तु बना हुआ आनन्द" बतला कर उसका जननेन्द्रिय सम्बन्धी उत्तेजना से बहुत दूर का सम्बन्ध बतलाता है। इस प्रकार के सभी सिद्धान्त अयोग्य और विषय को ऊपर २ से ही छूने वाले हैं, क्योंकि वह सौन्दर्य को किसी ऐसी वस्तु पर आश्रित बतलाते हैं जो स्वयं सुन्दर नहीं है। अन्य विद्वानों में से कुछ एच० टेने (H. Taine) जैसे कला को विज्ञान से, कुछ वेरिस्टों (Verists) के जैसे इतिहास से और कुछ हर्बर्टियन फ़ॉर्मैलिस्टों (Herbartian Formalists) के जैसे गणित से उपमा देते हैं। किन्तु सौन्दर्य की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। यह अपने ढंग का एक पदार्थ है। कला केवल सौन्दर्य के लिये है, अन्य कार्य के वास्ते नहीं। गुणी पुरुष ऐसी कला का आविष्कार करता है, जो भिन्न २ युगों और भिन्न देशों में भिन्न २ प्रकार की होती है। किन्तु सम अनुपात और विषय अनुपात से, भिन्न २ भेदों और एकता के द्वारा निर्माण किया जाने वाला सौंदर्य का सत्त्व ज्ञान नहीं है। कला से केवल प्रसन्नतादि नहीं होती, वरन् उससे भय, आश्चर्य और रहस्य जैसे मनोभाव भी जाग्रत हो सकते हैं। यह आवश्यक है कि कला से आनन्द भी आता

है। कोलरिज (Coleridge) के इस वाक्य में वास्तव में ही तथ्य है कि "अपोलो बेल्विडीयर (Apollo Belvedere) हमको आनन्द देने के कारण सुन्दर नहीं, वरन् वह सुन्दर होने के कारण हमको आनन्द देते हैं।"

मेरा विश्वास है कि सौंदर्य की एक मात्र योग्य और सार्वभौम कसौटी अनुभव करने वाले को आत्मविस्मृति करा देना है। कला आपको अपने को भी भुला देती है। यह आत्म संवेदन का विरोधी सिद्धांत है। सौंदर्य के इस आवश्यक कार्य का वर्णन डिओ क्राइसोस्टोम (Dio Crysostom) के *ओलिम्पिया स्थिति २ फीडिअस (Pheidias) द्वारा निर्माण की हुई ३ जिउस (Zeus) की मूर्ति के प्रसिद्ध वर्णन में इस प्रकार पाया जाता है—"जिस का जी बैठा जा रहा हो, जिसने अपने जीवन में अनेक वार दुर्भाग्य और कष्टों का मुकावला किया हो और जिसको नींद भी न आती हो, मेरे विचार में तो इस प्रकार का कोई भी पुरुष यदि इस मूर्ति के सन्मुख खड़ा हो जावे तो वह इस विनाशमान जीवन के सब भय और कष्टों की भूल जावेगा।" आपको आपके अन्दर से आपके तुच्छ व्यक्ति में से निकालने की यह अपने ढंग की

यूनान का एक मैदान २ फीडीयस एक प्रसिद्ध यूनानी आलेख्यकार (Sculptor) था। वह ईसापूर्ण ४९० से ४३१ तक रहा। इस समय ब्रिटिश म्यूज़ियम में कुछ संगमरमर की मूर्तियों के अतिरिक्त उसकी कला के महत्त्व को प्रगट करने वाली कोई वस्तु नहीं है। ३. जूपीटर (Jupitar) का यूनानी नाम।

अनोखी शक्ति ही कला का विचित्र गुण है। उसका सत्य यही है। उपयोगिता, आनन्द, समनुपात, तथा अन्य बाह्य और विभिन्न प्रकार के गुण नहीं हैं। यदि कोई कला की कृति आपके ऊपर इस प्रकार प्रभाव डालती है कि आप उसके सौंदर्य पर विचार करने में ही खोए जाते हो और आपको अपने व्यक्तित्व की पूर्णतया सुध नहीं रहती तो वह कृति उसका चाहे जैसा भी रूप और आकार होने पर वास्तव में ही मौलिक और उत्तम कला है। किन्तु यदि वह आपको अनुत्साही, सचेत और समालोचनात्मक बनावे तो वह निश्चय से ही वैसी नहीं है, फिर चाहे उसमें कितनी ही अधिक उपयोगिता, समनुपात और आनन्द देने की शक्ति क्यों न हो। उत्तम कला अपना परिचय आत्मा पर किये हुए अपने प्रभाव से देती है और यही उसकी योग्य परीक्षा है। उपस्थित मण्डली को हंसाने के लिये व्याख्या किये जाने योग्य हास्य जिस प्रकार उत्तम हास्य नहीं समझा जाता उसी प्रकार यदि कोई कला आपको आत्मानुभव संसार से तुरंत और हठपूर्वक न उठा सके तो वह कला जीवित और अमर नहीं है। वास्तविक कला पूर्ण कृति के साथ आप उसी प्रकार जैसे एक मित्र के साथ रह सकते हैं। ऐसा ही * विंकेलमैन (Winckelmann) चाहता था। इस परीक्षा से आप डारडोग्ने (Dordogne) की पाषाण युग की कला से

---

* जान विंकेलमैन (John Winckelmann) एक जर्मन विद्वान था। उसने कला के सम्बन्ध में कई ग्रन्थ लिखे हैं। उसका समय १७१७ ७६८ तक था।

लगा कर अब तक की वर्तमान उच्च कोटि की— प्राचीन मध्यकालीन और आधुनिक कला, ठप्पे से छापने की कला, ठप्पे से पहिले की कला, चक्कर खाती हुई गोल २ वस्तुओं को लिखने की कला, संख्याओं को लिखने की कला,पशुओं को संगीत से मोहित करने की कला (Orphism) सम्पूर्ण को चित्रित करने की कला, थोड़े से को चित्रित करने की कला, विभाग करके चित्रित करने की कला, बिना विस्तार के अपनी कल्पना से रंगों के द्वारा ही भाव को प्रगट करने की कला (Impressionism), रंगों को अधिक बखेर कर सौंदर्य को प्रगट करने की कला (Post Impressionism), अनेक प्रकार के गड़ बड़ रंगों से सौंदर्य को प्रगट करने की कला (Cubism), तथा उन्हीं रंगों को उससे भी अधिक प्रयोग करने की कला (Teutrism) को पहचान सकते हो। आप इस नियम को सभी बड़ी और छोटी कलाओं—आलेख्यकला, चित्रकारी, वास्तुविद्या, संगीत, नाटक, नृत्य, अभिनय, वक्तृत्व-कला और कविता आदि पर लागू कर सकते हैं। यदि नये २ कलाकार नये आदर्शों की घोषणा करें और नवीन प्रणाली का आविष्कार करें तो उनकी निंदा मत करो, वरन् ठहर कर देखते जाओ कि क्या वह किसी मौलिक कला की रचना कर सकते हैं। कला स्थिर नहीं रह सकती, न वह केवल भूतकाल का ही बार २ वर्णन करती है। अतएव नये २ कार्यों का स्वागत करके उनको प्रोत्साहित करना चाहिये। कलाकार को किसी भी सामग्री, अथवा

औज़ारों से काम लेने दो; उसे अपनी पसंद की रेखाओं, रंग, रूपों, वक्ररेखाओं, नमूनों और छायाचित्रों का प्रयोग करने दो; किन्तु यदि वह इस प्रकार की उच्च कृति का निर्माण करता है जो यहां तक कपकपी चढ़ाती, मोह लेती और अपने वश में कर लेती हो कि हम अपने को पूर्णतया भूल जावें तो मनुष्यों और समाचार पत्रों के संचालकों के चाहे जो कहने पर भी वह बड़ा भारी कलाकार है। उसके भाव हमारे अन्दर भर जाते हैं और हम भी उसके साथ दूसरे मनोवैज्ञानिक विमान में बैठ कर सैर करने लगते हैं। इस प्रकार की कला अविनाशी होती है। जैसा कि थियोफाइल गौटियर (Theophile Gautier) ने कहा है, "सभी वस्तु नष्ट हो जाती हैं। केवल बड़ी भारी कला नष्ट नहीं हो सकती। नगर के नष्ट हो जाने पर भी उसमें बनी हुई मूर्ति बच जाती है।"

कला आत्मा विस्मरण क्यों करा देती है ? इसका कारण यह है कि वह हमको हमारे छोटे से व्यक्तित्व में से निकाल कर उसको सामाजिक आत्मा से साक्षात्कार तथा संगति करने में समर्थ करती है। वह सामाजिक आत्मा सभी स्त्री, बच्चों और पुरुषों में होता है। जिस प्रकार प्रत्येक घर में पानी का नल और उसकी टोंटी होती है और मुनिस्पैलिटी का संरक्षित जल तालाब एक होता है, उसी प्रकार सामाजिक आत्मा सब मनुष्य जाति के लिये एक और विश्वसामान्य होता है, जब कि व्यक्तिगत आत्मा एक व्यक्तित्व में ही परिमित होता है। कला हमको इन

दोनों आत्माओं के ऐक्य का विकास और अनुभव करने योग्य बनाती है। वास्तव में यह दोनों आत्माएं भी एक रूप ही हैं। कुछ विद्वान् मनुष्य जाति की मानसिक एकता के अन्वेषण में अचेतनावस्था और अर्द्धचेतनावस्था की गुफा और तहख़ानों के झगड़ों में पड़ते हैं। किन्तु इस प्रकार के बखेड़ों में पड़ना आवश्यक और उचित नहीं है। इस विषय में चेतनोत्तर अवस्था (Super-conscious) सब से ऊंची होती है। अपने २ व्यक्तिगत आजीविका के कार्यों पर से आने के बाद हम सब इस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। यह चेतनोत्तर अवस्था आकाश और सूर्य के लिये खुली हुई है और व्यक्तित्व के लिये पुष्टिकारक है। उस अवस्था पर कला इस प्रकार शीघ्रता और कुशलता पूर्वक पहुंचा देती है, जिस प्रकार एक * लिफ्ट ऊंचे मकान के ऊपर चढ़ा देता है। यह सामाजिक मनोराज्य के साम्राज्य का धर्म है और कलाकार उसका पुजारी और पैग़म्बर है। वह छोटे २ कलाकार, जिसमें अध्यवसाय अधिक और प्रतिभा कम होती है, विनयी पुजारी होते हैं; और बड़े २ कलाकार, जिनमें उच्च कोटि की प्रतिभा होती है कला मन्त्रों के द्रष्टा और पैग़म्बर होते हैं।

अतएव बड़ी भारी कला में गंभीर और स्थायी सामाजिक

---

* यह बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े २ नगरों के ऊंचे २ मकानों में लगे होते हैं, इन पर बैठ कर सुगमता से बिना सीढ़ी या जीने पर चढ़े उस मकान की चाहे जिस मंजिल में जा सकते हैं। लिफ्ट दिल्ली में भी वाइसराय के दफ्तर और इम्पीरियल बैंक की बिल्डिंग में लगा हुआ है।

विशेषता होती है। उसकी माध्यम व्यक्तिगत होते हुए भी आचार शास्त्र के समान वह समाज द्वारा उत्पन्न की जाती है। क्या यह तथ्य अत्यन्त प्रसिद्ध नहीं है कि सभी कला का सत्त्व सामाजिक प्रशंसा ही है। यदि किसी चित्र या मूर्ति की प्रशंसा केवल उसका चित्रकार ही करे और चित्रशाला में आने वाला अन्य कोई प्रेक्षक न करे, यदि कोई कविता केवल अपने रचयिता कवि को ही आनन्द दे, अन्य किसी को नहीं; यदि कोई भारी इमारत केवल उसके निर्माता शिल्पी (Architect) को ही अच्छी लगे, अन्य किसी नागरिक को नहीं; यदि कोई राग अपने गाने वाले को ही अच्छा लगे, अन्य सुनने वालों को नहीं; तो हम परिणाम निकालते हैं कि इस प्रकार की कला निम्नश्रेणि की, नकली और शीघ्र नष्ट होने वाली है। यह उस बच्चे के समान है, जिसको केवल उसके माता पिता ही चाहते हैं, अन्य मित्र, सम्बन्धी और पड़ौसी नहीं। हमारे कला सम्बन्धी विचार में सामाजिक अनुभूति सम्मिलित है। इसी कारण सभी कलाकार बड़ी उत्सुकता से यह पूछा करते हैं कि उनकी कृति को जाति अथवा कुछ लोगों ने पसंद किया अथवा नहीं। उनमें सबसे बड़े तो यह भी चाहते हैं कि उनकी कृति अमर रहे और कीर्ति युग २ बनी रहे। (Tolstoi) टाल्स टाय कला की सामाजिक उत्पत्ति और उसके महत्त्व पर विशेष बल दिया करता था। जो कला सामाजिक नहीं है वह केवल व्यक्तिगत लत अथवा नशा है।

अतएव इससे यह परिणाम निकता है कि भारी कला की जड़ विश्व भर की मनुष्यजाति में है, नकि व्यक्तिगत अथवा

राष्ट्रीय प्रशंसा में, अथवा दलों और धर्मों के प्रशंसात्मक वाक्यों और समर्थनों में। सबसे उत्तम कला वही है जिसकी प्रशंसा संसार के अधिक से अधिक स्त्री पुरुष अधिक से अधिक समय तक करें। इस प्रकार की कला को ही अधिक जीवित रहने की सम्भावना होती है; क्योंकि उसको सुरक्षित रखने का प्रयत्न जनता का अधिक भाग किया करता है। निम्नश्रेणी की कला का सम्बन्ध किसी विशेष दल, जाति अथवा धर्म से ही होता है; वह अपने सामाजिक आधार में परिमित और अस्थायी होती है। जब वह धर्म या वर्ग नष्ट हो जाता है तो उसके साथ उसकी कला भी नष्ट हो जाती है। असीरिया के सैनिकवर्ग की अस्तेख्य कला (Sculpture), रोमनों की गंदी धनिकतन्त्र शासनप्रणाली के * कोरिन्थ (Corinth) के खम्भे, ओरकैग्ना (Orcagna) के नरक के चित्र, वैनडाईक (Van Dyck) के राजसी चित्र, डोनैटेलो (Donatello) और वेरोचिओ (Verocchio) की वीरों की मूर्तियां, घीबर्टी (Ghiberti) के तौरेत और जब्बूर (Old Testament) के दृश्य, सिगनोरेली (Signorelle) का "नाटकियों का न्याय", वेलास्केज (Velasquez) का ब्रेडा का आत्म समर्पण', वैटो (Watteaw) के सुन्दर २ भोज और नृत्य समारोहों के चित्र, मिलेज (Millais) का 'रखवालों का जमींदार ('Yeoman of the Guard'), बर्न जान्स का भाग्य चक्र (Wheel of Fortune), गिउजे

---

१. कोरिन्थ यूनान की एक प्रसिद्ध रियासत का नाम है।

(Greuze) की 'प्रातः कालीन प्रार्थना' (Morning Prayer), चारडिन (Chardin) का 'भोजन के सन्मुख प्रार्थना' (Grace beforeMeat), केजैने (Cezanne) का 'ताश के खिलाड़ी ('Card Players'), रेनाएर (Renoir) का 'नृत्य स्थल' ('Opera Box'), बौरडेले (Bourdelle) का लीडा (Leda), डे सेगोनज़ैक (De Segonzac) का 'शराबी लोग', मैनेट (Manet) का 'मूर्खों की सभा और 'नंगे', डेगस (Degas), रौऑल्ट (Rouault), कोरिन्थ (Corinth) और एप्सटीन (Epstein) की कला इसी प्रकार की है। इस प्रकार की कला स्थानीय, लघुजीवी और शीघ्र नष्ट होने वाली होती है। आन्दोलन कार्यों की कला भी, जिसको सी. ई. एम. जोड (C. E. M. Joad) ने "संसार में नवीन विचारों का प्रचार करने वाली" बतलाया है—इसी प्रकार की होती है। वह कहता है, "सौन्दर्य, मेरे लिये जीवन-शक्ति के इस यत्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, कि उसके विचारों को सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लिया जावे, कुइनैन की गोलियों पर लपेटी हुई शक्कर है।" किन्तु नवीन विचार बुद्धि में उत्पन्न होते हैं, जिसका कार्य कला में बहुत कम है। जैसा कि ए. ई. हाउसमैन (A. E. Housman) ने लिखा है, बुद्धि कविता का झरना नहीं है।" नवीन आविष्कार अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी होते हैं, किन्तु उनमें कई एक अधिक पसंद किये जाते हैं और उन्हीं को जीवन के स्थायी उद्देश्यों के रूप में स्वीकार किया जाता है। कला केवल

सामाजिक गतिविद्या (Dynamics) का ही वर्णन नहीं कर सकता; उसको सामाजिक पदार्थभार परिमाण विद्या (Staties) के अनुसार आचरण करके उसको भी अपना आदर्श बनाना चाहिये। प्रचार एक कर्तव्य है और आनन्द दूसरा; किन्तु कला की सारी कृति उसी में समाप्त नहीं हो जाती। प्रचार का सुन्दर सूर्यास्त, अथवा बच्चे के सुन्दर मुख, अथवा क्लाड * लोरेन के मनोरञ्जक प्रदेश चित्र अथवा *पाल पाटर (Paul Potter) के बैल अथवा ताज महल तक के चित्र में क्या मूल्य है ? कला को अन्तरतम भावों को जागृत करना चाहिये। उसका सीधा उद्देश्य बुद्धि को ठीक करना अथवा प्रचार करना नहीं है। जिस समय कला पोप(Pope) और ट्यूपर (Tupper) के समान आचारशास्त्र की शिक्षा देती है तब वह अपने मार्ग से भटक कर दूसरे मार्ग में जा पहुंचती है। कला का अस्तित्त्व नैमिकता के लिये नहीं, वरन् सौन्दर्य के लिये है। सुन्दरता और नैतिकता दोनों ही व्यक्तित्व के समान और स्वतन्त्र अङ्ग हैं। कला सुन्दर वस्त्र वाले उस गांव के उपदर्शक के समान नहीं है, जो आपको मार्ग

---

१ लोरेन का क्लाड (१६००-१६८२) सतरहवीं शताब्दी का सब से प्रसिद्ध देहाती चित्रकार का। उसका यथार्थ नाम क्लाड गेली (Claude Gelee) था। वह फ्रांसीसी होने पर भी बचपन में ही रोम चला गया था। वहां रह कर उसने संसार भर में नाम पैदा कर लिया।

२ पाल पाटर (१६२५-५४) एक उच्च चित्रकार था। वह पशुओं के चित्र बनाया करता था।

में प्रत्येक बार मिलने पर कुछ उपदेश सुना दिया करता है। इसकी तुलना उस प्रतिष्ठित और प्रिय मित्र से की जा सकती है, जिसकी उपस्थिति से ही उसके एक शब्द भी उच्चारण न करने पर आपका आत्मा फड़क उठता है और आपकी उन्नति होती है। कला प्रचार नहीं करती; यह भावुक बनती है। ओस्कार वाइल्ड (Oscar Wilde) ने कला की स्वतन्त्रता के पक्ष में बोलते हुये कहा था, "किसी कलाकार को भी आचरण विषयक सहानुभूति नहीं होती। कोई कलाकार किसी बात को सिद्ध करना नहीं चाहता। इन बातों के लिये सारी कला व्यर्थ है।" सीधे प्रचार, धार्मिक उपदेश, बुद्धि और अन्तरात्मा में युक्ति से बात को बिठलाने, अथवा बिना कलापूर्ण ढंग के नैतिक अथवा राजनीतिक विज्ञापन करने के लिये कला वास्तव में व्यर्थ है। किन्तु एक गंभीर भाव से विचारने पर कला और आचारशास्त्र एक ही हैं। कला आपके अपने व्यक्तित्व से छुड़ा कर स्वतन्त्र करके आपको सामाजिक व्यक्तित्व में मिला देती है। यह मानसिक अनुभव अथवा उन्नति से ही नैतिक उन्नति का आवश्यक कारण है। इस प्रकार सब से उच्च कोटि की कला और सब से उच्च कोटि का आचारशास्त्र दोनों एक ही हैं।

कला की उत्पत्ति तथा उसके कार्य के सामाजिक होने के कारण उसको सब से बड़ी सफलता उन्हीं समाजों और उन्हीं युगों में मिला करती है, जो इस प्रकार के आदर्शवाद के लिये प्रसिद्ध होते हैं। यदि एक राज्य के अनेक नागरिक बड़ी २

समस्याओं को सुलझाने और बड़े २ उद्देश्यों को कार्य रूप में परिणित करने का उद्योग करते हैं तो उक्त राज्य मनुष्य जाति को उत्तम कला का अमूल्य उपहार प्रदान करता है। जब जनता व्यक्तिगत उन्नति के लिये उद्योग करती, अधिक उत्तम जीवन के साधनों को प्रयत्न से खोजती और अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक संस्थाओं में अत्यन्त उत्साह से सुधार करती है तो उनमें निश्चय से ही उच्च प्रकार की कला उत्पन्न होती है। कला उन्नति करने वाली समाज का बच्चा होती है, न कि गतिहीन अथवा अवनति शील समाज का। पुराने विचारों वाली अथवा विलासी समाज को कला प्रकृति की केवल नकल ही करती है, किन्तु उन्नतिशील कला प्रकृति से बिना बहुत दूर जाए हुए ही उसको आदर्शरूप दे देती है। मेडिसी (Medici) की कब्रों को सजाने वाले * माइकेल ऐंगलो (Michael Angelo) के समान वह कला प्रकृति से अधिक दूर नहीं जाती। गान्धार और जापान की आलेख्य कला (Sculpture) और चीनियों की उच्च कोटि की चित्रकारी उस समय के कलापूर्ण चिन्ह हैं, जिस पर गौतमबुद्ध की शिक्षा के सामाजिक आदर्शवाद का अत्यन्त गहरा प्रभाव

---

१. माइकेल ऐंगलो (१४७४-१५६४) इटली का प्रसिद्ध चित्रकार, तथा आलेख्य कला और वास्तुविद्या (Architecture) का शिल्पी था। रोम और फ्लोरेंस के बड़े २ सुन्दर गिर्जे उसी के बनाए हुए हैं। वह इटली के कलाकारों में सब से बड़ा और अन्तिम था।

पड़ा था। ऐसी कला के सम्बन्ध में ही * विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) ने कहा—

> “वास्तविक कला दासता के बन्धन से छुड़ा सकती है
> और स्वतन्त्र जाति को वास्तव में बड़ी बना सकती है।

ईसापूर्व चौथी शताब्दी के परिश्रमी और उन्नतिशील ऐथेन्स वासियों ने संसार की सब से उत्तम कला के रचयिता [२] एस्चाइलस (Aeschylus) और फीडियस (Pheidias) को उत्पन्न किया था। किन्तु ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के विलासी और आलसी ऐथेन्स वासी मेनैंडर (Menander), और फिलेमन (Philemon) से अधिक के लिये गौरवान्वित न हो सके। इटली के प्रजातन्त्र प्रणाली वाले स्वतन्त्र नगरों ने जिनमें उत्साह से भरे हुए, उच्च आदर्श वाले और श्रेष्ठ नागरिक थे— हमको गिओटो [३] (Giotto), माइकेल ऐंगेलो (Michal Angelo),

---

१. विक्टर ह्यूगो (१८०२–१८८५) फ्रांस का एक प्रसिद्ध कवि, नाट्यकार और उपन्यास लेखक था।”

२. एस्चाइलस (ईसापूर्व ५२५–४५६) को यूनानी शोकान्त नाटकों का पिता कहा जाता है। उसने सत्तर नाटक बनाये और अपने उत्तम नाटकों पर तेरह बार पारितोषिक प्राप्त किया।

३. जिओटोडी बोनडोन (१२६६–१३३६) इटली का एक प्रसिद्ध चित्रकार तथा आलेख्य कला और वास्तुविद्या (Architecture) का उत्कृष्ट कलाकार था। उसके बनाये हुए फ्लोरेंस आदि स्थानों के गिर्जे तथा अन्य मकान उसकी कीर्ति को अभी तक अमर बनाए हुए हैं।

[४] फ्रा ऐंगेलिको (Fra Angelico) और रैफेल [५] (Raphael) जैसे कलाकार दिये; किन्तु आलसी और आत्म प्रशंसक वेनिस (Venice) केवल [६] टीटियन, [७] (Veronese) और [८] टिंटोरेटो(Tintoretto) जैसे कलाकारों की निम्न श्रेणी की कला को ही दे सका। जब इटली की जनता का सामाजिक आदर्श नष्ट हो गया तो मोरोनी (Moroni), डोसोडोसी (Dosso Dossi),

---

[४] फ्रा ऐंगोलिको (१३८१–१४५५) इटली का एक प्रसिद्ध चित्रकार था। धार्मिक विषयों के चित्र बनाया करता था। फ्लोरेंस में उसके कई एक चित्र रखे हैं।

[५] सैंज़ियो रैफेल (१४८३–१५२०) इटली का सबसे बड़ा चित्रकार था। उसके जीवन का अधिक भाग रोम में ही व्यतीत हुआ था। किन्तु उसके चित्र अब सारे यूरोप की सम्पत्ति हैं।

[६] टीटियन (१४७७) वेनिस के सबसे अच्छे चित्रकारों में से एक था। उसने जीवन भर चित्रों से खूब कमाया और ९९ वर्ष की आयु में प्लेग से मरा।

[७] पाल वेरोनीज़ (१५२८–८८) इटली का एक प्रसिद्ध चित्रकार था। वह धार्मिक विषयों का चित्रकार था किन्तु उसके कुछ चित्रों की ख्याति संसार भर में हो गई थी।

[८] टिंटोरेटो (१५१८–९४) वेनिस का एक प्रसिद्ध चित्रकार था। उसके धार्मिक चित्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। उसका यथार्थ नाम जैकोपो राबस्टी (Jacopo Robusti) था, किन्तु रंगों में विशेष दक्षता प्राप्त करने के कारण उसका टिंटोरेटो नाम रख दिया गया।

अमैनैटी (Ammanati) और गिआन बोलोग्ना (Gian Bologna) जैसे छोटे छोटे कलाकार प्रगट हुए। कला की आधुनिक कृतियां (कुछ के अतिरिक्त) द्वितीय श्रेणी की और निर्जीव होती हैं, क्योंकि इस युग में आदर्शवाद बहुत कम है। आजकल स्त्री पुरुष जिस प्रकार भी हो सके बनाने के लिये ही प्रयत्न करते रहते हैं, वह अधिक उच्च और उत्तम बनने के लिये उद्योग नहीं करते। उनको तो आनन्द करने की चिन्ता रहती है. न कि उन्नति की। पैसा देने वाले दुराचारी और व्यसनी पूंजीवादी वर्ग का भयानक दुर्विचार में से गम्भीरता और उच्चतम आदर्श को नष्ट कर रहा है। यदि हम में कोई स्वर्गीय कलाकार भी उत्पन्न हो तो वह भी इस पूंजीवाद के चक्कर में आकर रोटी कमाने के लिये उस प्रकार का नम्र सेवक बन जावे, जिस प्रकार प्राचीन यूनानी दार्शनिक रोम में जाकर नौकरी करने के लिये विवश हुए थे। अल्प तन्त्र शासन (Oligarchy), धनिकों का शाशन (Plutocarcy) और स्वतन्त्र राज्य (Tyranny) उच्च कोटि की कला के लिये सदा भयानक होते हैं, क्योंकि देर तक मूर्छित करने वाले उस वायुमण्डल में सामाजिक आदर्शवाद का प्रचार नहीं हो सकता। जब कि हम कला को अवनत करने वाली उन राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं को बराबर लाये चले जा रहे हैं तो हमारा अपने कलाकारों पर उनकी कलाओं में मध्यम श्रेणी, साधारणता, कृत्रिमता, आत्म प्रशंसा, भावोत्तेजकता और इन्द्रिय प्रियता का दोषारोपण करना योग्य नहीं है।

मध्यकालीन * गिर्जों की हमारे होटलों, रेलवे स्टेशनों और गगन चुम्बी अट्टालियाओं से तुलना करो। सर माइकेल सैडलर (Sir Michael Sadler) आधुनिक कला में स्वतन्त्रता और सच्चाई के नवीन भाव की उन्नति पर ध्यान देते हुए कहते हैं, "अधिकांश आधुनिक कला का विचार क्रान्ति में उत्पन्न होने के कारण वह अब भी भावी क्रांति की ही सूचना दे रही है। किन्तु इस क्रांति के समय रहने वाले हम जानते हैं कि हम विदेश के जलवायु का अभ्यास करके किस प्रकार बदलते जाते हैं। ......इस प्रकार आधुनिकता सार्वसाधारण की रुचि में परिणत होती जाती है।"

अच्छा हो कि यह भविष्यवाणी सच निकले! इस प्रकार कला के लिये आप स्वयं उत्तरदायी हो, न कि केवल कलाकार। यदि आप गुणी और सच्चे हो तो आपका युग उत्तम कला को उत्पन्न करेगा। यदि आप नीच और कमीने हो तो आपकी कला भी नीच और कमीनी होगी। कला स्वयं आपका ही सामाजिक प्रतिबिम्ब है। कला के चार भेद होते हैं, जो चार विभिन्न सामाजिक और आचार सम्बन्धी वायुमण्डल और परिस्थितियों के अनुसार हैं। वह चारों भेद यह हैं (१) उत्कृष्ट कला, (२) समवेदना पूर्ण कला, (३) भावोत्तक कला और (४) वासना पूर्ण कला।

---

१. भारत में भी प्राचीन मन्दिरों और देवस्थानों की कला ही उच्च कोटि की थी।

उत्कृष्ट कला सबसे उत्तम होती है । उसकी उत्कृष्टता गम्भीरता, महिमा, रोब दाब, आश्चर्य और वास्तविक प्रशंसा के भावों को जाग्रत करती है। आप जितना ही अधिक इस उत्कृष्ट कला को ग्रहण कर इसका आनन्द लोगे आप उतने ही अधिक अच्छे, बुद्धिमान् और प्रसन्न होगे। अपने दिन और रात आप आलेख्य कला के लिये फीडियस, चित्रकारी के लिये माइकेलऐंगलौ और जिओटों क लिये संगीत १*बैच (Bach) और २ बीथोवेन (Beethoven) की रचनाओं गोथों के गिर्जों, पारथीनिया और भारत की ३ *अफ़गान काल के भवनों के वास्तुशिल्प (Architecture) में बिताओ। उत्कृष्ट कला का निर्माण किसी महान् आत्मा वा महान् पुरुष के समय में ही होता है।

समवेदना पूर्ण कला मोहक और सुन्दर होती है । उसका उद्देश्य आनन्द और शृंगार (सजावट) होता है, न कि उन्नति और सुधार। इस प्रकार की कला हरी और सुन्दर घाटी

---

१ * जोहन सेबस्टियन बैच (१६८५–१७५०) जर्मनी का एक प्रसिद्ध कवि था। उसने गाने योग्य अनेक गीतों की रचना की है।

२ * वान लुडविग बीथोवेन (१७७०-१८२७) का जन्म जर्मनी के बॉन (Bonn) नगर में और मृत्यु वियाना में हुई थी। वह दरबारी कवि था। उसके गीत अत्यन्त उच्च कोटि के समझे जाते हैं।

३ * भारत में अफ़गान काल से पूर्व हिन्दू काल की अत्यन्त उच्च कोटि की कला पाई जाती है। अजंता और एलोरा की गुफाएं तथा आबू के जैन मन्दिर आदि उसके कुछ नमूने हैं।

के समान आनन्द दायक और उपयोगी होती है, जब कि पर्वतों के ऊंचे २ शिखर अपने राजसी ठाठबाट में अकेले ही बने रहते हैं। इस प्रकार की सुन्दर कला आलेख्य शिल्प के विषय में १ *प्रैक्साइटेलीज़ (Praxiteles) की मूर्तियों में, चित्रकारी के विषय में रैफेल (Raphael), लुइनी (Luini,) २ *रोसेटी (Rossetti) तथा अन्य चित्रकारों के चित्रों में; और वास्तु विद्या के विषय में ताज महल, ३ *अलहम्ब्रा (Alhambra), और एथेन्स में नाइक (Nike) के मन्दिर में; और संगीत के विषय में ४ *मोज़र्ट

---

१ * प्रैक्साइटेलीज़ ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का आलेख्यकार था।

२ * दांते रोसेटी (१८२८-८२) इटली का निवासी था। उसका पिता निर्वासन के कारण उसके जन्म से पूर्व लंदन आगया था। दांते ने बाल्यावस्था से ही चित्रकारी में अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ किया। उसके चित्रों का संसार में अच्छा मान हुआ। वह उच्चकोटि का कवि भी था। उसकी कविताएं भी उसके चित्रों से कम भाव पूर्ण नहीं थीं।

३ * यह स्पेन में मूर लोगों का प्रसिद्ध राजमहल और किला है।

४ * वुल्फ़गैंग ऐमैडिअस मोज़र्ट (१७५६-९१) प्रसिद्ध आस्ट्रियन कवि था। उसने अपनी संगीत सम्बन्धी प्रतिभा का परिचय बाल्यावस्था में ही दे दिया था। उसने अपनी आठ वर्ष की आयु में ही यूरोप की अनेक राजधानियों में अपनी कला को प्रदर्शित किया था। पच्चीस वर्ष की अवस्था में उसको वियाना के राजदर्बार में राज कवि का स्थान दिया गया। उसके पश्चात् उसने अत्युत्कृष्ट गीतों की रचना की।

(Mozart), १ * पूसिनी (Puccini), २ * वर्दी (Verdi) और ३ * रोसिनी (Rossini) की रचनाओं में मिल सकती हैं।

भावोत्तेजक कला उग्र और तामसी होती है। यह आन्दोलन और अशान्ति को पसंद करती तथा आत्मा की शान्ति को भंग करके उसको विक्षुब्ध कर देती है। जो लोग 'कपकपी' और 'उत्तेजना' चाहते हैं वह इस कला को पसंद करते हैं। यह कला हानि प्रद होती है। इस प्रकार की मध्यम श्रेणी की और अधम कला आलेख्य विषय में स्कोपास (Scopas) और उसके समकालीन कलाकारों की मूर्तियों में, संगीत विषय में ४ * वैगनर (Wagner) ५ * स्ट्रैविन्स्की (Stravinsky) तथा नीग्रो लोगों के

---

१ * गिआकोमो पूसिनी (१८५८-१९२४) निम्नकोटि के गीतों की रचना किया करता था।

२ * ग्यूसेपी वर्दी (१८१३-१९०१) एक इटली का कलाकार था। उन्नीसवीं शताब्दी के गीत-रचयिताओं में उसका प्रमुख स्थान है।

३ * गिओचीनो ऐनटोनियो रोसीनी (१७९२–१८६८) इटली निवासी था। वह आधुनिक गीत-रचियताओं में उत्तम कलाकार समझा जाता था।

४ * रिचर्ड वैगनर [१९१३–८३] का जन्म जर्मनी के लीपजिग नगर में हुआ था। १९ वीं शताब्दी की सङ्गीत कला पर उसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। उसने गायन तथा वाद्यविधि में भी एक प्रकार की क्रान्ति मचा दी थी।

५ * स्ट्रैबिन्स्की का जन्म सन १८८९ में हुआ था। वह एक रूसी कवि है। उसके गीत अत्यन्त उच्च कोटि के होते हैं।

जाज़ (Jazz) नामक संगीत के विशेषज्ञों की रचनाओं में; चित्रकारी के विषय में चिरीको (Chirico) के भयानक स्वप्न के चित्रों, युद्ध के सब चित्रों, कैनडिंस्की (Kandinsky) के उग्र रूप से रंगे हुए चित्रों, पाल नाश (Paul Nash) के युद्ध के मान चित्रों और एल ग्रेको (ElGreco) के चित्रों में; और वास्तुविद्या (Architecture) के विषय में वर्तमान अमरीकन इमारतों में देखने को मिल सकती है।

वासनापूर्ण कला सबसे नीच होती है। यह सदा ही दुराचारी और पतित सभ्यता से उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ यूनानी वीनस कैलीपाइगस (Venus Callipygus), 'लीडा' (जिसका निर्माता गलती से माइकेल ऐंगेलो को कहा जाता है), बौचर (Boucher) और फ्रैगोनर्ड (Fragonard) के लम्पट चित्र, गोया (Goya) १ *रूबेन्स (Rubens) और वान ओस्टेड (Van Ostade) के नीच चित्र, जोर्डएन्स (Jordaens) की क्रूर कृतियां; मैनेट (Manet) की 'ओलिम्पिया' डेगस (Degas), लुई कौरिंथ (Louis Corinth) तथा अन्य कलाकारों की वासना पूर्ण कृतियां। पतन कराने वाली इस प्रकार की कला को बन्द करके उसकी निन्दा करनी चाहिये।

---

१ * सर पीटर पाल रूबेन्स (१५७७–१६४०) एक प्रसिद्ध चित्रकार था, सन १६२९ में उसने चार्ल्स प्रथम का चित्र बनाया, जिसने उसको 'नाइट' बना दिया।

द्वितीय अध्याय

वास्तु कला

कलाओं में सब से अधिक सामाजिक और प्रतापी वास्तुकला (Architecture) गिनी जाती है। यह उपयोगिता से सौन्दर्य का सम्बन्ध करती तथा सामाजिक सम्बन्ध और एकता को बढ़ाती है। अभिप्राय की एकता, अनुपातों की एक रूप में समानता और काल्पनिक आदर्शवाद महान् वास्तुकला के विशेष चिन्ह होते हैं । बड़े २ प्रतापी महल प्रायः मूर्तियों और चित्रों से सजाए जाते हैं। इस प्रकार आकार निर्माण की तीनों हीं कलाएं सौंदर्य के वासते एक स्थान में मिल जाती हैं।

आपको वास्तुविद्या के इतिहास और उसकी कला संबन्धी समस्याओं का अध्ययन करना चाहिये। जिससे इमारतों का आपको बार २ ध्यान आ जाया करे। उनके छोटे २ चित्रों अथवा

नमूनों को मोल ले लेना चाहिये । १ * पारथेनन (Parthenon) और नाइक का मन्दिर, पैस्टम मन्दिर (Paestum Temple); लिकोन (Lincoln), लिचफील्ड, ऐमीन्स (Amiens), चार्ट्रेस (Chartres), कोलोन (Cologne) और स्ट्रैसबर्ग के गिर्जे; अल्तमश की क़ब्र, देहली की जुम्मा मसजिद, कुतुबमीनार, ताज महल, बुलन्द दर्वाजा, ब्रूनेलेस्चो (Brunelleschi) का २ * फ्लोरेंस के गिर्जे का गुम्बद, रोम में सेंट ३ *पीटर का गिर्जा, कुस्तुन्तुनिया में सेंट सोफिया, ग्रेनाडा में अल्हम्ब्रा, वेनिस में सेंट मार्क का गिर्जा, इस्पहान की मस्जिद, फ़ोर्थ नदी का ४ *पुल, रोम का पैनथियन (Pantheon) नाम का मन्दिर,

---

१ * यह यूनान का राजधानी ऐथेन्स में मिनेर्वा देवी के मन्दिर का नाम है । इस मन्दिर को ईसापूर्व ४४३३ के लगभग फोडियस की देख रेख में बनाया गया था । फीडियस ने इसके अन्दर मिनेर्वा देवा की एक बड़ी सुन्दर मूर्ति की स्थापना की थी । यह मन्दिर २२७ फुट लम्बा और १०१ फुट चौड़ा था । इस मन्दिर के ध्वंसावशेष अभी तक देखे जा सकते हैं । इसके संगमरमर के टुकड़े अभी तक ब्रिटिश म्यूज़ियम में रखे हुये हैं ।

२ * इस गुम्बद का व्यास १३९ फुट और ऊंचाई ३१० फुट है ।

३ * इस गिर्जे के गुम्बद की ऊंचाई ३३० फुट है, किन्तु सका व्यास ३॥ फुट ही है ।

४ * यह पुल इङ्गलेण्ड में एडिनबरा नगर के पास है । इसकी लम्बाई डेढ़ मील है यह सन् १८९० में बन कर तय्यार हुआ था । इसमें बीस लाख पौण्ड लागत लगी था ।

पेरिस का सेकर कौर (Sacre Coeur) नामक गिर्जा, वाशिंगटन का कांग्रेस हाउस, लन्दन में पार्लमेन्ट भवन, न्यू यार्क में वूलवर्थ भवन, स्टाकहोम में स्टैडशसेट (Stadshuset) और कोनसरथसेट (Konserthuset) आदि वास्तुकला के उत्तम उदाहरण हैं।

म्युनिस्पैलिटि के सदस्य के रूप में आपको सभी स्थानीय कार्यों के लिये उत्तमोत्तम भवन बनाने की मांग करनी चाहिये। टाउनहाल, डाक घर, थाना, स्कूल और सार्वजनिक भवन यथा संभव अधिक से अधिक सुन्दर होने चाहियें। सौंदर्य डील डोल और शान पर निर्भर नहीं, वरन् मुख्य रूप से आकार और आंतरिक अभिप्राय पर निर्भर है। हमारे घर, हमारी दुकानें, हमारे स्मृति चिन्ह, हमारे लैम्प, हमारे बर्तन और तसले—यहां तक कि हमारे समीप की प्रत्येक वस्तु सुन्दर होनी चाहिये।

तृतीय अध्याय

आलेख्य कला

सुन्दर आलेख्यकला विशुद्ध आनन्द और भावना का एक साधन है। इस कला ने यूनानी दार्शनिकों; कवियों, व्याख्याताओं और राजनीतिज्ञों की मूर्तियों की रक्षा करके मनुष्य जाति की बड़ी भारी सेवा की है। हम इस बात को नहीं जानते कि बुद्ध और ईसा मसीह का मुख कैसा था; किन्तु हम सुकरात, (Socrates), प्लैटो, और मार्कस औरीलियस की शान्त आकृतियों से भली भांति परिचित हैं। आलेख्य कला ने ही हमको शारीरिक सौंदर्य और शक्ति के आदर्श रूप और साथ ही ज्ञान तथा आचरण सम्बन्धी सुन्दरता के आदर्श को भी दिया। इन आधी पूरी मूर्तियों का ध्यान करने से हम में नियमित रूप से शारीरिक उन्नति करने का उत्साह उत्पन्न होता है। यह मूर्तियां हमारे आत्मा में विश्राम, शान्ति, स्वच्छता और स्थिरता के महकदार रस को टपकाती

हैं। आलेख्य विद्या मुख्य रूप से जीवित रूपों और आकृतियों से सम्बन्ध रखती है। यह नकल और आदर्श को समान परिमाण में मिला देती है। उसकी सामग्री संगमरमर, पत्थर, सेलखड़ी, बालू और मिट्टी का मिश्रण, मोम, लकड़ी, हाथीदांत, धातु और जवाहरात हैं। यह छीनी से बनायी हुई छवि या शरीर में एक आदर्श को उतार सकती है, यद्यपि अन्य कलाओं की अपेक्षा सामग्री में यह अधिक पराधीन है। यह मृतक पत्थर और लकड़ी में जीवित आचरण और विचारों को प्रतिबिम्बित कर सकती है। गति, ऐतिहासिक सभाओं और दृश्यों के विषय में यह कम सफल होती है; इन विषयों में चित्रकारी ही अधिक सफल हुआ करती है। लाओकून (Locoon) और निओबे (Niobe) की वर्ग मूर्तियां अधिक प्रभाव पूर्ण नहीं हैं। आकार, भाव और ढंग में सरलता इस कला की विशेषता है।

वर्तमान आलेख्य कला ने भी हमारे लिये प्रसिद्ध पुरुषों की मूर्तियों को बनाकर सुरक्षित किया है। इस प्रकार की मूर्तियां रूड (Rude) की 'जीनी डे आर्क' (Jeanne d' Arc), बोएम (Boehm) की 'बुनयन' (Bunyan), बेगा (Bega) की 'शिलर' (Schiller), बारबा (Barba) की सर्वैन्टीस (Cervantes), कनोवा (Canova) की 'वाशिंगटन', हौडन (Houdon) की 'वालटेयर' और 'वाशिंगटन', बैरिअस (Barrias) की 'विक्टर ह्यू गो', बारथोलोम (Bartholorre) की रूसो (Rousseau) आदि हैं।

आपको आलेख्य कला के इतिहास को पढ़ना चाहिये और आपको प्रसिद्ध मूर्तियों के चित्र मोल लेकर अपने पास रखने चाहियें। उनमें से कुछ को समय २ पर देखते रहा करो; और कुछ को अपने कमरे में रखो। निम्नलिखित कृतियों पर विशेष रूप से ध्यान दो—

१. यूनानी आलेख्य कला

आलेख्य कला में सबसे उच्च स्थान यूनान और जापान दोनों को प्राप्त है। वह एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्द्धा करती एवं एक दूसरे की प्रशंसा करती हैं। जापान यूनानी आलेख्य कला की त्रुटि को पूरा करता है। पहलवानों और वीर-स्त्रियों की मूर्तियों के लिये हम यूनान के ऋणी हैं। इन मूर्तियों के द्वारा प्रत्येक अखाड़े को सजाने की आवश्यकता है। ऐथीना के ढंग की मूर्ति उच्च कोटि की कला में अनूठी कृति है। सिसिली (Sicily) के सिक्कों की मूर्तियों को आप एक बार देख कर फिर नहीं भूल सकते। वीनस डे माइलो (Venus De Milo), वीनस डे मेडीसी (Venus De Medici), अपोलो बेल्वीडीयर (Apollo Belvedere) और प्राक्सीटीलीज़ (Proxiteles) की हर्म्स (Hermes) का अध्ययन करो। प्राक्सीटीलीज़ की तो एक मात्र प्रामाणिक कृति यही है। ओट्री-कोली (Otricoli) की ज़िउस (Zeus) और एलगिन (Elgin) के संगमरमर के पत्थरों का बार बार अध्ययन करना चाहिये। अपने मरने से पूर्व एक बार यूनान की यात्रा करके पारथेनन

और हर्म्स को अवश्य देख लो। प्रोफेसर एच० एन० फाउलर कहते हैं, "पारथेनन की आलेख्य कला खण्डित रूप में मिलने पर भी मानवीबुद्धि की सबसे बड़ी स्मृति है।" सोफोकिल्स (Sophocles), डेमोस्थीन्स (Demosthenes) तथा अन्य मूर्तियों के चित्र मोल लेकर अपने पास रख लो। सुकरात की मूर्तियों के सुन्दर २ चित्र तो बाज़ार में सब कहीं मिलते हैं।

प्रोफेसर पर्सी गार्डनर (Percy Gardner) के इन शब्दों को स्मरण रखो, "सभी युगों को यूनान का इस लिये ऋणी होना चाहिये कि उसने सरल सौन्दर्य, बुद्धि और उत्तम स्वास्थ्य के आदर्श तत्त्व का कला में उपयोग किया, और उस कला का उसने इतिहास में प्रथम बार मानवी भावों के वास्तविक प्रदर्शक के रूप में उपयोग किया।"

२. जापानी आलेख्य कला

जापानी आलेख्य कला ने अपना भाव बौद्ध धर्म से लिया। उसमें महात्माओं और भिक्षुओं की आदर्श मूर्तियां हैं। उसने धातु और लकड़ी की बुद्ध की अनेक छोटी और बड़ी मूर्तियां बनाई। नारा (Nara) के मन्दिर की विशालकाय कांसे की मूर्ति ईस्वी आठवीं शताब्दी की है। यह संसार के आश्चर्यों में से एक है। यह अपने विशाल आकार के कारण ही आश्चर्य नहीं वरन अपने कलापूर्ण गुणों के कारण भी है। कामाकुरा (Kamakura) में बुद्ध की मूर्ति से उत्पन्न किये हुए भावों का सी० एफ० हालैण्ड ने इस प्रकार वर्णन किया है—

"यह बतलाती है कि वासनाएं चिरकाल से शान्त हो गईं,
बुद्धि में पूर्णतया शान्ति छा गई,
कष्ट और अशान्ति से उत्पन्न हुए सन्तोष से मिली हुई शक्ति को
भुक्त भोगी ही जानता है।
यह हमको समस्त जीवों से प्रेम करने की शिक्षा देता है।
यह हमको कभी समाप्त न होने वाले आनन्द को देती है।
वह यह भी बतलाती है कि दुःख के सम्बन्ध में शोक और भय से
अनन्त शान्ति किस प्रकार निकला करती है।"

इस कला में अशिकौ (श्रद्धा) हो–शो (निर्दोषचारित्र) तथा अन्य बोधिसत्त्वों की मूर्तियां भी हैं। कानून (Kwanoon), दया की देवी और ध्यानी बुद्धों की मूर्तियां उच्च कोटि की आदर्श कृतियां हैं। जे० एफ० ब्लैकर (J. F. Blacker) ध्यानी बुद्धों के विषय में कहता है, "हम उनके लाखों अनुयाइयों के ऊपर प्रभाव विचार करें, चाहे उन पर केवल दार्शनिक अध्ययन की दृष्टि से विचार करें, किन्तु हम ध्यानी बुद्धों के सौंदर्य और प्रताप से प्रभाववित हुए बिना नहीं रह सकते।"

३. गांधार की आलेख्य कला

मध्य एशिया और पश्चिमोत्तर भारत में बौद्ध आदर्शों और यूनानी कला के सम्मिश्रण से इस कला की उत्पत्ति हुई थी। जापानी आलेख्य कला के समान इसमें भी शारीरिक और आचरण विषयक सुन्दरता का मिश्रण किया गया है। विंसेंट ए० स्मिथ का कहना है, "गन्धार की आलेख्य कला सम्बन्धी

अनेक कृतियां भारतीय सन्यासियों के आदर्श को अत्यन्त सफलता पूर्वक भावुकता से प्रगट करती हैं। ......गान्धार की सब से उत्तम कृतियां बहुत सुन्दर और अच्छी कुशलता से बनाई गई हैं। ......गांधार की कला ने पूर्वीय अथवा चीनी तुर्किस्तान, मंगोलिया, चीन, कोरिया और जापान की कला की माता बन कर उच्च कोटि की सफलता प्राप्त की है।" इस प्रकार यूनानी कला का बौद्ध धर्म से विवाह हुआ। जावा के बड़ा बुडर (Bara Budur) नामक स्थान में बुद्ध के जीवन चरित्र की मूर्तियां अध्ययन करने योग्य हैं।

४. आधुनिक आलेख्य कला

यह अत्यन्त खेद जनक तथ्य है कि ईसाई आलेख्य कलाकार ईसामसीह की एक भी सफल मूर्ति न बना सके। ईसामसीह की सब से उत्तम मूर्ति ऐमीन्स (Amiens) के गिर्जे में पश्चिम की ओर बनी हुई है, जिसको 'अमीन्स लोगों का सुन्दर देवता' कहा जाता है। आपको इस मूर्ति का भी फोटो मंगवाना चाहिये। थारवैल्डसेन (Thorwaldsen) की 'क्राइस्ट' नाम की मूर्ति भी अच्छी है। माइकेल ऐंगलो की मूसा (Moses) और दाउद (Dauid) की मूर्तियां क्रमशः बुद्धि और वीरता के सौंदर्य को प्रगट करती हैं। फ्लोरेंस में मेडीसी (Medici) की कब्र पर लेटी हुई चार मूर्तियां आलेख्य कला में उच्च कोटि की शोकान्त कृति को प्रगट करती हैं। इस विषय में उनका अध्ययन करना चाहिये।

वर्तमान युग में श्रम और समाजवाद की आलेख्य कला भी प्रशंसा करने योग्य है। उदाहरणार्थ, ब्रूसेल्स में डे ग्रूट (de Groot) और कैथियर (Cathier) की कृतियां और सब से अधिक कांस्टैंटिन मियूनिअर (Constantin Meunier) की 'बोने वाला' (Souwer), 'लुहार', (Smith), 'जहाज़ से माल उतारने और चढ़ाने के ठेकेदार' (Stevedore) और विभिन्न उद्योग धन्दों में श्रमिकों के कष्टों की मूर्तियांविशेष रूप से अध्ययन करने योग्य हैं।

चतुर्थ अध्याय

चित्रकला

चित्रकला की विशेषता उसके विस्तृत क्षेत्र और प्रचार में है। यह प्रकृति और पुरुष दोनों का ही वर्णन करती है। वह कहानी कह सकती है, ऐतिहासिक दृश्य का चित्रण कर सकती है अथवा समस्त राष्ट्र अथवा वर्ग की प्रशंसा की पात्र हो सकती है। मध्य युग के धार्मिक चित्रों को अशिक्षित लोग 'जनता की बाइबिल' कहा करते थे। इतिहास और जीवन चरित्रों को चित्रकारों की सहायता से सचित्र कराना चाहिये। इस प्रकार हम भूतकालीन घटनाओं को अपने नेत्रों से देख सकते हैं। चित्रकला इस प्रकार आचारशास्त्र की अत्यन्त वेगवाली और उपयोगी संगिनी हो सकती है।

यह अत्यन्त खेद की बात है कि मिट्टी और बालू के

बने हुए बर्तनों पर बनी हुई कुछ चित्रकारी के अतिरिक्त यूनान के सभी चित्र नष्ट होगये।

चित्रकला के इतिहास को पढ़ कर निम्नलिखित कृतियों पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

१—चीन की चित्रकला

चित्रकला में कई एक राष्ट्रों ने उत्तम २ चित्र दिये हैं। चीनी चित्रकला ने अपना भाव बौद्ध धर्म और प्रकृति से लिया है। चीनी चित्रकार काग़ज अथवा रेशम पर ग्रामीण दृश्यों, फूलों, पक्षियों, पौदों और कीड़े मकोड़ों को चित्रित करते हैं। बौद्ध धर्म ने सभी प्राणियों पर दया करने के भाव का प्रचार किया है, चीनी कला में उसका अच्छा प्रतिबिम्ब है। अनेक चित्रो में लोहन (Lohan) कहलाने वाले बुद्ध के शिष्यों को चित्रित किया गया है। वू-ताओ-त्जू नाम के प्रसिद्ध चीनी चित्रकार ने त'आंग वंश के समय में दया और दान की देवी कानयिन के चीनी ढंग के चित्र को बनाया था। ली-लुंग-मिएन ने बौद्ध चित्रों और देहाती दृश्यों को चित्रित किया था। आर० पेट्रूसी (R. Petrucci) का कहना है कि "वह रैफेल (Raphael) जैसे भारी चित्रकार को मुक़ाबला करने के लिये ललकारता है।" मी-केई भी ग्रामीण दृश्यों का अच्छा चित्रकार है। सुंग वंश के समय में चीन में ग्रामीण दृश्यों के उच्च कोटि के चित्र बनाये जाते थे, इनमें प्रकृति सम्बन्धी नवीन विचार भी होते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी में लू-फू ने बेर के वृक्षों के चित्र

अन्य चित्रकारों के साथ बनाये थे। सादगी और स्वतन्त्रता चीनी चित्रकला की विशेषता है। चीनी चित्रकला अपनी गहराई, अपने भेद, अपने रूप सौंदर्य, अपनी राष्ट्रीय और सार्वभौम प्रशंसा में इटली की चित्रकला से तुलना किये जाने योग्य है। ली-लुंग-मिएन का 'सिंह के साथ अर्हत्', वू-ताओ-त्जू का 'क्वानयिन' और 'शाक्यमुनि', माय्वान का ताड़ के वृक्ष और पर्वत की चट्टानों वाली चोटियां' शेंग-मौ का 'बनों में भिक्षु' आदि चित्र विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य हैं।

कुछ जापानी रंगीन चित्र भी अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। उनमें हीरोशीजे, होकुसई आदि के चित्र उल्लेखनीय हैं। उनमें से कुछ के चित्रों को अपने पास अवश्य रखना चाहिये।

२—इटली की चित्रकला

इटली ने अपने साहित्यिक जाग्रति काल में संसार को अत्यन्त उच्चकोटि के चित्र दिये।

ईसाईवाद के लिये फ्रा ऐंगेलिको (Fra Angelico) के चित्र, लिओनार्डो डा विंसी (Leonardo da Vinci) का 'अन्तिम भोज' तथा लुइनी (Luini) का मिलन नगर में ताज़ी अस्तरकारी पर बनाया हुआ चित्र अध्ययन करने योग्य हैं। इटली के ईसाईधर्म सम्बन्धी प्रायः चित्र अनुदारतापूर्ण तथा असत्य हैं। फ्रा ऐंगेलिको एक सच्चरित्र साधु था, वह इसी लिये—अपनी कला के अपूर्ण होते हुए भी—वास्तविक तथ्यपूर्ण चित्र बनाने में

सफल हो गया। सुदामा (Sodoma) द्वारा मौंटे ओलीवेटो (Monte Oliveto) पर बनाये हुये सेंट बेनीडिक्ट की जीवनी के चित्र महत्त्वपूर्ण हैं। जिओटो (Giotto) द्वारा बनाये हुये सेंट फ्रांसिस की जीवनी के ताज़ी अस्तरकारी के चित्र, उसके गुण और दोषों के रूप, और उसके रूपक कथानक तथा रचना दोनों में ही उच्च कोटि के हैं। वह चरित्र सम्बन्धी चित्रों के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ समझा जाता है।

निम्नलिखित चित्र अत्यन्त उच्चकोटि के हैं, इनको रंगीन ही मोल लेना चाहिये। वह चित्र यह हैं—गुइडो रेनी (Guido Reni) का 'औरोरा' (Aurora), पामा वेछिओ (Palma Vecchio) का 'स्टा बारबरा' (Sta Barbara), डोल्सी (Dolci) का 'सेंट सेसीलिया' (St. Cecilia), बोटीसेली (Botticelli) का 'वीनस का जन्म' (Birth of Venus) और * 'प्राइमावेरा' (Primavera); सुदामा (Sodoma) का 'सेंट सेबस्टियन' (St-Sebastian'); रैफेल (Raphael), का 'सैन सिस्टो की कुमारी' (Madonna of San Sisto), माइकेल ऐंगेलो का 'ईसा', ऐम्ब्रोजिओ लौरेनज़ेटी (Ambrogio Lorenzetti) के सियाना (Siena) के प्रतिनिधि भवन में बनाये हुए अस्तरकारी के चित्र, लिओनार्डो डा विंसी का 'मोना लीसा' (Mona Lisa) तथा कुछ अन्य चित्र संग्रह करने योग्य हैं।

---

* इस चित्र का विचार ल्यूक्रेटियस (Lucretius) ने दिया था।

रैफेल का 'ऐथेन्स की पाठशाला' नामक चित्र तो प्रत्येक बुद्धिवादी के घर में अवश्य होना चाहिये। यह यूनानी दर्शनशास्त्र के महत्त्व को प्रगट करता और साहित्यिक जाग्रति की भावना को उपस्थित करता है। रैफेल के 'पर्नासस' (Pernassus) नामक चित्र में कविता की प्रशंसा की गई है। पेरूगीनो (Perugino) द्वारा पेरूगिया (Perugia) में बनाये हुए यूनान और रोम के वीरों और दार्शनिकों के चित्र, लूका डेला रोबिया (Luca della Robbia) द्वारा बनाये हुए प्लैटो, अरस्तू (Aristotle) और विज्ञानों के चित्र उस ईसाई कला की अपेक्षा मनुष्यजाति के लिये कहीं अधिक मूल्यवान् उपहार हैं, जिसमें बहुत से अवांछनीय कथानक भरे पड़े हैं।

३—वर्तमान चित्रकला

वर्तमान चित्रों में डैविड (David) का 'सुकरात की मृत्यु,' हॉफमैन (Hofmann) का 'धनी नवयुवक और ईसा,' एँडर्सन (Anderson) का 'व्यभिचार में पकड़ी हुई स्त्री', माइले (Millais) का 'बढ़ई की दूकान में ईसा', मैडोक्स फोर्ड ब्राउन (Madox Ford Brown) का 'कार्य' (Work) और 'शिष्यों के चरण धोता हुआ ईसा', बीडरमैन (Biedermann) के बुद्ध के चित्र, फ्योरेबैच (Feuerbach) का 'प्लेटो का भोज' (Platos' Symposium), रामनी (Romney) का 'लेडी हैमिल्टन', प्राइसे (Pryse) का 'उषाकाल की ओर' (Towards

(the Dawn), फोस्टो ज़ोनारो (Fausto Zonaro) का नया, टर्की,' जैकब मैरिस (Jacob Maris) के सुन्दर २ ग्राम चित्र, ब्रैंग्विन (Brangwyn) के श्रम चित्र, वैन गोघ (Van Gogh) का 'फसिल काटने वाला,' कैरियर (Carriere) का 'मातृत्व,' जिनर (Ginner) का 'बड़ा भारी करघा' और पिकैसो (Picasso) का 'मां और बच्चा' आदि चित्र संग्रह करने योग्य हैं।

पंचम अध्याय

संगीत

संगीत वास्तव में एक आश्चर्यजनक कला है। यह हमसे बिना परिश्रम किराये ही हमको अपने व्यक्तित्व की सीमा से उठा कर सामाजिक व्यक्तित्व में मिला देता है। मोलियर (Moliere) को तो यहां तक आशा थी कि संगीत समस्त भूमण्डल को प्रेम और शान्ति के बन्धन में बांध देगा। उसने कहा है "यदि सभी मनुष्य संगीत सीख लें तो क्या वह सबको एक विषय पर सहमत करके संसार भर में शान्ति स्थापित करने का साधन न बनेगा ?" संगीत से सभी प्रेम करते हैं। पशु तक उसका आनन्द लेते हैं। यह प्रकृति का बेतार का सीधा सन्देश है। काले पक्षि से लेकर संगीत सम्राट् बीथोवेन (Beethoven) तक सभी संगीत कला के वेत्ता हर्ष तथा जीवन प्रदान करते हैं। वह हमको एक ऐसा आनन्द देते हैं जो अन्य किसी प्रकार नहीं

मिल सकता। संगीत से श्रमजन्य थकावट उतर जाती है। यह जनता में एकरसता तथा मेल बढ़ाता है। यह हमको विपत्ति में धैर्य देता तथा समृद्धि में भावुक बना देता है। यह हमारे खाली समय को सजीव बनाता और हमारे सभी प्रकार के आमोद प्रमोद को परिष्कृत करता है। यह हमारी असभ्यता और नीचता से रक्षा करके हमको उच्च कोटि के मानसिक तथा नैतिक पद में स्थापित करता है। यह हमारे अन्दर उस आन्तरिक राग को जाग्रत करता है, जिससे जीवन का स्वाद बढ़ कर हमारी स्फूर्ति और जीवन शक्ति बढ़ती है। यह हमको उस तुच्छ भौतिक आनन्द से विमुख करता है, जो मनुष्य को सदा धोखा देता है। इससे मनुष्य को उस गहन भावपूर्ण आनन्द का अभ्यास पड़ जाता है, जिसका न तो कभी स्वाद बिगड़ता है और न जिससे कभी जा ऊबता है। लाखों बार सुनने पर भीं उत्तम संगीत किसको बुरा लगता है? जो भाव डेमास्थीन्स (Demosthenes), शेक्सपीयर और विक्टर ह्यूगो के मुख से भी प्रगट नहीं हो सकते वह हमको संगीत द्वारा मिलते हैं। जिस प्रकार संकेत से वाणी अधिक उच्च होती है, उसी प्रकार संगीत वाणी से अधिक उच्च होता है। संगीत अपना प्रभाव हमारे अन्दर सीधा हमारे मौलिक भावों पर डालता है, वह शब्दों अथवा विचारप्रणालियों पर निर्भर नहीं करता। यह अपनी कला के अनुसार हमको उत्तेजित अथवा सुन्न, शान्त अथवा अशान्त, हंसा अथवा रुला, प्रसन्न वा शोकग्रस्त कर सकता है। सन १८४८

ई० में हंग्री की सरकार को रैकोक्ज़ी (Racoczy) के प्रयाण को वर्जित करना पड़ा था। संगीत में ऐसी शक्ति होती है ! प्लैटो और कनक्यूसिअस की सम्मति में तो संगीत आचरण को भी बनाता अथवा बिगाड़ता तथा समाज की सभी संस्थाओं में गुण अथवा दोष उत्पन्न करता है। संगीत का उपयोग सभी सामाजिक घटनाओं में किया जाता है। विवाह, अन्येष्टि संस्कार, धार्मिक पूजन, नृत्य, युद्ध, शान्ति, जीवन और मरण सभी में संगीत का प्रयोग किया जाता है। क्या राग में भावुकता तथा व्याख्या की ऐसी शक्ति होना आश्चर्य जनक नहीं है ? संगीत में सभी मानव भावों, उद्देश्यों और आदर्शों का राग होता है।

आधुनिक संगीत में वह 'संगीतमय अखबारीपन' अत्यधिक मिल गया है, जो सभी वर्ग के धनी और निर्धनों के लिये होता है। यह अविकसित मनुष्य संगीत को आमोद प्रमोद अथवा विह्वलता समझते हैं, ललित कला नहीं। वह रोचक तथा कपकपी उत्पन्न करने वाला शोरशरावा चाहते हैं। कभी २ तो इसको सुना जा सकता है, किंतु आत्मा के दैनिक भोजन के रूप में यह अत्यन्त हानिप्रद है। संगीत के सबसे उच्च कोटि के देश के लिये आप को यदि संभव हो तो बैच (Bach)और बीथावेन (Bethoven) तक जाना चाहिये। यदि आप में सामर्थ्य हो तो एक अच्छा सा ग्रामोफोन बाजा और बहुत से रिकार्ड मोल को ले लो। रेडियो पर अथवा संगीत समाजों में संगीत सुनने के किसी भी अवसर को हाथ से न जाने दो। इस विषय में यदि कुछ

व्यय हो तो कंजूसी मत करो। यदि संभव हो तो किसी बाजे का बजाना स्वयं भी सीख लो। यदि आप अपने आनन्द के लिये घर पर बाजा बजाने लगोगे तो आप विशेषज्ञों की अच्छी तरह प्रशंसा कर सकोगे। संगीत यूनानी शिक्षा का आवश्यक भाग था। प्रत्येक बच्चे को उसकी रुचि के अनुसार किसी न किसी बाजे का बजाना सिखलाना चाहिये। हमारे घर उत्तम संगीतों से गूंजते रहेंगे तो हमारे हृदय भी मधुरता से भर जावेंगे।

संगीत का निर्वाचन करने में आपको बैच, बीथोवेन और ब्रैह्मस् (Brahms) के सूक्ष्म संगीत, वर्दी (Verdi) और मोजर्ट (Mozart) के उत्कृष्ट और आनन्द दायक संगीत, अथवा वैगनर (Vagner) के कुछ अंश को पसंद करना चाहिये। सनसनी करने वाले संगीत का उपयोग आपको केवल कभी २ ही करना चाहिये। भारतवर्ष में आपको विष्णु दिगम्बर और भातखन्डेकर दोनों की ही प्रणाली के संगीत को सीख कर सभी राग रागनियों के स्वरूप को पहचानना चाहिये। यदि आप उनको स्वयं न भी गा सकें तो आप में उनके समझने की शक्ति तो होनी ही चाहिये। संस्कृत के जयदेव कवि के गीत गोविन्द के अतिरिक्त आपको हिन्दी, बंगला आदि भाषाओं के संगीतकारों के ग्रन्थों को भी पसंद करना चाहिये।

षष्ठ अध्याय

नृत्य तथा वक्तृत्व कला

नृत्य को प्रायः निम्नकोटि की कला समझा जाता है। किंतु उसकी गणना उच्च कोटि की कलाओं में करनी चाहिये ; यह संगीत को राग सम्बन्धी गतियों में सम्मिलित करता है। यह हमारी अत्यन्त प्राचीन कलाओं में से एक है। इसका सीखना अत्यन्त सुगम है। इससे सामाजिक जीवन का आनन्द बढ़ जाता है। किन्तु पाश्चात्य देशों के युगल-नृत्य की अपेक्षा समूह-नृत्य अच्छा रहता है। समूह--नृत्य में मुख्य आकर्षण कलापूर्ण आनन्द का रहता है; किन्तु युगल-नृत्य में वासना तत्त्व ही प्रधान होता है। पाश्चात्य ढंग के नृत्य-ग्रह कामवासना और उत्तेजना के प्रचारक होते हैं। यदि नवयुवक लोग कुछ समय साथ २ व्यतीत करना चाहें, तो नृत्य-ग्रहों की अशुद्ध वायु में चक्कर काटने की अपेक्षा देहात में घूमना कहीं अच्छा है। शनिवार

को नियम से नाचने की प्रकृति सभी वर्गों के नवयुवकों के लिये अत्यंत हानिप्रद है। इन्द्रियदमन की न केवल शिक्षा ही देनी चाहिये, वरन् उसको प्रोत्साहित करना चाहिये। कृत्रिम रूप से समय से पूर्व वासना को उत्पन्न मत होने दो। किसी व्यक्तिगत उत्सव में कभी २ नाच लेने में कोई हानि नहीं है। किन्तु सार्वजनिक नृत्यशालाएं अनाचार की साप्ताहिक मात्रा को बेचने के कारण नैतिकता का पतन करती हैं। बारबार और अत्यन्त अधिक मत नाचो। यह धूर्ततापूर्ण प्रकृति है। समूह-नृत्य को विशेष कर खुली वायु में, कला के रूप में प्रोत्साहित करना चाहिये। एक बुद्धिमान् श्रमिक ने मुझसे कहा था, "नृत्य और मद्य ने श्रमिक वर्ग को दासता के बन्धन में बांधा हुआ है।"

वक्तृत्वकला भी एक बड़ी भारी कला है। यह कविता और संगीत के समान ही मस्तिष्क और आत्मा पर प्रभाव डाल सकती है। यह व्यक्तित्व का संदेश है। जनतन्त्र राज्य में प्रसिद्ध व्याख्याता ही राजनीतिक नेता के स्थान को प्राप्त करता है। अतएव यह अत्यन्त महत्व पूर्ण है कि व्याख्याताओं को दर्शनशास्त्र और आचारशास्त्र की शिक्षा दी जावे, जिससे वह अपनी उस आश्चर्यजनक शक्ति का उपयोग स्वार्थ में न करें। यदि वक्तृत्वकला का मार्गप्रदर्शन आचारशास्त्र द्वारा न किया जावेगा, तो वह वास्तव में ही राज्य के लिये अभिशाप बन जावेगी। आपको कुछ बड़े २ वक्ताओं और प्रचारकों के व्याख्यान सुनने चाहियें। यदि आप में रुचि है तो सभाओं में बोलने की शक्ति को बढ़ाने का उद्योग

करो। किसी वाग्वर्द्धिनी सभा के सदस्य बन जाओ। महत्वपूर्ण व्याख्यानों को कण्ठ याद कर लो और फिर उनको अपने ढंग पर सुनाओ। डेमास्थीन्स के 'राज मुकुट' तथा कीनटीलिअन (Quintilian) के 'वक्तृत्व शक्तिकी संस्थाओं' विषयक व्याख्यानों, फ्रांस की राज्य क्रान्ति के वक्ताओं के व्याख्यानों, वेंडेल फिलिप (Wendell Phillip) के दासता के विरुद्ध व्याख्यानों और बर्क (Burke) के वारेन हेस्टिंग्स के विरुद्ध व्याख्यानों को पढ़ो। इनके अतिरिक्त अन्य प्रसिद्ध देशी और विदेशी व्याख्याताओं के व्याख्यानों को भी पढ़ो और सुना करो।

सप्तम अध्याय

कवित्व कला

कविता उदार शिक्षा का आवश्यक तत्त्व है। आपको कविता की अनेक परिभाषाओं के झगड़े में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। कविता की परिभाषा करने की उपेक्षा उसको पढ़ना और उससे प्रेम करना अधिक महत्त्वपूर्ण है। आप फूल अथवा सूर्यास्त की परिभाषा नहीं करते; आप उसका आनन्द लेते हैं। इस विषय में अनेक विद्वानों और कवियों ने उद्योग किया है। एबेनेजर ईलिअट (Ebenezer Elliot) कविता को 'प्रभाव पूर्ण सत्य' और जान स्टुआर्ट मिल ने उसको 'मनुष्य के भावों के रंग में रंगे हुए विचार' बतलाया है। कोलेरिज (Coleridge) ने लिखा है, "कविता विज्ञान विरोधी वह रचना है, जिसका उद्देश्य बुद्धि को आनन्द देना होता है और जो अपने उद्देश्य की पूर्ति उस भाषा का प्रयोग करके करती है, जिसका

प्रयोग हम उत्तेजित अवस्था में स्वाभाविक रूप से ही किया करते हैं।" मैथ्यू आर्नोल्ड (Matthew Arnold) कविता को मुख्य रूप से नैतिकता की दृष्टि से, जीवन की समालोचना समझता था। विलियम हैज़्लिट (William Hazlitt) ने कहा है, "कल्पना और भावों की भाषा का नाम कविता है।" शेली (Shelley) के अनुसार, "कविता भाषा—विशेषकर छन्दोमय भाषा-की उस रीति को प्रगट करती है, जिसकी रचना उस राजसी योग्यता से की जाती है, जिसका सिंहासन मनुष्य की अदृश्य प्रकृति के पर्दे में छिपा हुआ है।"

कविता के प्रशंसात्मक लक्षण

इस प्रकार की सामान्य परिभाषाओं के अतिरिक्त कविता की प्रशंसा में अतिशयोक्तिपूर्ण अनेक वर्णन भी किये गये हैं। आपको उन ईश्वरीय, अध्यात्मिक और भावपूर्ण वाक्यों के प्रवाह में बहने से सावधान रहना चाहिये, जिनमें कुछ लेखक कविता को आकाश में चढ़ा देते हैं। मैं नॉवैलिस (Novalis) के इस कथन से कि 'कविता ही एक मात्र वास्तविक अस्तित्व है" अथवा शिलर (Schiller) के इन कथन से कि "एकमात्र कवि ही वास्तविक मनुष्य है और सबसे उत्तम दार्शनिक भी उसके केवल एक पक्ष का हास्यचित्र ही है" सहमत नहीं हो सकता। फिलिप सिडनी कवि को "दैवी श्वास की शक्ति" बतलाता और कविता को दर्शनशास्त्र अथवा इतिहास से अनन्त ऊपर समझता है। अरस्तू (Aristotle) भी यह कह कर कि "कविता विश्वसंबन्धी

वस्तुओं का अधिक वर्णन करती है, किन्तु इतिहास विशेष बातों का ही वर्णन करता है,” इतिहास की अपेक्षा कविता को अधिक मान देता है। शैली यह कह कर कि “कवि जहां तक उसके असंख्य विचारों, समय और स्थान का सम्बन्ध है, उस नित्य, अनन्त और एकमात्र में भाग लेता है” केवल अध्यात्मिक मूर्खता की बातें ही करता है। वह कहता है कि ‘कविता एक ही साथ ज्ञान का केन्द्रबिन्दु और परिधि दोनों ही है।” प्लैटो ने अपने ग्रन्थ में सुकरात के विषय में कहा है कि वह कवियों को दैवी भावों से ओतप्रोत और सरस्वती देवी के वरप्राप्त मानता था, उसके विचार में कवि अपनी कविता की रचना कला से नहीं, वरन् दैवीशक्ति से करता था। मिल्टन भी ईश्वरवादी था। वह शिक्षा दिया करता था कि अच्छी कविता को ‘उस नित्य आत्मा की प्रार्थना’ की आवश्यकता है, जो “अपंने देवदूतों को अपनी वेदी की अग्नि देकर, उससे अपने कृपापात्रों के ओठों को छुआ कर पवित्र करने के लिये भेजता है।” कारलाइल ईश्वरवाद में अध्यात्मवाद को मिलाते हुए कवि को “दैवी रहस्य और संसार के उस दैवी विचार का ज्ञाता बतलाता है, जो बाह्यजगत् के अंदर छिपा हुआ है।” वी. कज़िन (V. Cousin) भी यह कह कर, “कविता कलाओं में सबसे प्रथम है, क्योंकि उस अनन्त का सबसे उत्तम वर्णन ग्रही करती है” अपने अध्यात्मिक दृष्टि कोण को ही प्रगट करता है। एमर्सन अपने कच्चे अध्यात्मवाद को यह कह कर कवित्वकला में मिलाने का उद्योग करता है कि “कविता वस्तुतत्त्व को

प्रगट करने, पाशविक शरीर को व्यतीत करने और उसके अस्तित्व के कारण जीवन और तर्क का अन्वेषण करने के लिये निरन्तर किया हुआ प्रयत्न है।……कविता की रचना काल के अस्तित्व से भी पहिले की गई थी।" जी. सान्तायन की सम्मति में "धर्म और कविता तत्त्व रूप में एक ही हैं, उनमें विभिन्नता केवल व्यवहारिक कार्यों से सम्बन्ध करने के ढंग में हैं।" किन्तु मेरे विचार में कविता का ईश्वरवाद से ऐसा किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है और सान्तायन का यह वर्णन केवल अन्धविश्वासपूर्ण है।

कविता के निन्दात्मक लक्षण

एक ओर तो ईश्वरवादी, अध्यात्मवादी, आत्म-संतोषी कवि, और अत्यधिक उत्साही समालोचक तल्लीन होकर कविता को "दैवी" "श्रेष्ठतम" "आत्मिक" और "सर्वोच्च" कह कर उसकी स्तुति करते हैं, तो दूसरी ओर कुछ दार्शनिक दूसरी सीमा पर पहुंच गए हैं। वह कविता को नकल का नीच रूप अथवा केवल मिथ्यावाद कह कर उसकी निन्दा करते हैं। प्लैटो अपने ग्रन्थ 'प्रजा तन्त्र' में कवियों को उनके प्राचीन उच्च आसन से खैंच कर घसीट लेता है; वह कहता है "होमर से लेकर अब तक के सभी कवि गुण की मूर्ति तथा अन्य अनेक विषयों की केवल नकल ही करते हैं, किन्तु तो भी वह वास्तविक सत्य को प्राप्त नहीं कर सकते।………नकल करना भी एक प्रकार का आमोद प्रमोद ही है; यह कोई गंभीर काम नहीं है।………नकल

स्वयं बिगड़ी होने के कारण; और दूसरी बिगड़ी हुई वस्तु में मिली होने के कारण, बिगड़ी हुई वस्तुओं को उत्पन्न करती है।" नीटज़े (Nietzsche) भी इन निन्दापूर्ण शब्दों में कवियों को आड़े हाथों लेता है "कवि लोग बहुत झूठ बोलते हैं। वह अत्यंत अल्पज्ञ और कम पठित होते हैं। वह अपने जल को अधिक गहरा दिखाने के लिये गदला कर देते हैं। कवि अभिमान का समुद्र होता है।" पैगम्बर मुहम्मद ने क़ुरआन में कहा है, "गलती करने वाली जनता कवियों का अनुगमन करती है। क्या तू नहीं देखता कि वह प्रत्येक घाटी में घबराये हुये फिर रहे हैं और तब भी उसी को बतलाते फिरते हैं, जिसको वह नहीं जानते ?" भाष्यकार अल-बेदावी इस पर निम्नलिखित कठोर टिप्पणी करता है, "उनकी रचनाएं पागल मनुष्य के कार्यों के समान जंगली हैं, क्योंकि प्राचीन कविता का अधिकांश व्यर्थ की कल्पनाओं से भरा हुआ था।"

कविता का यथार्थ लक्षण

इस प्रकार कविता की एक ओर तो अंधे बन कर अयोग्य रूप से प्रशंसा की गई है और दूसरी ओर उसकी अयोग्य निन्दा कर के उसको गिराया गया है। आप को इन दोनों ही अतिवादियों में से मध्य मार्ग को ग्रहण करना चाहिये। इस बात को समझ लो कि कविता किसी 'ईश्वर' अथवा 'सरस्वती' से नहीं आती है, और न उसका अध्यात्मशास्त्र के उस "एक मात्र", "अनन्त" और "नित्य" से ही कोई सम्बन्ध है। यह भी मनुष्य के ही अनेक

कार्यों में से एक है; इसका सम्बन्ध पृथ्वीतल के मनुष्य से ही है। उसके उपयोग, दुरुपयोग, लाभ और सीमाएं सभी हैं। बुद्धिवाद के तत्वज्ञान के अनुसार कविता का यह सामान्य दृष्टिकोण है।

कविता के अंग

कविता अनिवार्य रूप से वह छन्दोबद्ध वाणी है, जो छन्द, एकरसता और राग के द्वारा आनन्द देती है।

छन्द

कवियों ने अनुप्रास अथवा तुकान्त और अतुकान्त छन्दों अथवा आलाप की पद्धति—दोनों ही से राग में काम लिया है। कविता को छन्द से आरम्भ किया जाता है; किन्तु कविता को कल्पना के प्रकाश में प्रकृति और मनुष्य जाति को प्रकाशित करना, उसकी व्याख्या करना और उसके अर्थ को स्पष्ट करना चाहिये। छन्द कविता का शरीर होता है, किन्तु कल्पना उसका आत्मा होती है। शेक्सपीयर ने उसका इस प्रकार वर्णन किया है—

> "कल्पना अज्ञात वस्तुओं की
> रचना करती है, तो कवि की लेखनी उनको
> वास्तविक रूप देता और वायुमय शून्य को
> स्थानीय निवास स्थान देकर उसका नामकरण करती है।

कल्पना

प्रकृति के अन्दर झांकने और उसकी व्याख्या करने की शक्ति का नाम कल्पना है। यह बुद्धि और भाव की मध्यवर्ती है;

यह विपरीत और परस्परविरोधी दिखलाई देने वालों को भी मिलाकर उनमें एकरसता उत्पन्न कर देती है। यह सत्य के सूक्ष्म रूप का पता लगाती है और गुप्त सम्बन्धों तथा बड़ी २ दूर की समानताओं को खोज निकालती है। यह कवि को योग्य रूप में बुद्धिसम्बन्धी विचारों के वस्त्र पहिनाने योग्य बनाती है। किन्तु कल्पना नियमित और संयोगात्मक ही होनी चाहिये; वह कवि की रचनात्मक प्रतिभा के शासन में ही रहनी चाहिये। उसको अपने को निरे जंगली विचारों, गड़बड़ करने वाली सनसनी और प्रभाव के रूप में नहीं गिरने देना चाहिये।

भाव

छन्द और शक्तिशाली कल्पना के अतिरिक्त कविता का आधार उच्चकोटि का भाव भी होता है। यह भाव, अनुभाव, विचार, उत्साह, प्रभाव, अनुराग, परमानन्द, और परोक्ष प्रेरणा की भाषा है। बुद्धि के साधारण भावों को प्रगट करने के लिये गद्य ही काफी है, किन्तु गहन और प्रभावशाली भावों के लिये कविता ही अधिक उपयुक्त होती है। जब कभी और जहां कहीं भी स्त्री पुरुष का अन्तरात्मा अपने अन्तरतम प्रदेश तक प्रभावित हो कर भावोद्रेक में भर जाता है—उसको कपकपी चढ़ आती है तो उस समय उसके भाव कविता रूप में निकलने लगते हैं। कविता मानव हृदय का शब्द है। मनुष्यों पर जिस किसी वस्तु का प्रभाव अधिक गहन पड़ने लगता है, फिर उनमें प्रतिभा उत्पन्न होते ही, उस वस्तु का भाव उत्तम कविता के रूप में प्रस्फुटित

होकर निकलने लगता है। गद्य मानव भाषा के नित्य के काम पर पहिनने के वस्त्र हैं, जब कि कविता उत्तम २ भोज और पर्वों के अवसर पर पहनने योग्य भड़कीले वस्त्र हैं। मनुष्यजाति के आनन्द के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण सभी मुख्य स्वार्थ और उनकी आधारभूत संस्थाएं अत्यन्त गहन और घनिष्ट प्रेम में पाली जाती हैं। वह गहन भावों को उत्पन्न करती हैं और वही उनकी प्रत्येक समय रक्षा करती हैं। इस प्रकार प्रेम, स्वतन्त्रता, गुण, प्रकृति का सौंदर्य, दया, आत्मबलिदान, तथा अन्य मौलिक विचार और आदर्श सभी युगों और देशों के कवियों को प्रभावित करते रहे हैं।

सौन्दर्य

छन्द, कल्पना और भाव—इन तीनों से ही कविता बनती है, किन्तु सौन्दर्य उसका श्वास है। जिस प्रकार उष्ण देशों के मैदान धूप से भरे हुए होते हैं उसी प्रकार उत्तम कविता सौन्दर्य से भरी होती है। मौलिक सुन्दरता का निर्माण करने की शक्ति के बिना कविता लिखने वाला केवल तुक्कड़ ही कहलाता है, न कि कवि। कवि तो आदि और सर्वोत्तम कलाकार होता है। वह अपने शब्दों के जादू से हमको मोहित कर लेता है।

कविता के लाभ

अब आप पूछ सकते हैं—"कविता से क्या लाभ है ?

१. कविता अपने छन्द के कारण अत्यन्त और सदा रहने वाला आनन्द देती है। छंद भी प्रकृति के रहस्यों में से एक है।

हर्बर्ट स्पेंसर ने कहा है कि 'छंद के नियम' से हम श्वास लेते हैं और उसी नियम के आधीन हमारा हृदय भी गति करता है। कविता, संगीत और नृत्य सब छंद पर ही निर्भर हैं और इन सब कलाओं का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। अजीव प्रकृति में भी लहरों की गति एक प्रकार का छन्द ही है, जो सारे विश्व में फैली हुई है। यह जान पड़ता है कि जीवनदायक और जातिरक्षक होने से ही कविता हमको लोकोत्तर आनन्द का आस्वादन कराती है। यहां तक कि सद्योजात बालक पर भी लोरी की लय का प्रभाव होता है। इस प्रकार कविता को प्राणिविज्ञान में भी अपने साथी मिल जाते हैं। कुछ आधुनिक समालोचकों की सम्मति में कविता का सौंदर्य 'ज' और 'श' अक्षरों की पुनरावृत्ति पर निर्भर है, क्यों कि उनके उच्चारण से मुख में बहुत सा थूक भर जाता है। वह चाहे जैसे होती हो, मनुष्य को आनन्द आना चाहिये। कविता जीवन को आनन्दमय बना देती है। यह हमको कानों के द्वारा आनन्द देती और प्रसन्न करती है। कविता के आनन्द से कभी न तो जी भरता है और न ऊबता ही है; हम को उसका अधिकाधिक रसास्वादन करने की इच्छा होती जाती है। गोएथे ने सत्य ही कहा है—

"जो कोई कविता के शब्द को तुच्छ समझता है,
वह बर्बर है, फिर वह चाहे कोई भी क्यों न हो।"

२. कविता आपकी कल्पना को बल पहुंचाती और आपके आत्मिक दृष्टिकोण को विस्तृत करती है। जिस प्रकार बच्चे

अपने पिता की सब प्रकार की बातें बड़े चाव से सुनते हैं उसी प्रकार आप कवि के भावों, स्वप्नों और कल्पनाओं के संसार में उसकी मधुर कविता के पीछे २ बड़े आनन्द से चले जाते हो। आपका दैनिक जीवन नीरस, तंग और सार्वजनिक है। कवि आपको स्वयं अपने अंदर आपको कल्पना के पंखों पर सवार करके ऊपर उठाता है और आप को प्रकृति और मनुष्य जाति के दर्शन उनके पूर्णतया प्रतापी रूप में कराता है। पीटर बेल (Peter Bell) के लिये बसन्ती गुलाब का फूल बसन्ती होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था; किन्तु हम जानते हैं कि नर्गिस का फूल वर्डस्वर्थ के लिये क्या था, और उसके द्वारा वह हमारे लिये क्या है? बड़े २ कवियों ने हम को नवीन नेत्र दिये हैं, जिनसे हम ओडाइसिअस (Odysseus) राम और बुद्ध के जंगलों में ख़ाक छानने, ईसा-मसीह की शिक्षा, फास्ट (Faust) के पतन और उद्धार, टेल (Tell), सर्टोरियस (Sertorius) और होरैशस (Horatius) की वीरता, ब्रूटस के जनहित के भाव और ज़ोरोस्टर के कार्यों को देखते हैं। हम जाति के कई मंजिल वाले भूतकाल से नैतिक लाभ केवल उन कवियों की सहायता से ही उठा जा सकते हैं, जिनकी कल्पना प्राचीन वंशावलियों और कहानियों की पुरानी अस्थियों में भी प्राणसंचार कर सकती है। निःसन्देह उस कल्पना का दुष्प्रयोग भी किया जा सकता है, जिस प्रकार दांते (Dante) ने उसका विश्व के अस्तित्व वाले प्रदेशों को देखने में अथवा टासो ने बेडौल बर्बर लोगों की रक्तरंजित आकृतियों को भूल

करने से बचाया था । विभ्रान्त मिल्टन ने भी अपने आश्चर्यजनक शैतान की रचना करके कष्टकर, पूर्णतया व्यर्थ और स्वीकार न करने योग्य उपहार हमें दिया । किन्तु बुद्धिमानों की कल्पना द्वारा आप प्रकृति के पारावार रूप की छानबीन कर सकते हैं, अथवा इतिहास के उत्तम दृश्यों और व्यक्तियों के बीच में विचरण कर सकते हैं, अथवा मनुष्यजाति के भावी उत्थान की ओर भी झांक कर देख सकते हैं । जिस प्रकार दूरवीक्षण यंत्र भौतिक नेत्र को सहायता देता है, उसी प्रकार कविता 'मस्तिष्क के नेत्र' की पौष्टिक औषधि है ।

३. कविता आपके भावों को जाग्रत करती और इस प्रकार आपको सब क्षेत्रों में अधिक पूर्ण और गहरा जीवन प्रदान करती है । भाव मानव व्यक्तित्व का केन्द्रीय विद्युत् उत्पादक यंत्र (डाईनेमो) है । यह आपके जीवन में स्वाद उत्पन्न करते और आपको कार्य और नवीन शोध में प्रगतिशील बनाते हैं । बिना प्रबल भावों के आप का जीवन इस प्रकार की ऊजड़ भूमि बन जाता, जिसमें नपुंसक बुद्धिवाद अथवा लम्पट वासना की झाड़ियां और कांटे ही उत्पन्न हो सकते थे । बड़े २ कवि गहन भावों के ऐसे कुवेर होते हैं कि उनका जल कभी समाप्त नहीं होता । वह इस प्रकार के अत्यन्त भावुक स्त्री अथवा पुरुष थे जो अपने हृदय से अत्यन्त अधिक प्रेम अथवा घृणा करते और कष्ट अथवा आनंद भोगते थे। जिस प्रकार भारतवर्ष की प्यासी भूमि वर्षा की सुन्दर बूंदों को चाहती है, उसी प्रकार हमारे संकुचित और

निर्बल आत्मा को–जो शुष्क और झुराने वाली चिन्ताओं से झुलस गये हैं—कवियों के प्रबल हृदयों के शीघ्रतापूर्वक उपजाऊ बनाने वाले प्रभाव की आवश्यकता है। यदि आप में प्रबल भाव और अनुभाव नहीं हैं तो आपको जीवित नहीं कहा जा सकता, आपका अस्तित्व केवल वनस्पतियों के समान है। आपकी जीवन शक्ति का कोष खाली है और उसको भरने की आवश्यकता है। जाओ और सच्चे कवि की शक्तिशाली बिजली की थोड़ी सी करेंट को अपने अंदर पास करा कर अपने व्यक्तित्व को फिर जीवित करो। तब आपका प्रत्येक रोम कूप फिर तरुण हो जावेगा।

४. कविता दर्शनशास्त्र और आचारशास्त्र को आनन्ददायक और प्रभावपूर्ण बनाती है। यह उत्तम आचरण वाले व्यक्तियों का चित्र उपस्थित करती और उनका निर्माण करती है। यह हमारी सहानुति और घृणा को ठीक २ मार्ग प्रदर्शित करती है। प्राचीन काल के बड़े २ राष्ट्रों ने अपने कवियों का बुद्धिमान् आचार्यों के रूप में सम्मान किया है। ऐरिस्टोफेन्स (Aristophanes) अपने ग्रन्थ 'फ्राग्स' में ईस्चाइलस (Aeschylus) के मुख से निम्नलिखित शब्द कहलवाता है—

"वह देखो ! प्रसिद्ध कवियों ने कैसे २ उपहार
गत शताब्दियों में मनुष्य जाति को दिये हैं।"
आर्फिअस (Orpheus) ने मनुष्यको धर्म की शिक्षा दी,
उसके पश्चात् हेसिअड (Hesiod) ने हमको गृहस्थ धर्म,
गार्हस्थ नैतिकता, श्रम और मितव्ययिता की शिक्षा दी।"

आज कल ईरानी लोग अपने महान् कवियों को प्रतिभा-सम्पन्न देवदूत समझते हैं। वह उनके ग्रन्थों के 'शेरों' को उसी प्रकार सुन्दरता से तत्काल ही बोल सकते हैं, जिस प्रकार एक ईसाई पादरी बाइबिल के अंशों को बोल सकता है। सर्वोत्तम कवि भूतकालीन घटनाओं का वर्णन करते और चरित्रचित्रण करते हैं। इस प्रकार वह हमारे भावों पर प्रभाव डाल कर हमारी उन्नति करते और हम को ऊपर उठाते हैं। वह हम को किसी प्रकार का बिना सीधा उपदेश दिये शिक्षा देते हैं। किन्तु सत्य का अनुसरण और उत्तम गुणों को प्राप्त करने में हमको कम से कम शिक्षा देने वाली और दार्शनिक सिद्धान्तों वाली कविता भी बड़ी सहायता देती है। कविता हमारे मस्तिष्क पर हमारे पसंद के विचारों और आदर्शों का चित्र बना देती है। छन्द और लय उन उत्तम विचारों और शिक्षाप्रद श्लोकों अथवा सूत्रों को हमारे स्मृति-पट पर बैठने में सहायता देते हैं, जो भविष्य में हमारे जीवन-पथ के प्रदर्शक होते हैं। जैसाकि गद्य-कवि अलेग्ज़ेंडर पोप (Alezander Pope) का कहना है, "सत्य कविता के वस्त्र पहिन कर अधिक चमकता है।" स्मृति का लय के साथ कुछ घनिष्ट सम्बंध है। दर्शनशास्त्र अथवा शिक्षासम्बन्धी कविता की कुछ पंक्तियों को स्मरण कर लेना कुछ भी कठिन काम नहीं है, जबकि गद्य के उतने ही अंश को स्मरण रखनो कहीं अधिक कठिन कार्य है। चीन की वर्णमाला की पुस्तक को, जो छन्दों में लिखी हुई है, छै सौ वर्ष से चीन के लगभग सभी शिक्षित व्यक्ति कण्ठ याद करते चले आते

हैं। इस प्रकार स्मरण किये हुए छन्द प्रत्येक सभ्य मनुष्य के जीवन में अत्यधिक कार्यकारी सिद्ध होते हैं। जिस प्रकार उत्तरी ध्रुव के यात्रियों को पूर्व यात्रियों द्वारा बनाई हुई सूक्तियां उक्त यात्रा में पग २ पर काम आती हैं उसी प्रकार वह भी एक सामान्य नागरिक के दैनिक जीवन में काम आते हैं। वह स्थायी रूप में बुद्धि का संचित सार हैं। जब हम उनको एकान्त अथवा वार्तालाप में प्रति-वर्ष सहस्रों बार दोहराते हैं तो हम अपने व्यक्तित्व की गलतियों और पाप के भयानक आक्रमण से रक्षा करते हैं। ल्यूक्रेटियस (Lucretius) ने एपीक्यूरस (Epicurus) के धूल जैसे शुष्क सिद्धान्तों के चारों ओर कविता का प्रकाशमान कुण्डल खैंच दिया और केडमॅन (Caedmon) ने नॉर्थम्बरलैण्ड के निर्धन निवासियों को ईसा मसीह की कथा कविता में सुनाई। आप जानते हैं कि पूर्ण-कला के साथ पूर्ण कथा कहने वाले महाकवियों की अपेक्षा नीति वाक्यों और सूक्तियों के कहने वाले कवि होरेस (Horace), भर्तृहरि, सादी, ला फॉनटेन (La Fontaine), सीह चीन (Hsieh Chin), और सू-कुंगटू (Ssu-Kungtu) आदि ही अधिक प्रसिद्ध हैं। यहां तक कि शेक्सपीयर की भाव पूर्ण 'सूक्तियां' भी कम से कम उसके अमर पात्रों से कम लोक प्रसिद्ध नहीं हैं। शिक्षा देने वाला कवि आचरण शास्त्र की कच्ची धातु को छन्द के सांचे में ढाल कर और उस पर अपने नाम की मुहर लगा कर उसको प्रचलित सोने का सिक्का बना देता है। वह एक रचनात्मक कवि नहीं है; किन्तु वह धर्मप्रवर्तकों और दार्शनिकों के निर्माण किये हुए तथ्य

और शुभाचरणको स्थिर और प्रसिद्ध करने में सहायता देता है।

कविता के अध्यय करने का ढंग

इस प्रकार की तो कविता होती है और यह उसके लाभ होते हैं। आपको उस में स्वतन्त्र और घनिष्ट रुचि उत्पन्न करके कविता का अध्ययन आरम्भ करना चाहिये। अपने मस्तिष्क को दिखाऊपने के पुजारी बन कर संकुचित मत बनाओ। जो कविताएं आपके जीवन काल में साहसी आविष्कारकों द्वारा बनाई जावें, उनके कवित्वमय सौंदर्य की ओर से अपने नेत्र बंद मत करो। सभी बड़ी २ कविताएं अपने प्रत्येक प्रकार के रूप में उपहार और वरदान होती हैं। आपको खाली कविता, लय वाली कविता, और यहां तक कि आधुनिक 'स्वतन्त्र कविता' और 'चित्र मय कविता', वीर रस की कविता, गाने योग्य कविता, बिरदावलो की कविता और गज़ल, शोकान्त और हास्यरस की कविता, ग्रामीण गीत और शोक गीत तथा अन्य सभी प्रकार की कविताओं से प्रेम करना चाहिये। फ्रांस की 'प्राचीन' और 'प्रेम सम्बन्धी' दोनों ही प्रकार की कविताओं का आनन्द लो, क्यों कि मनुष्य के आत्मा का सम्बन्ध रैसाइन (Racine) और विक्टर ह्यूगो दोनों से ही है। अपने कानों को "ओडाइसी" (Odyssey) के 'हिलोरों और बिजली की कड़क' का अभ्यासी बनाओ, किन्तु साथ ही साथ बुद्धिवादियों की रविवार की प्रार्थनाओं के सीधे सादे गीतों में भी आनन्द लो। अपने आत्मा को अच्छी कविताओं की सभी तान और चाल सुनने का अभ्यासी बनाओ।

अच्छी और बुरी कविता की परीक्षा

मैं कहता हूं कि 'अच्छी कविता," और इसमें एक कहानी उलझी हुई है। अच्छी और बुरी शराब के समान कविता अच्छी भी होती है और बुरी भी। कविता अच्छी अथवा बुरी किस प्रकार होती है ? प्रत्येक कविता का अपना विषय और रूप होता है। विषय का उसमें वर्णन किया जाता है और रूप उसकी शैली होती है। यदि कविता का विषय अथवा रूप अथवा दोनों ही बुरे हैं तो कविता बुरी है। कभी कविता का विषय उत्तम और रूप घटिया होता है; उस समय वह सुकरात के समान होती है, जो एक अत्यन्त उच्च आचरण का व्यक्ति होने पर भी कुरूप था। दूसरी प्रकार की कविता का रूप प्रशंसनीय होते हुए भी उसका विषय निकृष्ट हो सकता है; उस समय वह ऐल्सीबिएड्स् (Alcibiades) के समान होती है, जो एक सुन्दर रूप वाला दुष्ट पुरुष था। वास्तव में उच्च कोटि की कविता का विषय भी उच्च होना चाहिये और उसका रूप भी पूर्ण होना चाहिये; उस समय वह मिल्टन के समान होती है, जिस में गुण और सुन्दरता दोनों ही थे।

यदि कविता का विषय बुरा है तो उत्तम शैली होने पर भी आपको उसका अध्ययन करने की अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वास्तव में बुरा विषय और सुन्दर शैली दोनों का अत्यंत सत्यानाशकारी संयोग है। इस प्रकार की आकर्षक और गिराने वाली कविता कला के उस विस्फोटकपदार्थ के समान

होती है, जिसको समाज के उच्च आदर्शों और संस्थाओं के नीचे रख दिया जाता है।

कविता के त्याज्य विषय

कौनसा विषय बुरा और हानिप्रद होता है? यह अत्यंत खेद पूर्वक कहना पड़ता है कि बहुत से कवियों ने उपेक्षणीय विषयों का वर्णन उत्तम छन्दों में करके अपनी प्रतिभा को कलंकित किया है। इस प्रकार के कवियों का त्याग करना चाहिये। क्यों कि वह समाज के लिये गद्य-लेखकों की अपेक्षा अधिक भयानक होते हैं। वह चमकदार रंग की खाल वाले विषैले नाग के समान होते हैं। निराशावाद, अन्धविश्वास, निर्दयता, आनन्द-वाद (Hedonism) और दासता बुरे विषय हैं। खेद है! कि अधिकांश कविता ग्रन्थ इतने गन्दे और घृणापूर्ण हैं कि उनका अध्ययन आत्मा पर घृणित मलिनता का प्रभाव हुए बिना नहीं किया जा सकता। कितने खेद की बात है।

१. निराशावाद

निराशावाद पूर्णतया बुरा विषय है। जीवन पहले से ही कष्टों और आपत्तियों से भरा हुआ है। अत एव हमको अंधकार और उदासी उत्पन्न करने वाली कविता की आवश्यकता नहीं है। निराशावादी कवि भी अच्छे आदमी हैं, किन्तु वह मार्ग से भटके हुए हैं। लिओपर्डी (Leopardi) जिसको एलफ्रेड डे मसेट (Alfred de Musset) द्वारा 'मृत्यु का अंधकार पूर्ण प्रेमी' कहा गया है, संक्रामक रोगों से बड़े २ कष्ट पा चुका था। उसकी कविता में उसके अपरिहार्य

दुःख की झलक है। लेनौ (Lenau) तथा घूमने वाले रात्रिचर पक्षि के समान अन्य कवि हमारी शान्ति को भंग करते और हम को दबाते हैं; उनकी कविता में हमारे लिये कोई संदेश नहीं है। जेम्स टाम्सन (James Thomson) के 'भयंकर रात्रि वाले नगर' में शोक गीत, पुश्किन (Pushkin) और शैले के कभी २ फूट निकले हुए भाव, और वैंग सान (Wang Tsan) का रुदन भी झक्की और अयोग्य निराशावाद के मृतक समुद्र के ही फल हैं।

२. अन्धविश्वास

अंधविश्वास भी कवित्वमय प्रतिभा में प्रायः अपने लिये साथी खोज लेता है। उस समय सुन्दर वस्त्रों में सजी हुई राक्षसी के समान छन्द और कल्पना से इसमें बड़ी भारी शक्ति आ जाती है। होमर (Homer) ने ज़िउस (Zeus), हीरा (Hera) तथा अन्य यूनानी देवताओं को जीवन का नया किरायेनामा दे दिया है। मिल्टन ने 'ईश्वर के मनुष्य के प्रति व्यवहार को योग्य ठहराने के लिये एक सुन्दर काव्य लिख डाला है।' कितना दयापूर्ण अंधविश्वास और अभागा उद्योग है! दांते (Dante) ने अपनी रूपक मय कविता के द्वारा कैथोलिक धर्म के जगदुत्पत्ति क्रम को पुष्ट करने में सहायता दी है। रूपक के अस्पृश्य आचरणशास्त्र को कहानी के छूने योग्य अंधविश्वास में डुबा दिया गया है। टेनीसन ने अपने उच्च कोटि के ग्रन्थ 'स्मृति' में 'ईश्वर' और मृत्यु के विषय में अनेक अंधविश्वासपूर्ण विचारों को स्थान दिया है। वह विचार दुर्भाग्यवश उसके मधुर संगीत के द्वारा भावी सन्ततियों को मिलते

रहेंगे। कौरा (Koura) के उमर इब्न अल-फ़रीद ने अपनी प्रतिभा का रहस्यवाद में ही अपव्यय किया। प्रकृति के अनेक कवि इस विषय में हानिप्रद पापी हैं। विक्टर ह्यूगो ने प्रकृति की एक वाद्ययंत्र से और कवि की उसको बजाने वाले से तुलना की है। उसने लिखा है "ऐ पवित्र कवियों! कला सूक्ष्म स्वर है जिसको प्रकृति रूपी विशाल पियानो आपकी शक्तिशाली अंगुलियों से दबाये जाने पर निकालता है।" किन्तु यदि उक्त कवि ईश्वरवादी, वेदान्ती अथवा बहुदेवतावादी है तो उसका संगीत निश्चय से उतना ही घातक होगा, जितना जलपरियों का वह स्वर, जो जहाज़ी यात्रियों को उनके चंगुल में फंसा देता था। आपको सदा यह पूछना चाहिये, "यह कवि प्रकृति की व्याख्या किस प्रकार करता है?" "क्या वह आपत्तिरहित और बुद्धिमान् मार्गप्रदर्शक है?" वर्ड्स्वर्थ का बहुदेवतावाद प्रसिद्ध "टिंटर्न ऐबे (Tintern Abbey) के ऊपर लिखी हुई पंक्तियों" में अपने को अध्यात्मिक राल के रूप में प्रगट करता है। वाल्टर स्काट (Walter Scott) हमको इस पूर्णतया सनकभरी और बच्चों जैसी बात पर विश्वास कर लेने को कहता है कि कवि की मृत्यु पर प्रकृति शोक करती है और उसका 'प्रेत कार्य करती है।" विक्टर ह्यूगो पर्वतों को देख कर 'अनन्त' और 'असीम' के विषय में गला फाड़ २ कर चिल्लाने लगता है, इस चपल अध्यात्मिक व्यक्ति को इस से कम में संतोष ही नहीं होता। जलालुद्दीन रूमी भी अद्वैतवाद की माया मोह के चक्कर में पड़

जाता है। गोएथे प्रकृति को 'ईश्वर का जीवित वस्त्र' समझता है। उसका कांटेदार मार्ग उससे प्रकृति की असत्य और धोखा देने वाली व्याख्या करा लेता है। राबर्ट ब्राउनिंग (Robert Browning) अपने न अच्छा होने योग्य एकेश्वरवाद के रोग के कारण प्रकृति को ठीक २ रूप में देख ही नहीं सकता। वह सब कहीं 'ईश्वर' ही ईश्वर को देखता है, और इसी लिये वह प्रकृति के लिये अंधा है। आपको प्रकृति के इस प्रकार के अंधविश्वासपूर्ण उच्च पुजारियों के विरुद्ध सावधान रहना चाहिये। ऐसी कविताओं को ही पढ़ो जो साधारण हों और जो प्रकृति का वर्णन सीधे सादे शब्दों में करती हों। इस प्रकार का वर्णन कालीदास, शेक्सपीयर, क्रैबे (Crabbe), चीनी और जापानी कवियों के ग्रन्थों में ही मिलेगा। यह लोग कला को साधारण बुद्धि और बुद्धिवाद से मिश्रित करते हैं। कविता में ईश्वरवादियों, अध्यात्मवादियों, और तर्कहीन रहस्यवादियों से सावधान रहो।

३. निर्दयता और घृणा

निर्दयता और घृणा उत्तम कविता को बहुत कुछ बिगाड़ देती हैं। बड़े २ कवियों ने विभिन्न राष्ट्रों और धर्मों में होने वाले युद्धों का, उनके अनिवार्य संकटों और रक्तपात का बड़े २ प्रतापी शब्दों में वर्णन करने में ही अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है। उन्होंने घृणा के गीत भी गाए हैं। इस प्रकार की सभी कविताओं को अब सदा के लिये भूल जाना चाहिये। क्योंकि अब आप राष्ट्रसंघ

(League of Nations) का समर्थन करते हैं और पृथ्वी पर लगातार शान्ति स्थापना के लिये उद्योग करते हैं। युद्ध करने वाली देशभक्ति और जातीय अभिमान के प्राचीन आदर्श ने होमर की 'ईलियड', वर्जिल (Virgil) की 'ईनियड' (Æneid), कैमोएस (Camoes) के 'ओस ल्यूसिएडस' (Os Lusiadas) और फ़िरदौसी के 'शाहनामा' जैसे भयानक उत्तम २ ग्रन्थों को प्रकट किया है। 'महाभारत', टासो (Tasso) के 'जेरुसलेम की स्वतन्त्रता' (Gerusalemme Liberata), 'नाइबेलंजेनलाइड' (Nibelungenlied) और 'चैनसन डे रोलैण्ड' (Chanson de Roland) जैसे काव्यों में योद्धाओं, राजनीतिक दलों और धर्मों के रक्तरंजित युद्धों का वर्णन किया गया है। युद्ध और विजय की इस सारी कविता को उस प्रकार पृथ्वी में अधिक से अधिक गहराई पर दाब देना चाहिये जैसे प्रॉस्पेरो (Prospero) ने अपनी पुस्तकों को दाब दिया था। आपको इस प्रकार के वर्णन पढ़ने में आनन्द नहीं मानना चाहिये कि डायोमीड (Diomede) ने किस प्रकार अपने भाले को फीजियस (Phegeus) की छाती में मारा, अथवा किस प्रकार अर्जुन ने अपने शत्रु कर्ण को बाण से मार दिया। होमर की 'ईलिअड' (Iliad) अवश्य उन मनुष्यों को निर्दय और निष्ठुर बना देगी, जो उसके निम्नलिखित प्रकार के वर्णनों को पढ़ेंगे, "प्रथम नृपति ऐगामेमनन (Agamemnon) ने हैलीज़ोनियन (Halizonians) लोगों के बड़े भारी सरदार होडिअस (Hodius) को उसके रथ पर

से डाल दिया। किन्तु वह शीघ्र ही दौड़ता हुआ वापिस आया। अब ऐगामेमनन ने उसके कंधों के बीच में एक ऐसा भाला मारा जो चीरता हुआ उसके सीने में निकल आया। उस समय उसके गिरने से पृथ्वी पर बड़ा भारी धड़ाका हुआ।......इसके पश्चात् आईडोमेनुअस (Idomeneus) ने रथ पर बैठे हुए फेस्टज (Phaestus) को मारा। आईडोमेनुअस भाला चलाने में बड़ा सिद्ध-हस्त था। उसने अपने लम्बे बर्छे से उसके दाहिने कन्धे में चोट की। वह रथ से गिर पड़ा और उस पर घृणापूर्ण अन्धकार छा गया।......ऐट्रिअस (Atreus) के पुत्र मेनेलास (Menelaus) ने अपने तेज़ भाले से स्कैमैनड्रिअस (Scamandrius) को मार डाला।......मेनेलास ने उसको घायल कर दिया। उसने अपने सामने भागते हुए की पीठ में कंधों के बीच में भाला मारा। भाला चीरता हुआ सीने तक निकल आया। वह पट गिर पड़ा, और उसकी भुजाएं उसके ऊपर तड़पने लगीं।......मेरीअन्स (Meriones) ने फेरीक्लास (Phereclus) को जान से मार डाला, जिसके उसने कूल्हे पर चोट की। किन्तु भाला हड्डी को छेदता हुआ मूत्राशय तक पहुंच गया। वह शोक करता हुआ घुटनों के बल गिर गया और मर गया।" आदि आदि।

जो कविता कसाईख़ाने का दृश्य उपस्थित करती है और हत्या तथा रक्तपात के भयंकर दृश्य में रंगरेलियां मनाती है वह वास्तविक कला नहीं है, वरन् वह मानव प्रकृति के सब से

नीच और सबसे बुरे तत्त्वों से निकली हुई रोग और दुःख उत्पन्न करने वाली वाष्प होती है। वास्तव में तो शेक्सपीयर के 'हैमलेट' नाम के नाटक के अंतिम दृश्य में दिखलाई जाने वाली आहुति भी दर्शकों पर पाशविकता का ही प्रभाव डालेगी। आश्चर्य है कि क्या प्राचीन हिन्दू लोग रंगस्थल पर मृत्युका दृश्य दिखलाने के विरोधी थे; नहीं उनकी भी यही इच्छा थीकि सभी नाटक सुखान्त हों। इस प्रकार उन्होंने शोकान्त रचना को साहित्य की दृष्टि से अयोग्य ठहरा दिया, किन्तु संभवतः जो कुछ उन्होंने कला में खोया था वह नम्रता और सुन्दरता में जीत लिया। निर्दयता और कला दोनों का एक साथ सामन्जस्य नहीं हो सकता। अतएव आपको दान्ते (Dante) के उस 'इनफर्नो (Inferno) के विरुद्ध भी सावधान रहना चाहिये, जिसमें राक्षसी यन्त्रणा और कष्ट के कल्पित दृश्यों का वर्णन करने में ही उच्चतम कला का उपयोग किया गया है। इस प्रकार के भयानक स्वप्नों से पापी लोग पश्चात्ताप तो कदापि न करेंगे, वरन् पशु बन जावेंगे।

घृणा की कविता का भी सदा के लिये त्याग करना चाहिये। 'देशभक्ति पूर्ण' कविताएं प्रायः अन्य राष्ट्रों के विरुद्ध अभिमान, असत्य, और रक्तपात की धमकियों से भरी होती हैं। विभिन्न 'राष्ट्रीय गान' इस युग में व्यर्थ की मूर्खता हैं। 'इंगलैण्ड,' 'फ्रांस' और 'हालैण्ड' आदि के पुराने विषयों के प्राचीन कवित्व

सम्बन्धी नमूनों को किसी साहित्यिक प्रदर्शनालय में जमा कर देना चाहिये। 'ब्रिटेन का शासन,' विक्सर ह्यूगो का 'वाटरलू' लिओपर्डी की 'सम्पूर्ण' और 'इटली,' हेनली का 'इंगलैण्ड' आदि जैसी कविताओं को जीवित मत रखो। इस प्रकार के गायकों ने पृथ्वी भर में अजगर को दांतों को ब्राडकास्ट के समान बोया है। इस प्रकार की लुटेरी और हत्यारी कविताओं को दूर ही रखो! राष्ट्रों के अन्दर होने वाले युद्धों का उत्तरदायित्व 'देशभक्त' कवियों पर है, क्यों कि वह नवयुवकों के मस्तिष्क को खराब करते हैं। एक जंगली गीत दस लाख गोलियों से भी अधिक हत्या करता है। लेखनी संगीनों से भी अधिक छेद सकती है। अतएव आपको सब प्रकार की राष्ट्रीय कविताओं का दृढ़ता से पूर्ण विरोध करना चाहिये। आओ, अब हम सब मिलकर केवल मनुष्यता और मनुष्यजाति की एकता के गीत ही गावें।

अत्याचारपीड़ित राष्ट्रों और वर्गों की मुक्ति के आन्दोलनों के लिये बनाये जाने वाले कवित्वमय साहित्य में भी घृणा के मनहूस गीतों को मत सुनो। यदि कुछ तुच्छ आत्मा वाले न्याय की मांग में सफलता प्राप्त करने के लिये घृणा प्रदर्शित करना चाहें, तो वह गद्यमें ही प्रदर्शित करें। कविता उच्चतम और सबसे प्रतापी मानव प्रभावों की पवित्र गाड़ी है। यह अस्थायी शत्रुता और घृणा के कीचड़ में से नहीं खींची जा सकती। जार्ग हरवेग (Georg Herwegh) अपने क्रोध और निराशा में चिल्ला पड़ा था, "प्रेम हमको स्वतन्त्र नहीं कर सकता। ऐ घृणा! तू उठ,

और हमारी बेड़ियों को तोड़ डाल।" यदि इस प्रकार के भावों को आवश्यक समझा भी जावे, तो इनको कविता में प्रकाशित न किया जावे, इस प्रकार की कविता कान और आत्मा दोनों को हानि पहुंचाती है। कविता को राष्ट्रों, वर्गों अथवा व्यक्तियों में घृणा और निर्दयता के कठोर शाप से अपवित्र मत करो। कविता के श्वेत ध्वजा वाले मन्दिर के द्वार पर लिखा है, "इस में प्रवेश करने वाले सब प्रकार की घृणा का त्याग कर दें।"

४. आनन्दवाद और इन्द्रियप्रियता

आनन्दवाद और इन्द्रियप्रियता भी एक सच्चे कवि के लिये अयोग्य विषय हैं, वह तो आपके ऊपर को चढ़ते समय सदा यही चिल्लाती है "अभी और चढ़ो।" उसको तो आपको आत्म-शासन और संयम की शिक्षा देनी चाहिये। उसको तो आपमें बलिदान और सेवा का मंत्र फूंक देना चाहिये !। यदि एक गायक अपने संगीत के द्वारा मनोहारी रंगों का चित्रण करता और आपकी कल्पना को बेचैन करने वाली और लुभावनी मूर्तियों से भड़का कर आपकी काम-वासना की अग्नि में इंधन डालता है तो वह एक भड़वा है, कवि नहीं। कविता शुद्धि और फुर्ती की दासी है। उसको आत्म-घात के दोष और इन्द्रियों के दास पाशविकतापूर्ण आलस्य की सेवा में भेज कर वेश्या मत बनाओ। मैं आपको उम्मर खय्याम की रुबायत, बैरन (Byron) के 'डान ज्वान' भर्तृहरि के शृंगार शतक, मार्शल (Martial) की अनेक गंदी कविताओं, इब्न-अल-हब्बरिय्या की कविताओं, ऐनाक्रिओन (Anacreon) की

कविताओं, मुस्लिम इब्न अल-वलीद के शराब के गीतों, ली-ताई-पो के आचरण बिगाड़ने वाले गीतों, इटली और फ्रांस के साहित्यिक जाग्रति काल के हास्यरस के नाटकों, और इंगलैण्ड में आरोग्यता कोदुर्बल करने वाली कविताओं के विरुद्ध चेतावनी देता हूं। उमर ख़य्याम का सुधरा हुआ और आलसी आनन्दवाद प्रभावशाली यौवन के नैतिक तन्तुओं को अवश्य ही निर्बल करेगा। और इस प्रकार धीरे२ निश्चय से ही आत्मिक पतन के मार्ग पर ले जावेगा। रोटी, शराब, एक प्रेमिका और बेहोशी सच्चे और अभिलाषी आत्मा को संतुष्ट नहीं कर सकते। ख़य्याम का सम्मान गणितज्ञ के रूप में करना चाहिये, न कि कवि के रूप में। स्त्री और पुरुष सभी ही आनन्दवाद की झुकी हुई सतह के ऊपर से ठोकर खाने और फिसलने के लिये अत्यन्त पतनोन्मुख होते हैं। किन्तु जन्म के समय उस पर खड़े सभी होते हैं। जिस प्रकार मनुष्य जाति अपने पशु जीवन से उन्नति करती २ अब अधिक सभ्य बनती जा रही है, उसी प्रकार उनको अपनी उन्नति के लिये उत्तम कविता की आवश्यकता है। उस नीच कवि को धिक्कार है, जो उनको ऊपर न उठा कर नीचे को धक्का देता है। इस प्रकार के गंदे और रोगजनक कवि की रक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। कुस्तुन्तुनिया के गिर्जे के नेताओं ने सैफो (Sappho) के वासनापूर्ण और कामी गीतों को नष्ट कर दिया था। क्या हमने भी किसी ऐसी कविता को नष्ट किया है ?

५. चापलूसी

कुछ कवि अपनी प्रतिभा को वेतन अथवा उपहार के

लिये बेच दिया करते हैं। स्वेच्छाचारिता, ज़मींदारी और पूंजीवाद ने विश्व के इतिहास में भिन्न २ समय में अनेक देशों पर अपना प्रभाव स्थापित किया है। कुछ कवियों ने स्वेच्छाचारियों, ज़मींदारों और पूंजीपतियों की प्रशंसा के गीत गाने के ही नीच व्यवसाय को अपना लिया है। इस प्रकार की घृणित चापलूसी से इन उपहारप्राप्त कुत्तों को कुछ मांस के टुकड़े और हड्डियां मिल जाती हैं। इस प्रकार सरस्वती देवी को सुनहरी ज़ंजरी में बांध कर उसके बदले में गंदे पैसे को लिया गया। अल-ग़ाज़ी, मुतनब्बी, अनवरी, मीनूचीह्री, हिलाली और ख़ाकानी जैसे चापलूसों की बनाई हुई घृणापूर्ण प्रशंसात्मक कविताएं केवल बिकरी की जाने वाली घृणायोग्य चापलूसी से भरी हुई हैं। हिलाली ने सुलतान के वज़ीर से कहा था, "आपके दर्शन के प्रताप ने मुझे पृथ्वी में गाड़ दिया है; मैं अन्तिम निर्णय वाले दिन तक फिर कभी न उठूंगा।" मीनूचीह्री (Minuchihri) को कम से कम अपने पतन का ध्यान था, क्योंकि उसने लिखा है, "मेरा समालोचक कहता है तू बादशाह की प्रशंसा क्यों किया करता है मैं उत्तर देता हूँ, क्या लोमड़ियों को सिंह की प्रशंसा नहीं करनीं चाहिये ?" फैजी ने तो अकबर को अत्यन्त ही मूर्ख बनाया। उसने लिखा है, "यद्यपि बादशाह लोग पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिबिम्ब हुआ करते हैं, किन्तु अकबर तो परमात्मा के प्रकाश से ही उत्पन्न हुआ है। फिर हम उसको प्रतिबिम्ब किस प्रकार कह सकते हैं ? आप अकबर के दर्शन करें तो

आपने ईश्वर के दर्शन कर लिये ।" धन का दास बन कर प्रतिभाशाली कवि का इतना भारी पतन हो सकता है ! रोम में भी मार्शल खुशामदी लल्लोपत्तो से ही अपनी आजीविका चलाता था । उसने यहां तक घोषणा कर दी थी कि वह जूपीटर की अपेक्षा तो डोमिटियन (Domitian) के साथ भोजन करना अधिक पसंद करेगा; क्योंकि इतनी स्वतन्त्रता किसी सम्राट् के राज्य में नहीं मिली । ली-ताई-पो (Li- Tai-Po.) नाम का चीनी कवि भी राज्य दरबार का बिगड़े दिल प्रेमी था । इस प्रकार के सब लोभी कवि विश्वासघाती होते हैं । उनके मक्कार कवित्वप्रवाह को नष्ट होने के लिये छोड़ देना चाहिये ।

सभी राष्ट्रों में आत्मा को नष्ट करने वाले ऐसे विषय पाये जाते हैं । किन्तु बहुत से विषय अत्यन्त उत्तम और प्रतापी भी होते हैं । उच्च कोटि की कविताओं में उन्ही का वर्णन किया जाता है ।

कविता पढ़ने की सर्वोत्तम प्रणाली

कविता को पढ़ने और उसका पूर्णतया आत्मिक लाभ उठाते हुए आनन्द लेने के लिये आपको प्रतिदिन कुछ पंक्तियों को इस प्रकार पढ़ने का अभ्यास डालना चाहिये, जिस प्रकार आप दैनिक ध्यान किया करते हैं । इससे आपको दैनिक शक्ति मिलेगी । इसके अतिरिक्त आपको प्रति सप्ताह कुछ समय बड़ी २ कविताओं को पढ़ने के लिये भी निकालना चाहिये । कविता को जोर २ से बोलकर पढ़ना चाहिये; उसको गद्य के

समान गुमसुम होकर नहीं पढ़ना चाहिये। कविता केवल कानों के लिये ही नहीं होती, वह आंखों और मस्तिष्क के लिये भी होती है। अनेक कविताओं को कण्ठ याद कर लो और उनको यथाशक्ति बारबार बोला करो। जो मनुष्य दो चार कविताओं के अवतरण नहीं दे सकता वह खाली जेब वाले निर्धन यात्री के समान होता है। अपनी रुचि की कविताओं को एक नोट बुक में नोट करते जाना अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। इस प्रकार आपका घर शहद की मक्खी के छत्ते के समान हो जावेगा, जिसमें आपके द्वारा अनेक फूलों में से एकत्रित किया हुआ सरस्वती देवी का मधु होगा। आपको शीघ्र ही पता चल जावेगा कि आप किन २ कविताओं को अधिक पसंद करते हैं और किन कवियों से सबसे अधिक प्रेम करते हैं। उन कवियों के पास बारबार जाकर उनसे शिक्षा लो और उस को पूर्णतया हृदयंगम कर लो। कविता चाहती है कि आप सावधानी से अध्ययन, मनन और निदध्यासन करें। एक कवि की कविताओं का बार बार पाठ करने से आपका आत्मा कवि के संगीत में उसके साथ ही रम जावेगा। अपने समय को घटिया कुकवियों में नष्ट मत करो। कविता में सबसे उत्तम कवियों का ही अध्ययन करना चाहिये। घटिया कविता कानों को कष्ट देती है और आत्मा को थकाती है। किसी कवित्व समिति अलवा साहित्य सभा के सदस्य बन जाओ, और कविता में नवीन से नवीन हुई उन्नतियों से अपना सम्बन्ध

बनाये रखो। जिन सभाओं में उत्तम कविताएं सुनाई जाने वाली हों उनमें अवश्य जाओ। इस प्रकार आप सब से उत्तम आनन्द का उपभोग कर सकते हो। यदि आपके नगर में इस प्रकार की सभाएं न होती हों तो उनका प्रबन्ध करो। इस गद्ययुग की यह बड़ी भारी आवश्यकता है कि कविताओं को सुनाया जाता रहे। जनता को उत्तम से उत्तम कविता सुनाओ, इससे उनके नीरस अथवा ख़ब्ती जीवन में हर्ष, शान्ति, प्रेम और आशा का संचार होगा। एक यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर ने मुझसे स्वीकार किया था कि उसने दस वर्ष से कविता की एक भी पंक्ति नहीं पढ़ी। मैंने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि तुम इस प्रकार कैसे जीवित रहते हो।" एक और मित्र ने मुझसे कहा, "मैं राजनीति का इतना अधिक अध्ययन करता हूं कि मुझको कविता के लिये समय ही नहीं मिलता।" मैंने उत्तर दिया, "तो आपकी राजनीति किसी काम की नहीं हो सकती।" इस प्रकार के एकपक्षीय मनुष्य के समान मत बनो।

कविता का अध्ययन आपको अपनी भाषा से आरंभ करना चाहिये। कविता आश्चर्य जनक रूप से स्वदेशी वस्तु है। इसका पूर्ण आनन्द मातृ-भाषा में ही लिया जा सकता है। फल के समान इसमें बड़ा होने और अपने घर के वृक्ष पर पकने से ही अधिक स्वाद आता है। अपने साहित्य में आपको जितनी भी अच्छी से अच्छी कविता मिल सके पढ़ डालो। यह आपका प्राथमिक

कर्तव्य है। यह मूर्खता और बुरी बात है कि *अंगरेजों के बच्चों को अंग्रेजी कविता से घनिष्ट परिचय हुए बिना ही ग्रीक (यूनानी) और लैटिन के अष्टपद छन्द रटवाये जावें। कविता का प्रेम उसी भाषा में उत्पन्न होकर दृढ़ होना चाहिये, जिसको आप घर पर बोलते हो। इसके पश्चात् यदि आपने कोई विदेशी भाषा सीखी है तो आप उसकी कविता का आनन्द भी ले सकते हो। अन्त में आप घूमते हुए उन बड़े २ विदेशी कवियों को भी जाकर प्रणाम कर सकते हैं, जिनके अमूल्य ग्रन्थ आपको अनुवाद रूप में ही मिल सकते हैं। पहिले आप उसके एक ठीक २ गद्य अनुवाद को पढ़ डालो, जिससे आपको ठीक ठीक पता हो जावे कि कवि ने वास्तव में क्या लिखा था। इसके पश्चात् आप उसके पद्यानुवाद को पढ़ सकते हैं। गद्य के अध्ययन से आपको मूल के सभी विचारों, कथानकों, दृश्यों और अलंकारों का पता लग जावेगा। उस अनुवाद में केवल छन्द और स्वर के प्रभाव की ही त्रुटि होगी; किन्तु यह बातें आपको उसी अनुवादक के अनुवाद में मिलेंगी, जो स्वयं भी एक बड़ा कवि हो। किन्तु ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं। प्रायः अनुवादक केवल चतुर और विद्वान् कविता करने वाले होते हैं। विदेशी कविताओं के कुछ 'अनुवाद' मूल से

इंगलैंड में इस प्रकार की शिक्षा इतनी सर्वसामान्य नहीं है, जितनी भारतवर्ष में है। यहां तो बिना मातृ भाषा की अच्छी शिक्षा पाये दस वर्ष तक केवल अंग्रेज़ी ही पढ़नी पड़ती है और तब भी वह उच्च इंगलिश कवियों की कविता समझने योग्य नहीं आती।

अत्यन्त भिन्न होते हैं। आप पद्यानुवाद भी पढ़ सकते हैं, किन्तु स्मरण रक्खो कि वह सदा ही मध्योन्नत अथवा खोखले दर्पण के समान होते हैं और निश्चय से मूल के रूप को बिगाड़ देते हैं।

कविता की पुस्तक को पसंद करने की विधि

अपने अध्ययन के लिये कविता का निर्वाचन करने में पहिले विषय का निर्वाचन करो। आपत्तिजनक विषयों वाली सभी कविताओं को छोड़ दो। यदि विषय आपको पसंद हो तो आपको शैली पर विचार करना चाहिये। अनेक प्रसिद्ध कविताएं उत्तम शैली पर लिखी हुई हैं। गन्दी और कलाहीन कविताएं कभी प्रसिद्ध नहीं होतीं। इसके अतिरिक्त, इसका भी पता चलाओ कि क्या कवि ऐसा सच्चा और उत्साही था कि उसके कार्य उसकी कविताओं के उपदेशों से मिलते जुलते हैं? यदि यह पता लग जावे कि कवि का जीवन चरित्र उसके उपदेश के अनुसार ही था तो कविता का मूल्य और उसकी शक्ति हजारगुनी बढ़ जाती है। हम 'यूनान के द्वीपों' (The Isles of Greece) का वर्णन धार्मिक प्रार्थना के रूप में पढ़ते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि बैरन (Byron) की मृत्यु माइसोलोंघी (Missolonghi) में हुई थी। विक्टर ह्यूगो का 'चैटीमेंन्ट्स' (Chatiments) प्रजातंत्र का साहित्यिक संस्मरण समझा जाता है, क्योंकि उसकी रचना देश निर्वासन की स्थिति में की गई थी। तुलसीदास की कविता धार्मिक सन्त के संदेश रूप में बिल्कुल सत्य दिखलाई देती है। सू-कुंग-टू की कविता का यह सुनकर हम पर बहुत प्रभाव

पड़ता है कि वह वास्तव में साधु हो गया था। कविता जिस समय जीवित आत्मा की सच्ची पुकार होती है तो अधिक शक्तिशाली हो जाती है। जिस कवि के ग्रन्थ को आप पढ़ें उसके जीवन चरित्र को अवश्य पढ़लें। जब आपको पता लगेगा कि उसकी जीवन घटनायें उसकी कविता के आदर्श से गिरी हुई नहीं थीं तो आपको उसके जादू जैसे शब्दों से अधिक आनन्द और लाभ होगा। सामोन्य नियम यह है कि यदि कविता का विषय और शैली दोनों ही उत्तम हैं तो वह उच्चकोटि की है। और यदि स्वयं कवि भी उच्च आचरण वाला है तब तो उसका ग्रंथ मनुष्यजाति के लिये अमूल्य निधि है।

पढ़ने योग्य कविताएं

अब आपको कुछ पढ़ने योग्य बड़ी २ कविताओं के विषय में बतलाया जाता है। यूनान के सब से बड़े गीत-कवि पिण्डर (Pinder) ने अपनी प्रतिभा का उपयोग सौन्दर्य, बल और व्यायामों में ही किया है। इस विषय में वह अपने ढंग का अनोखा ही है। जिस प्रकार आलेख्यकला में माईरन (Myron) और पॉलीक्लाइटस (Polyclitus) का स्थान अत्यन्त सम्मानपूर्ण है उसी प्रकार पिण्डर की रचना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी जाती है। यह हमारा सौभाग्य है कि उसने अपनी कविता का विषय शारीरिक संस्कृति को बनाया था। वर्जिल (Virgil) का 'जार्जिक्स् (Georgics) भी—जिसमें देहाती जीवन के आनंद का वर्णन किया गया है—अपने विषय का एकमात्र उच्च

कोटि का ग्रन्थ है। उसका 'एनीड' (AEneid) मूल्यवान् नहीं है, क्यों कि उसका केवल रूप ही सुन्दर है। विषय तो उसका युद्ध, देशभक्ति और वासना होने के कारण अत्यन्त अग्राह्य है।

दार्शनिक कविताओं में बुद्धिवादियों (Rationalists) के लिये ल्यूक्रेटियस (Lucretius) के 'डे रेरम नैचुरा' (De Rerum Natura) का सब से प्रथम स्थान है। वह ऐपीक्यूरस (Epicurus) के दर्शन शास्त्र का वर्णन करता है। इस दर्शन शास्त्र की रचना विज्ञान के आधार पर की गई थी। इस कविता का बारबार अध्ययन करना चाहिये। मिस्टर एम० एस० डिम्स्डेल (M. S. Dimsdale) का कहना है, "इस ग्रन्थ के विषयों का प्राकृतिक महत्त्व ऐसा है, कवि ने उनका वर्णन इस अपूव योग्यता से किया है, उसका उत्साह–उसकी कल्पना शक्ति ऐसी है कि एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि 'डे रेरम नेचुरा' में दिखलाई हुई उसकी प्रतिभा के कारण यह कविता लैटिन भाषा की सब कविताओं में सबसे अधिक महत्त्पूर्ण है।" स्विनबर्न (Swinburne), शेले, और सैली प्रुडहोम (Sully Prudhomme) भी दार्शनिक बुद्धिवाद के बड़े भारी कवि हैं। जिस प्रकार शेले के सभी ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये, उसी प्रकार "महारानी मैब" (Queen Mab) का भी यहां विशेष रूप से उल्लेख करने की आवश्यकता है। प्रबोध चन्द्रोदय (संस्कृत) भी उच्चकोटि का दार्शनिक नाटक है।

गोएथे (Goethe) के 'फास्ट' (Faust) के प्रथम तथा

द्वितीय भाग) को भी सावधानी से पढ़ना चाहिये। इस दार्शनिक नाटक का बड़ा भारी विस्तृत क्षेत्र है। इसकी विशेषता भी अपनी जैसी आप ही है। यह आपको दर्शनशास्त्र, भाव, प्रेम, कला, विज्ञान और परोपकार के कार्यों के द्वारा मानव व्यक्तित्व को सब प्रकार से उन्नति करने के महत्व की शिक्षा देगा। जैसा कि प्रोफेसर जी, राबर्टसन (G. Robertson) का कहना है, 'फास्ट' का अध्ययन करना आधुनिक संस्कृति का अत्यंत आरंभिक और प्रत्यक्ष कर्तव्य है।"

सू-कुङ्ग-टू (Ssu-Kung-Tu) का ताओवाद (Taoism) पर छोटा सा दार्शनिक ग्रन्थ भी रुचिपूर्वक पढ़ने योग्य है।

दान्ते (Dante) का 'डाइवाइना कामेडिया' (Divina Commedia) अंधविश्वास के ढांचे में जकड़ी हुई दार्शनिक कविता है। यदि आप उसकी भयंकर मूर्तियों को भूल सको तो उसके 'इनफर्नो (Inferno) से अधिक शिक्षा प्राप्त की जा सकती है। उसकी 'पर्गेटोरिओ' (Purgatorio) आचरण-शास्त्र की उत्तम शिक्षा देने वाली कविता गिनी जाती है।

मिल्टन का 'पैराडाइज़ लॉस्ट' (Pradise Lost) आंशिक रूप से उत्तम ग्रन्थ है।

एस्चाइलस (AEschylus) और सोफोकिल्स (Sophocles) के नाटकों का दार्शनिक कविताओं के रूप में अध्ययन किया जा सकता है। उनमें पाप और आवश्यकता अथवा भाग्य की समस्याओं और मनुष्य द्वारा उनकी विजय का वर्णन किया

गया है। मिल्टन उनके विषय में कहता है कि "वह नैतिक बुद्धि के उच्च कार्य और उच्च भावों का सब से उत्तम वर्णन करने वाले शिक्षक हैं।"

स्वतन्त्रता, समानता और न्याय के गीत गाने वालों में मैं आपका ध्यान एस्चाइलस (AEschylus) के 'पर्से' (Persae); यूरीपाइड्स् (Euripides) के नाटकों; और लैंगलैण्ड (Langland), विक्टर ह्यूगो, शेली, बाइरन, बर्न्स (Burns), क्रैबे (Crabbe), गोल्डस्मिथ, स्विनबर्न (Swinburne), व्हीटीयर (Whittier), लावेल (Lowell), विलियम मॉरिस, गैल्सवर्दी (Galsworthy), अल्फाइरी (Alfeiri), फ्रीलीग्रैथ (Freiligrath), हर्वेग (Herwegh), शिलर (Schiller), नेक्रैसो (Nekrasov), वाल्ट व्हिटमैन (Walt Whitman) तथा अन्य कवियों की कविताओं की ओर आकर्षित करूंगा।

जीवन चरित्र तथा आख्यायिकासम्बन्धी कविताओं और नाटकों के लिये आप को अश्वघोष के 'बुद्धचरित्र', मिल्टन के 'फिर प्राप्त किया हुआ स्वर्ग' (Paradise Regained), एडविन आरनोल्ड के 'एशिया का प्रकाश' (Light of Asia) और विश्व का प्रकाश' (Light of the World), वाल्मीकि की रामायण, अल-बुसिरी के "कसीदत अल-बुरदा," कॉर्नील (Corneille) के नाटक, शेक्सपीयर के 'जूलियस सीजर' (ब्रूटस के लिये, न कि सीजर के लिये), जान ड्रिंकवाटर (John Drinkwater) के 'अब्राहम लिंकन' और क्रामवेल', गून (Gunn)

के स्पाइनोज़ा', लोरेंस हाउसमैन के सुकरात की मृत्यु', वाल्टेयर के "ब्रूटस", शिलर के "विलियम टेल", लीस्ट (Kleist) के "डाई हर्मनश्लैच्ट (Die Hermannschlacht) इत्यादि ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये।

उपदेश सम्बन्धी कविताओं के लिये आप हीसिअड (Hesiod) के 'कार्य और दिन' (Works and Days), होरेस की 'ओड्स्' (Odes), भर्तृहरि की 'नीति शतक', सादी की 'गुलिस्तां', और 'बोस्तां'; जमी (Jami) के 'बहरिस्तान' और जलालुद्दीन रूमी के 'मस्नवी' (आंशिक) को पढ़ें। 'पंचतंत्र' और ला फांटेन (La Fontaine) की 'कहानियों' (Fables) का उद्देश्य और भाव भी उपदेश ही है। मोलियर (Moliere) के नाटक भी लोभ, पाखंड, गंवारूपन तथा अन्य दोषों के विरुद्ध हास्यपूर्ण उपदेश ही हैं; वह आपको हंसा हंसा कर आपके आचरण को उच्च बनाता है। खाली समय का सदुपयोग करने के लिये मिल्टन के एल ऐलेग्रो (L' Allegro) और "इल पेनसेरोसो' (Il Penseroso) का बार बार अध्ययन करो। स्त्रियों और उनकी समस्याओं के लिये मोलियर, रैसाइन (Racine) और इब्सेन (Ibsen) के ग्रन्थों को, और उनमें भी विशेष कर 'गुड़िया के घर' (Doll's House) तथा 'रासमेरशोम' (Rosmersholm), बर्नर्ड शा के 'मनुष्य और मनुष्योत्तम' (Man and Superman), टेनीसन के 'राजकुमारी', (The Princess) और ब्रीक्स (Brieux) के नाटकों आदि का अध्ययन करना चाहिये।

प्रेम के कांटेदार प्रश्नों और उसके भिन्न २ रूपों--स्वतंत्रता, ईर्ष्या, बलिदान और सुख के लिये आपको कालीदास के 'शकुन्तला' और 'कुमार सम्भव', शेक्सपीयर के 'रोमिओ और जूलियट' (Romeo and Juliet) और 'ओथेलो' (Othello), नीज़ामी के 'लैला और मजनू,' जमी के 'यूसुफ और जूलेखा' तथा कैटुलस (Catullus) आदि कवियों के ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये। किंतु इस विषय पर आपको अधिक पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। आदर्श प्रेम के लिये मैं कालीदास के 'कुमारसम्भव' को विशेष रूप से अच्छा समझता हूं।

वीररस के लिये होमर की 'ओडाईसी' (Odyssey), कार्नील (Corneille) के नाटकों, मिल्टन के 'सैम्सन ऐगोनिस्टीज़' (Samson Agonistes), भवभूति के 'महावीर चरितम्' और इब्सेन के 'पीयर जाइंट' (Peer Gynt) आदि का अध्ययन करो।

अपने जीवन भर उत्तम २ कविताओं का संग करते रहो। आपकी पत्नी के समान वह आपको प्रत्येक समय सहायता देगी, प्रसन्न करेगी, मार्ग प्रदर्शन करेगी और आप में आत्मिक बल भरेगी। वह सदा ही मीठी और प्रेमी, कोमल और हंसमुख होती है। उसके हाथ में सभी गायकों के उत्तम २ उपहार होते हैं, जिनको वह आपको देती है। वह बारहों मास ताज़ी और चमकीली बनी रहती है।

"उसको आयु नहीं कुम्हला सकती, और न रिवाज़ उसको नीरस

बना सकते हैं।
उसके अनन्त भेद हैं।"

समय उसकी सुन्दर भवों पर सिकुड़न नहीं डाल सकता, वह सदा गाती ही रहती है। वह तुम्हारे, मेरे और सब के लिये गाती है। उसकी तान को सुनो और प्रसन्न तथा बुद्धिमान् बनो।

"कविता को राज्य सत्य का साम्राज्य है।
उसके पवित्र द्वारों को पूरा खोल लो। उनमें प्रकाश होने दो।"
(ए० वी० चैमीसो।)

चतुर्थ खंड

चरित्र निर्माण

('कला पुस्तक माला' के इस तीसरे ग्रन्थ
को अवश्य पढ़ें)

चरित्र निर्माण

अथवा

भावी विश्वराज्य और उसकी नागरिकता

की

संक्षिप्त विषयसूची

गत यूरोपीय महायुद्ध के समय राष्ट्रीयता (Nationalism) को मनुष्यजाति के विनाश में शीघ्रतापूर्वक अग्रसर होते देखकर ही अन्तर्राष्ट्रीयता (Internationalism) की कल्पना की गई थी और उसी कल्पना के फलस्वरूप सन् १९१९ ई० में राष्ट्रसंघ (Leauge of Nations) की स्थापना की गई थी। किन्तु जैसा कि साधारण समाचार पाठक भी जानते हैं, राष्ट्रसंघ इस उद्देश्य में सफल नहीं हो सका।

प्रस्तुत पुस्तक में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के धुरंधर विद्वान् देशभक्त ला० हरदयाल ने, न केवल राष्ट्रसंघ की असफलता के

कारण को ही बतलाया है, वरन् उन्होंने संसार भर में एक 'विश्व-राज्य' के आदर्श को उपस्थित किया है । यह ग्रन्थ वास्तव में उनके पूर्वग्रन्थ (Hints for Self Culture) का ही उत्तरार्द्ध है । पूर्वार्द्ध में विश्वराज्य के भावी नागरिकों की बुद्धि, शारीरिक शक्ति और ललितरुचि के निर्माण का यत्न किया गया था तो इस उत्तरार्द्ध में उनके चरित्र को निर्माण करने के सिद्धान्त बतलाकर भावी विश्वराज्य की रूप रेखा भी दी गई है ।

इसमें नागरिकों के व्यक्तिगत आचरण के सिद्धान्तों और नैतिक उन्नति करने के उपायों को बतलाने के पश्चात् दूसरों के प्रति कर्तव्य पूर्ण नैतिक आचरण का वर्णन किया गया है ।

व्यक्तिगत नीति शास्त्र का वर्णन करके देशीयनीति शास्त्र के वर्णन में एक केन्द्रवाले पांच वृत्तों (Five Concentric Circles)—कुटुम्ब, सम्बन्धियों, अपनी म्यूनीसीपैलिटी, अपने राष्ट्र और विश्वराज्य का वर्णन किया गया है। राष्ट्रीयता को सामाजिक और असामाजिक दो भागों में विभक्त करके उसीके प्रकाश में विश्वराज्य के आदर्श को उपस्थित किया गया है । इसके पीछे का लगभग आधा ग्रन्थ भावी विश्वराज्य के वर्णन से भरा हुआ है ।

विश्वराज्य के वर्णन में विश्व इतिहास, विश्व राजधानी, विश्व साहित्य, विश्व भाषा, विश्वयात्रा, विश्व समाज और विश्व दर्शनशास्त्र का पृथक २ वर्णन किया गया है ।

इस प्रकार भावी विश्वराज्य की रूपरेखा का वर्णन करने के पश्चात् उसके अर्थ शास्त्र का वर्णन करते हुए भविष्य की उत्पत्ति, खपत और बटवारे के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है ।

इसके अन्तिम अध्याय का नाम राजनीति है । इसमें नियमित राजतंत्र प्रणाली (Limited Monarchy), अनियमित राजतंत्र प्रणाली (Absolute Monarchy), अल्पसत्ताक शासन प्रणाली (Oligarchy), पार्लमेंट प्रणाली, बहुमत प्रणाली आदि सभी शासनप्रणालियों के गुण दोषों की आलोचना करके जनतंत्र शासनप्रणाली (Democracy) पर विशेष बल दिया गया है ।

स्वतन्त्रता का आदर्श बतलाकर समानता के वर्णन में शारीरिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक और आचरण की समानता का वर्णन किया गया है ।

फिर संसार भर के मनुष्यों के लिये भाईचारे के कर्तव्य तथा विश्वराज्य के लिये आपके कर्तव्य को बतलाकर ग्रन्थ को समाप्त किया किया गया है ।

इस ग्रन्थ को वास्तव में नवीन युग का नवीन धर्मशास्त्र अथवा नवीन स्मृति कहना चाहिये ।

ऐसा उत्तम ग्रन्थ हिन्दी तो क्या भारत वर्ष की किसी भी भाषा में अभी तक नहीं लिखा गया ।

इस ग्रन्थ को पढ़ने से वृद्धों के नेत्र खुलेंगे, युवकों को कर्तव्य का ज्ञान होगा और बालकों के आचरण सुधर जावेंगे ।

हमारे अन्य ग्रन्थों के समान इसके आर्डर भी पहिले से ही धड़ाधड़ आ रहे हैं । शीघ्रता कीजिये अन्यथा आगामी संस्करण के लिये ठहरना होगा ।

'कला पुस्तक माला' की अन्य पुस्तकों के समान ४०० पृष्ठ के इस ग्रन्थ का मूल्य भी ३) है । साथ में कपड़े की पक्की जिल्द और तिरंगा टाइटिल है ।

मैनेजर—भारती साहित्य मन्दिर, चांदनी चौक, देहली ।

भारती साहित्य मन्दिर, ने

अपनी अभूतपूर्व योजना से

इतिहास, राजनीति तथा विज्ञान पर हिन्दी में महत्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिये—

कला पुस्तक माला

का प्रकाशन आरंभ किया है; इसके लेखक तथा सम्पादक होंगे
भारतवर्ष के प्रसिद्ध विद्वान्

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री एम. ओ. पीएच.

इसमें प्रति मास एक २ करके निम्न लिखित १२ ग्रन्थ निकलेंगे—

१—हिटलर महान
२—आत्म निर्माण
३—चरित्र निर्माण
४—शरीर विज्ञान
५—राष्ट्रनिर्माता मुसोलिनी
६—विश्व का इतिहास (प्रथम भाग)
७—विश्व का इतिहास (द्वितीय भाग)
८—आधुनिक आविष्कार
९—
१०— } संसार के महान् राजनीतिज्ञ (दो भागों में)
११—भूगर्भ विज्ञान
१२—खगोल विज्ञान

इनमें से प्रथम दो ग्रन्थ तयार हो गए हैं। आर्डर हाथों-हाथ आ रहे हैं। शीघ्रता कीजिये, अन्यथा दूसरे संस्करण के लिये ठहरना होगा।

मैनेजर भारती साहित्य मन्दिर,
चांदनी चौक,
देहली।

कला पुस्तक माला के नियम

१—इस पुस्तक माला में कुल बारह ग्रन्थों का प्रकाशन होगा और प्रत्येक ग्रन्थ में लगभग ३५० पृष्ठ तथा १२ हाफटोन ब्लाक कपड़े की पक्की जिल्द में होंगे ।

२—इसके प्रत्येक ग्रन्थ का मूल्य ३) होगा ।

३—॥) प्रवेश फी जमा करके स्थायी ग्राहक बनने वाले महानुभावों को इस पुस्तकमाला की प्रत्येक पुस्तक पौने मूल्य में दी जावेगी ।

४—जो स्थायी ग्राहक हमारी प्रति मास भेजी जाने वाली सूचना के साथ प्रत्येक पुस्तक के लिये २।) मनीआर्डर या डाक टिकटों द्वारा अग्रिम भेज देंगे, उन्हें डाक व्यय कुछ नहीं देना होगा ।

५—जो ग्राहक २४॥) मनीआर्डर या चेक द्वारा एक मुश्त भेज देंगे उन्हें बारहों ग्रन्थ प्रतिमास बिना डाक व्यय के घर बैठे मिला करेंगे । किन्तु यह रियायत केवल ३० अप्रैल १९३७ ई० तक ग्राहक बनने वाले सज्जनों को ही दी जावेगी ।

६—प्रकाशक को ग्रन्थों के क्रम तथा नामों आदि में लेखक की सम्मति से परिवर्तन करने का अधिकार होगा ।

मैनेजर—भारती साहित्य मन्दिर, चांदनी चौक, देहली ।

दुनिया में क्या हो रहा है ? क्या दूसरा महायुद्ध होगा ? क्या जर्मनी संसार से लड़ाई छेड़ेगा ? हिटलर ने जर्मनी को सशस्त्र कर दिया है। राइनलैण्ड को छीन लिया है, रूस को लड़ने को ललकारा है। क्या वह जर्मनी के खोये हुये उपनिवेशों को पुनः प्राप्त कर सकेगा ? आदि बातें जानने के लिये।

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री द्वारा रचित

हिटलर महान्

अथवा

जर्मनी का पुनर्निर्माण

अवश्य पढ़ें।

इसमें जर्मनी का संक्षिप्त इतिहास, हिटलर का बाल्यकाल, यूरोपीय महायुद्ध और उसके बाद के परिणाम, जर्मनी का राष्ट्रसंघ (लीग आफ़ नेशन्ज) में सम्मिलित होना, सार प्रदेश तथा राइनलैंड का लेना, लोकार्नो पैक्ट इत्यादि सब राजनीतिक समस्याओं का विवेचनात्मक इतिहास दिया गया है। हर एक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रेमी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। लगभग ४०० पृष्ठ, १२ हाफटोन ब्लाक, बढ़िया काग़ज़ और छपाई, पक्की कपड़े की जिल्द और तिरंगा टाईटिल होने पर भी मूल्य केवल ३) मात्र।

हिन्दी में यह अपने ढंग की निराली पुस्तक है। आज तक हिन्दी में इस विषय पर इतनी रोचक और सुन्दर पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी है। देखिये इस पुस्तक के विषय में अन्य विद्वान् क्या कहते हैं।

इतिहास तथा अर्थशास्त्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् प्रोफेसर विनय कुमार सरकार लिखते हैं:—

‘As a study in contemporary history Pandit Chander Shekhar Shastri's "**Hitler the Great**" has appeared to me to be a very fine contribution to Hindi Literaure. The author has analysed the special economic and constitutional features of the persent regime and has placed them all in the perspective of the post war developments in Germany and the world. The presentation is Lucid and the authors' historical view point is noteworthy’.

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास लेखक **मिश्रबन्धुओं** में से रायबहादुर **पं० शुकदेव बिहारी मिश्र** लिखते हैं:—

"हिन्दी में इस ऊंचे दर्जे के ग्रन्थ कम देखने में आते हैं। बहुत ही उपादेय है। हम शास्त्री जी को ऐसा उच्च ग्रन्थ लिखने पर बधाई देते हैं। ऐसे ग्रन्थों से हिन्दी का शिर ऊंचा होता है। हमारे प्राचीन प्रथानुयायी लोग जहां अभी तक

रामायण और महाभारत की ही गुत्थियां, सो भी प्राचीन नेत्रों से सुलझाने में लगे हैं, वहीं हमारे शास्त्री जी बीसवीं शताब्दी के ग्रन्थ लेखन को चरितार्थ करते हैं।"

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ बैरिस्टर काशीप्रसाद जायसवाल लिखते हैं:—

"पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री जी की कला पुस्तक माला उपयोगी है। इसलिये कि दुनिया में इस समय क्या हो रहा है, जिससे बड़े २ देशों में ऐसे उलट फेर हो रहे हैं कि जैसे रेडियो का निकलना और आधुनिक आकाशयान का चलना। ऐसी तेज़ी से संसार बदल रहा है कि पलट कर हमको प्रगति की लीक नहीं दीख पड़ती। ऐसी दशा में हमारे देशवासियों को उनका बराबर पता रहना वेद और उपनिषद के ज्ञान की तरह ऐहिक उपनिषद द्वारा बाध्य है।

"इस कारण मैं शास्त्री जी योजना से प्रसन्न हूं। ऐसे ग्रन्थ जितने निकलें और हिन्दी जनता इनको जितने चाव से पढ़े मैं उतना ही देश का अच्छा भाग्य मानूंगा। लाला हरदयाल का ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। नए विचार भरे हुए हैं। इसी तरह योरुप के ख़ास २ देशभक्त, जैसे हिटलर और मुसोलिनी, जो अपने देश के भाग्य विधाता हैं—उनका हाल जानना बहुत आवश्यक है। शास्त्री जी उन सबका चरित्र देश के सामने उपस्थित कर रहे हैं। यह बड़ी बात है।"

संसार के प्रसिद्ध विद्वान **महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज** M. A प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कालेज

बनारस, लिखते हैं:—

"Pandit Chandra Shekhar's presentation is lucid and interesting and is calculated to be highly useful to those,, for whom it is intended".

देहली रेडियो स्टेशन

'...लेखक ने काफी अध्ययन और संकलन के बाद पुस्तक लिखी है। सुधार और शिक्षा की दृष्टि से ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है जिनके द्वारा केवल हिन्दी जानने वाले नर नारियों को संसार के महान् राष्ट्रों के आपस के सम्बन्ध और उन्नति की दौड़ का पता रहे।...'जर्मनी पन्द्रह वर्ष तक क्यों दासता के बन्धन में जकड़ा हुआ पड़ा रहा और किस प्रकार उसने अपनी खोई शक्ति पाई ये सब बातें भारत जैसे उठते राष्ट्र की उन्नति के लिए बहुत हितकारी हैं।......'

काशी का प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'आज, लिखता है—

'...हिटलर के इन गुणावगुणों का और जर्मनी की समस्या के साथ यूरोप की समस्या को समझाने का प्रशंसनीय प्रयत्न पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री ने किया है। आज जर्मनी और इटली में संसार का 'इतिहास' बनाया जा रहा है, इसे जो देखना और समझना चाहते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।'

'विश्व मित्र, कलकत्ता—

'लेखक ने जर्मनी सम्बन्धी प्रायः सभी प्रश्नों पर अच्छे ढंग से विचार किया है। हिन्दी में इस प्रकार की राजनीतिक

रामायण और महाभारत की ही गुत्थियां, सो भी प्राचीन नेत्रों से सुलझाने में लगे हैं, वहीं हमारे शास्त्री जी बीसवीं शताब्दी के ग्रन्थ लेखन को चरितार्थ करते हैं।"

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ बैरिस्टर काशीप्रसाद जायसवाल लिखते हैं:—

"पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री जी की कला पुस्तक माला उपयोगी है। इसलिये कि दुनिया में इस समय क्या हो रहा है, जिससे बड़े २ देशों में ऐसे उलट फेर हो रहे हैं कि जैसे रेडियो का निकलना और आधुनिक आकाशयान का चलना। ऐसी तेज़ी से संसार बदल रहा है कि पलट कर हमको प्रगति की लीक नहीं दीख पड़ती। ऐसी दशा में हमारे देशवासियों को उनका बराबर पता रहना वेद और उपनिषद के ज्ञान की तरह ऐहिक उपनिषद द्वारा बाध्य है।

"इस कारण मैं शास्त्री जी योजना से प्रसन्न हूं। ऐसे ग्रन्थ जितने निकलें और हिन्दी जनता इनको जितने चाव से पढ़े मैं उतना ही देश का अच्छा भाग्य मानूंगा। लाला हरदयाल का ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। नए विचार भरे हुए हैं। इसी तरह योरुप के ख़ास २ देशभक्त, जैसे हिटलर और मुसोलिनी, जो अपने देश के भाग्य विधाता हैं—उनका हाल जानना बहुत आवश्यक है। शास्त्री जी उन सबका चरित्र देश के सामने उपस्थित कर रहे हैं। यह बड़ी बात है।"

संसार के प्रसिद्ध विद्वान **महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज** M. A प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कालेज

बनारस, लिखते हैं:—

"Pandit Chandra Shekhar's presentation is lucid and interesting and is calculated to be highly useful to those,, for whom it is intended".

देहली रेडियो स्टेशन

'…लेखक ने काफी अध्ययन और संकलन के बाद पुस्तक लिखी है। सुधार और शिक्षा की दृष्टि से ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है जिनके द्वारा केवल हिन्दी जानने वाले नर नारियों को संसार के महान् राष्ट्रों के आपस के सम्बन्ध और उन्नति की दौड़ का पता रहे।…जर्मनी पन्द्रह वर्ष तक क्यों दासता के बन्धन में जकड़ा हुआ पड़ा रहा और किस प्रकार उसने अपनी खोई शक्ति पाई ये सब बातें भारत जैसे उठते राष्ट्र की उन्नति के लिए बहुत हितकारी हैं।……'

काशी का प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'आज, लिखता है—

'…हिटलर के इन गुणावगुणों का और जर्मनी की समस्या के साथ यूरोप की समस्या को समझाने का प्रशंसनीय प्रयत्न पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री ने किया है। आज जर्मनी और इटली में संसार का 'इतिहास' बनाया जा रहा है, इसे जो देखना और समझना चाहते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।'

'विश्व मित्र, कलकत्ता—

'लेखक ने जर्मनी सम्बन्धी प्रायः सभी प्रश्नों पर अच्छे ढंग से विचार किया है। हिन्दी में इस प्रकार की राजनीतिक

पुस्तकों का सर्वथा अभाव है, अतः लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है। इस विषय की हिन्दी में इतनी अच्छी यह पहली ही पुस्तक है।'

ब्रह्मा देश की राजधानी रंगून का हिन्दी दैनिक **बरमा-समाचार** लिखता है—

"भारतीय जनमत हर हिटलर और जागृत जर्मनी की नीति के विषय मेंचाहे जो हो, किन्तु नवयुग के निर्माण कर्ता नवयुवकों को संसार की क्रान्तियों और राजनीतिक चालबाजियों से अवश्य ही परिचित होना और उनके गूढ़ रहस्यों से अवगत होना है। पुस्तक नवयुवकों के बड़े काम की है। इसके द्वारा उन्हें नाज़ी जर्मनी के हृदय हिटलर और नवजागृत जर्मनी की परिस्थितियों का पूरा पता चल जायगा। हिन्दी में ऐसे विषय की पुस्तकों का अभाव नवयुग में खटकथा है। जब भारत का राष्ट्रीय संग्राम अखिल विश्व से सम्बन्ध स्थापित करने जा रहा हो और हिन्दी राष्ट्र भाषा हो रही हो, उस समय विदेश विषयक साहित्य की कमी हमारे लिए लज्जा और हानि का विषय हो सकती है। इस पन्थ में आचार्य जी का कलम उठाना स्तुत्य और युवकों को उत्साहित करने वाला होगा।"

प्रयाग का साहित्यिक पत्र **'चाँद'** लिखता है—

"संसार की वर्तमान राजनैतिक हलचल को समझने की इच्छा रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।"

अभ्युदय प्रयाग—

"कितने हैं जो यह जानते हैं कि वियाना की गलियों में भूखा और प्यासा फिरने वाला यह अनाथ इतना महान् कैसे हो गया। ऐसे महा पुरुष के विषय में जानकारी होना जरूरी है और 'हिटलर महान्' नामक प्रस्तुत पुस्तक से यह सब बातें मालूम हो सकती हैं।......पुस्तक में हिटलर की जीवनी के अतिरिक्त जर्मनी के अतीत के इतिहास, उसकी उन्नति और वर्तमान शासन व्यवस्था पर भी दृष्टि डाली गई है। और उसके अब तक के कार्य दिये गये हैं!

"पुस्तक को उपयोगी बनाने में लेखक ने काफी परिश्रम किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। पुस्तक उपादेय है।"

आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान महात्मा नारायण स्वामी जी 'सार्वदेशिक' में लिखते हैं:—

'पुस्तक वास्तव में मूल्यवान है। यह किसी भी देशवासी में उत्साह का संचार करने वाली और पुरुषार्थ की मात्रा बढ़ाने वाली है। इस पुस्तक से हिन्दी साहित्य में एक अच्छे ग्रन्थ का समावेश हुआ है, छपाई और गेट अप बहुत अच्छा है।'

पंडित रामनारायण मिश्र, हेडमास्टर सेंट्रल हिन्दू स्कूल बनारस लिखते हैं:—

"भारतवर्ष के नवयुवक, जो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से जर्मनी का इतिहास समझना चाहते हैं, उनको इस पुस्तक के पढ़ने से बहुत लाभ होगा। हिटलर के प्रभाव का रहस्य इससे अच्छी तरह मालूम हो जावेगा।"

पुस्तकों का सर्वथा अभाव है, अतः लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है। इस विषय की हिन्दी में इतनी अच्छी यह पहली ही पुस्तक है।'

ब्रह्मा देश की राजधानी रंगून का हिन्दी दैनिक **बरमा-समाचार** लिखता है—

"भारतीय जनमत हर हिटलर और जागृत जर्मनी की नीति के विषय मेंचाहे जो हो, किन्तु नवयुग के निर्माण कर्ता नवयुवकों को संसार की क्रान्तियों और राजनीतिक चालबाजियों से अवश्य ही परिचित होना और उनके गूढ़ रहस्यों से अवगत होना है। पुस्तक नवयुवकों के बड़े काम की है। इसके द्वारा उन्हें नाज़ी जर्मनी के हृदय हिटलर और नवजागृत जर्मनी की परिस्थितियों का पूरा पता चल जायगा। हिन्दी में ऐसे विषय की पुस्तकों का अभाव नवयुग में खटकया है। जब भारत का राष्ट्रीय संग्राम अखिल विश्व से सम्बन्ध स्यापित करने जा रहा हो और हिन्दी राष्ट्र भाषा हो रही हो, उस समय विदेश विषयक साहित्य की कमी हमारे लिए लज्जा और हानि का विषय हो सकती है। इस पन्थ में आचार्य जी का कलम उठाना स्तुत्य और युवकों को उत्साहित करने वाला होगा।"

प्रयाग का साहित्यिक पत्र 'चाँद' लिखता है—

"संसार की वर्तमान राजनैतिक हलचल को समझने की इच्छा रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।"

अभ्युदय प्रयाग—

"कितने हैं जो यह जानते हैं कि वियाना की गलियों में भूखा और प्यासा फिरने वाला यह अनाथ इतना महान् कैसे हो गया। ऐसे महा पुरुष के विषय में जानकारी होना जरूरी है और 'हिटलर महान्' नामक प्रस्तुत पुस्तक से यह सब बातें मालूम हो सकती हैं।......पुस्तक में हिटलर की जीवनी के अतिरिक्त जर्मनी के अतीत के इतिहास, उसकी उन्नति और वर्तमान शासन व्यवस्था पर भी दृष्टि डाली गई है। और उसके अब तक के कार्य दिये गये हैं!

"पुस्तक को उपयोगी बनाने में लेखक ने काफी परिश्रम किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। पुस्तक उपादेय है।"

आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान महात्मा नारायण स्वामी जी 'सार्वदेशिक' में लिखते हैं:—

'पुस्तक वास्तव में मूल्यवान है। यह किसी भी देशवासी में उत्साह का संचार करने वाली और पुरुषार्थ की मात्रा बढ़ाने वाली है। इस पुस्तक से हिन्दी साहित्य में एक अच्छे ग्रन्थ का समावेश हुआ है, छपाई और गेट अप बहुत अच्छा है।'

पंडित रामनारायण मिश्र, हेडमास्टर सेंट्रल हिन्दू स्कूल बनारस लिखते हैं:—

"भारतवर्ष के नवयुवक, जो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से जर्मनी का इतिहास समझना चाहते हैं, उनको इस पुस्तक के पढ़ने से बहुत लाभ होगा। हिटलर के प्रभाव का रहस्य इससे अच्छी तरह मालूम हो जावेगा।"

'लोकमान्य' कलकत्ता—

"अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का ज्ञान रखने वाले छात्रों के लिए पुस्तक बड़े काम की होगी । शास्त्री जी ने हिन्दी में अन्तर्राष्ट्रीय विषय की यह किताब देकर भाषा के एक अंग की पूर्ति में अच्छी सहायता की है । एतदर्थं उनको धन्यवाद है ।"

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

SPS
001 CH 28 A
12230